भारत सरकार
Government of India
राष्ट्रीय पुस्तकालय, कलकत्ता ।
NATIONAL LIBRARY, CALCUTTA
वर्ग संख्या
Class No. [illegible]312
पुस्तक संख्या
Book No. C 288 V
रा० पु०/N.L.38

रा० पु०-44
N. L.-44

भारत सरकार
GOVERNMENT OF INDIA
राष्ट्रीय पुस्तकालय
NATIONAL LIBRARY
कलकत्ता
CALCUTTA

अंतिम अंकित दिनांक वाले दिन यह पुस्तक पुस्तकालय से ली गई थी। दो सप्ताह से अधिक समय तक पुस्तक रखने पर प्रतिदिन 6 पैसे की दर से विलम्ब शुल्क लिया जायगा।

This book was taken from the Library on the date last stamped. A late fee of 6 P. will be charged for each day the book is kept beyond two weeks.

GMGIP (Pub Unit), Sant -S7-4LNL/80 20-8-80-250,000

पृथ्वीराजरासो।

NATIONAL LIB
No. 271
Date.............
CALCUTTA

आदि पर्व्व लिख्यते।

(पहिला समय)

आदिदेव, गुरू, वाणी, लक्ष्मीश, सुरनाथ और सर्वेश का मंगलाचरण ॥

साटक ॐ॥ आदी देव प्रनम्य नम्य गुरयं, वानीय वंदे पयं।
सिष्टं धारन धारयं वसुमती, लच्छीस चर्नाश्रयं ॥
तं गुं तिष्टति ईस दुष्ट दहनं, सुर्नाथ सिद्धिश्रयं।
थिर्चंजगम जीव चंद नमयं, सर्वेस वर्दामयं ॥ छंद ॥ १ ॥ रूपक ॥ १ ॥

---

१ यह मंगलाचरण जिस छंदमें चंद कवि ने कहा है उसका नाम उसने साटक प्रयोग किया है और इस नाम से यह छंद आज कल जो छंद ग्रंथ प्राय: उपलब्ध हैं, उनमें नहीं मिलता। यद्यपि उसकी परीक्षा करने से वह नि:सन्देह शार्दूलविक्रीडित नामक छंद मालूम होता है परंतु जब तक उसका लक्षण अथवा नामान्तर होने का कोई प्रमाण नहीं दिखलाया जाय तब तक पुरातत्त्ववेत्ता विद्वान सन्तुष्ट नहीं हो सकते। अतएव बहुत खोज करने से गुजराती भाषा के काव्यों में इस नाम का छंद मिला और The Revd. Joseph Van S Taylor साहब अपने गुजराती भाषा के व्याकरण के पद्यबंध अथवा छंदविन्यास नामक प्रकरण के पृष्ठ २२३ में उसका साटक नाम से कुल ३८ अक्षरों की दो तुक का छंद होना लिखते हैं कि जिसकी प्रत्येक तुक में १२+७=१९ अक्षर होते हैं। इसके सिवाय प्राकृतभाषा के किसी छंदग्रंथ से अनुवादित होकर सं. १८७६ में जो एक रूपदीप पिंगल नामक छंद ग्रंथ बना है उसमें केवल ५२ छंदों के लक्षण कहे हैं। उसमें भी साटक का यह लक्षण लिखा है—

साटक छंद लक्षण ॥

कर्मै द्वादश अंक आद संग्या, मात्रा सिवो सागरे।
दुज्जो बी करिके कलाष्ट दस बी, अंको विरामाधिकं ॥ १ ॥
अंते गुर्व निहार धार सब के, औरों कछू भेद ना।
तीसों मत्त उनीस अंक चरने, सेसो भयो साटिकं ॥

हम इस साटक छंद को पिंगल छंद सूत्रम् नामक ग्रंथ में कहे शार्दूलविक्रीडित छंद का नामान्तर होना मानते हैं और उसका लक्षण बहुत प्राचीन अमर और भरत-कृत छंद ग्रंथों में अवश्य होना अनुमान करते हैं क्योंकि चंद कवि ने भी अपने इसी ग्रंथ के आदि पर्व के रूपक १० में जो कुछ कहा है उससे स्पष्ट मालूम होता है कि उसने अपने इस महाकाव्य की रचना में पिंगल अमर और भरत के छंद ग्रंथों का आश्रय लिया है॥

इस छंद के लक्षण का पता लगा कर अब हम इस रूपक के पाठ को शोधते हैं। उस की पहिली पंक्ति का पाठ A S B की छापी हुई पुस्तक की Fasciculus I जिसको Mr. John Beames साहब ने शोध कर छपाया है उस में "**आदि प्रनम्य नम्य गुरयं वानोय वंदे पयं**" ऐसा पाठ है और जो Mr F S Growse, C S, M A ने रासो के प्रारंभ के छंदों का अनुवाद करने में पाठ लिखा है वह भी ऐसा ही है। निदान साटक के लक्षण के अनुसार इस तुक में १२+७=१९ अक्षर होने चाहिए परन्तु उस में १०+७=१७ अक्षर हैं। अब यह अत्यावश्यक है कि घटते हुए दो अक्षरों का पता लगाया जाय। यह कल्पना करनी कि चंद कवि अथवा उसके नाम से कोई यह जाली ग्रंथ बनानेवाला छंद ग्रंथों में भले प्रकार व्युत्पन्न न होने के कारण मूल में ही भूल गया है, सर्वरीत्या अयोग्य और आश्चर्यदायक बात है। क्योंकि वर्तमान पृथ्वीराजरासो का बिगड़ा हुआ काव्य भी अपने कर्ता का एक बड़ा व्युत्पन्न कवि होना स्वयम् स्पष्ट प्रकाश करता है अतएव उसका ऐसी भूलों का करना निर्मल प्रज्ञावान विद्वानों के ध्यान में सर्वथा असंभव है।

इस प्रथम तुक में जो दो अक्षर घटते हैं वे पंक्ति भर में किस स्थान में लेखक अथवा शोधक की भूल से लोप हो गए हैं इस बात को शोध लेने के लिये यह एक बड़ी सरल युक्ति है कि हम इस तुक के अर्थ को ध्यान में लेकर उसके वाक्यखंडों को पृथक् पृथक् कर दें कि जिस से अपूर्ण वाक्यखण्ड अपने आप हमको घटते हुए अक्षर बतला देवे, जैसे कि **वानोय वंदे पयं** और **नम्य गुरयं** और **आदि प्रनम्य** ऐसा करने से हमको मालूम हो गया कि आदि **प्रनम्य** वाक्य खंड अपूर्ण है और उसमें कोई संज्ञावाचक शब्द घटता है। अब विचारना चाहिये कि वह संज्ञावाचक शब्द **आदि** शब्द के पहिले घटता है अथवा पीछे। जो हम **आदि** शब्द के पहिले उसका होना मानें तो "**आदिः पदान्ते गण सूचकः**" से दोष प्राप्त होकर हमारी कल्पना अन्यथा हो जाती है अतएव मानना चाहिए कि **आदि** शब्द के पीछे कोई संज्ञावाचक शब्द है, क्योंकि ऐसा मानने में **आदि** शब्द उस शब्द के साथ मिलकर हम को कर्मधारय समास का होना स्पष्ट विदित करता है। जब कि यह निश्चय हो गया कि **आदि** शब्द के पीछे अर्थात् **आदि** और **प्रनम्य** के बीच में कोई संज्ञावाचक शब्द रह गया है तब हम को फिर सूक्ष्म विचार में निमग्न होना चाहिए कि वह संज्ञावाचक शब्द कौन सा है कि जिसको चंद कवि ने प्रयोग किया था। हम निःसंदेह कल्पना करते हैं कि यहां देव शब्द था अर्थात् **आदो देव** ऐसा पाठ चं[द ने] प्रयोग किया था, क्योंकि प्रथम तो "**आदिः कारणं स च देवश्चेति कर्मधारयः**" तथा ज[ग]**दुपादानादि गुणवान् नारायणः**"; दूसरे, **आदि देव** शब्द हमारी संस्कृतभाषा के प्रामाणिक ग्रंथों के मंगलाचरणों तथा ईश्वर की स्तुति तथा ईश्वर के ध्यान के वाक्यों में बहुधा प्रयोग किया गया है कि हम उदाहरण के लिये केवल दो ही प्रमाण यहां दिखाते हैं; जैसे—"**परं ब्रह्म परं धाम। पवित्रं परमं भवान्॥ पुरुषं शाश्वतं दिव्यमादिदेवमजं विभुं**" तथा "**त्वमादिदेवः पुरुषः पुराणस्त्वमस्य विश्वस्य परं निधानं**"॥ तीसरे, चंद कवि ने स्वयम् अपने इस महाकाव्य में इस **आदि देव** शब्द का प्रयोग अनेक स्थानों में किया है जैसा कि "**प्रनम्य प्रथम मम आदि**

देव ऊँकार शब्द जिन करि अछेव"। चौथे, इस तुक में प्रथम मगण होने के कारण तीनों अक्षर दीर्घ होने चाहिए अतएव कवि ने **आदी देव** ऐसा पाठ कहा है। **आदि** शब्द संस्कृत में इकारान्त है परंतु उसे कवि ने यहां मगण होने के कारण के अतिरिक्त गानविद्या संबंधी दोष दूर करने के अभिप्राय से भी ईकारान्त किया है; क्योंकि चंद गानविद्या में भी निपुण था और साटक के गाने में तुक की पहिली चौथी मात्रा पर ताल आता है। यद्यपि हमारी कल्पना तो यह है परंतु जब हमने इस ग्रंथ का कुछ भाग कोटा राज्य के विद्वान कविराज श्री चंडीदानजी से पढ़ा था तब उन्होंने यह बतलाया था कि **आदि** के पहिले **ओ३म्** शब्द का प्रयोग कवि चंदने किया था और उसका अर्थ **आदि ओ३म् प्रनम्य** अर्थात "पहिले ओंकार को नमन करके" किया था। यद्यपि यह प्रयोग भी कुछ बैठ जाता है और ठीक सा मालूम होता है और जितनी पुस्तकें रासो की हमारे देखने में आई है उनमें प्रायः ऐसा ही पाठ मिलता है, परंतु हम इसकी अपेक्षा अपनी कल्पना को अधिक बलवान और युक्त मानते हैं और आशा करते हैं कि यदि वे अब विद्यमान होते तो हमारी इस कल्पना को प्रसन्नतापूर्वक मान लेते। यदि कोई **ओ३म् आदि प्रनम्य** ऐसा भी पाठ माने तथापि कुछ हानि नहीं है। और जब तक कि किसी बहुत प्राचीन पुस्तक में हमारे इस मानने के विरुद्ध कोई अन्य पाठ न मिल जावे तब तक हम इस को मानना अयोग्य नहीं समझते हैं॥

अब दूसरी पंक्ति का पाठ **"सिष्टं धारन धारयं वसुमती लच्छीस चरनाश्रयं"** है। इसमें १२+८=२० अक्षर हैं कि यहा **चरनाश्रयं** शब्द को हमने **चर्नाश्रयं** किया है क्योंकि कोई छंद गान से खाली नहीं है और साटक की ध्वनि के अनुसार उच्चारण में यहां रकार स्वर-रहित हो जाता है और जैसा उच्चारण और गान में रूप हो वैसा काव्य में लिखने में भी कोई दोष नहीं है। जो कवि गान के नियमो से अपरिचित हैं उनके काव्य में ऐसे स्थलो में अनेक दोष रह जाते है, क्योंकि गान छंद के लिये एक कसौटी है और ऐसे ही मौको को कवि का अधिकार अर्थात् Poetical License कहते है। कोई कोई विद्वान कवि के अधिकार की छूट अर्थात् Poetical License को दोष मानते है परंतु वह एक भ्रम है, क्योंकि सस्वर अक्षर को खोड़ा कर देना और खोड़े को सस्वर कर देना व्याकरणादि भिन्न शास्त्रों में दोष समझना चाहिए परंतु छंद रचना और गान में तो यह दोष नहीं कहाता है। देखो, चंद के इन वचनो के भीतरी आशयों से भी हम यही अनुमान कर सकते हैं—

लहु गुर मंडित खंडियहि । पिंगल अमर भरत्थ ॥ ३९ ॥ १
चरन नीम अच्छिर सुरंग । पाटलहु गुरु विधि मंडिय ॥
सुर विकास जारी सु मुष्य । उक्ति रस गौरव नि छंडिय ॥ ४० ॥ १

तीसरी पंक्ति के पाठ **तम गुन तिषृति ईस दुष्ट दहनं । सुरनाथ सिद्धिश्रयं** में १४+८=२२ अक्षर हैं। इनमें ऊपर कही हुई युक्तियो के सिवाय थोड़ा सा और ध्यान देने से ज्ञात हो सकता है कि ग्रंथकर्त्ता ने **तम गुन** और **सुरनाथ** पाठ नहीं प्रयोग किए थे किन्तु ऐसे हम ने अनुमान कर शुद्ध किये है **तं गुं** और **सुर्नाथ;** क्योंकि प्रथम तो इस साटक छंद में मगण होने के कारण **तं** और **गुं** ही होने चाहिए और दूसरे चंद के ऐसे प्रयोग इस काव्य में बहुत से स्थलों पर देख पड़ेंगे। यह भी हमारे देखने में आवेगा कि **त्वम्** और **अहम्** के स्थान में तं और **हुं** जैसे प्रयोग चंद ने किए हैं। इसमें हम को कुछ भी आश्चर्य नहीं करना चाहिए, क्योंकि चंद के इस नीचे लिखे वाक्य से हम अच्छी तरह समझ सकते हैं कि उसने अपने इस महाकाव्य की भाषा में षट भाषा और पुरान की भाषा का आश्रय लिया है—

श्लोक ॥ उक्ति धर्म विशालस्य । राजनीति नवं रसं ।
षट भाषा पुराणं च । कुरानं कथितं मया ॥ १ ॥

अब शेष चौथी पंक्ति का पाठ **"थिर चर जंगम जीव चंद नमयं सर्वेस वरदा मयं"** में १४+८=२२ अक्षर हैं। इसके स्थान में जो यह पाठ **"थिर्चर्जंगम जीव चंद नमयं सर्वेस वर्दामयं"** शुद्ध किया गया है उसके लिये ऊपर कही हुई युक्तियों से ही हमारा शोधन करना ठीक मालूम हो सकता है। इसमें इतना और भी आवश्यक है कि सोसाइटी की मुद्रित की हुई पुस्तक में जो **चंदनमयं** पदच्छेद किया है वह अयुक्त है और मिस्टर एफ. याऊस साहब ने जो **चंद** और **नमयं** पदच्छेद किए हैं वे ठीक हैं और हम भी मिस्टर याऊस के पदच्छेद से सम्मत हैं ॥

जो पाठ हमने जिस रीति से इस रूपक में शुद्ध किए हैं वे अथवा वैसे ही पाठ जो कहीं आगे इस ग्रंथ भर में आवेंगे तो हम उन पर सर्वत्र टिप्पण नहीं करेंगे किन्तु वहां का मूल पाठ हमारे यहां पर वर्णन किए शोधन के प्रकार के अनुसार शुद्ध रहेगा। पाठक महाशय इन ही नियमों से उन पाठों को सिद्ध कर समझ लें अर्थात् जिस नियम को एक स्थान पर टिप्पण में वर्णन कर देंगे वह अन्यत्र नहीं कहा जावेगा। किन्तु जहां कोई नवीन प्रयोग आवेगा वहां उसका वर्णन कर दिखावेंगे ॥

जैसे चंद के प्रयोग किए हुए छंदों के नाम और उनके लक्षणों के शोध करने में पुरातत्ववेत्ताओं को परिश्रम पड़ता है वैसे ही उसके इस महाकाव्य के अर्थ लगाने में भी अनेक प्रकार की अड़चनें उपस्थित होती हैं। यद्यपि हमारा मुख्य काम इस ग्रंथ के मुद्रित करने में केवल इतना ही है कि उसके मूलपाठ को सार्थक शोध दें परंतु यह महाकाव्य वर्तमान समय में ऐसी बिगड़ी हुई दशा में उपस्थित है कि उस पर इतना परिश्रम न किया जाय कि जितना हम यह करते हैं तो हमारा किया हुआ शोधन पुरातत्ववेत्ता विद्वानों को भली भांति संतुष्ट नहीं कर सकता। अतएव हम चंद के काव्य की अर्थ संबन्धी कठिनता को दिखलाने के लिये केवल इस मंगलाचरण के रूपक का अर्थ उदाहरण के लिये करते हैं कि जिससे हमारे पाठकों को मालूम हो कि मूलपाठ का शुद्ध होना अर्थ पर दृष्टि दिए बिना असंभव है। महाकवि चंद अपने इस महाकाव्य के आरंभ में इस मंगलाचरण के रूपक में आदिदेव, गुरु, वाणी, लक्ष्मीश, सुरनाथ और सर्वेश को नमस्कार करता है। वह कहता है कि "आदिदेव को नमन कर के और गुरु को नमस्कार करके, वाणी के पदों को वंदन, स्वर्ग, पाताल, (और) पृथ्वीके स्रष्टा लक्ष्मीश के चरणों का आश्रय, दुष्टों के दहन करने को तम गुण (जिस) ईश में रहता है [उस] सुरनाथ की पादुका का सेवन [और] थिर, चर, जंगम, [और] जीव के वरदामय सर्वेश को [मैं] चंद नमन करता हूं"

हमारे किए इस अर्थ के विचार से विद्वानों को मालूम हो सकेगा कि यद्यपि इस के अनेक प्रकार के अर्थ हो सकते हैं परंतु यह अर्थ चंद के व्याकरण शास्त्र संबन्धी जो नियम उसके इस ग्रंथ से मालूम होते हैं उनके अनुसार सरल और कवि की उक्ति के अनुकूल है। इसमें कितनेक शब्द ऐसे भी हैं कि जो अर्थ करनेवाले को चमका और भड़का देते हैं, परंतु हम इस रूपक के सब शब्दों के विषय में अर्थात् जिसके विषय में जितना कहना आवश्यक है कहते हैं–

आदीदेव [सं. पु. आदिदेवः । आदौ दीव्यति स्वयं राजते] नारायण। इस शब्द के विषय में हम ने ऊपर कहा है अतएव यहां विशेष नहीं कहते, किन्तु उसके प्रयोग के दो प्रमाण और भी यहां देते हैं–सहस्रात्मा मया योव आदिदेव उदाहृतः ॥ या. स्मृ. ॥ वासुदेवो बृहद्भानुरादि देवः पुरंदरः ॥ वि. सहस्रनाम ॥

प्रनम्य (सं. प्रणम्य) नमन करके अथवा प्रणाम कर के ॥

नम्य (सं. धा. नमः अथवा नम्=नमना) नमस्कार करके । इस शब्द के भी म्य पर नाटक की ध्वनि के अनुसार ताल है अर्थात् यहां भी स्वर उदात्त है ॥

गुरुयं गुरु को । यह चंद की हिन्दी के पुल्लिंग गुरु शब्द की द्वितीया का निज प्रयोग है । चंद के ऐसे निज प्रयोगों को देख कर हम को आश्चर्य के वश न हो जाना चाहिए किन्तु इस बात की खोज करनी चाहिए कि चंद की हिन्दी के व्याकरण संबंधी नियम क्या और कैसे हैं । और ऐसे अनुस्वार सहित शब्दों को देख कर यह अनुमान भी नहीं करना चाहिए कि रासो का ग्रंथकर्ता ऐसा निर्बोध था कि उसको अनुस्वार और विसर्ग तक का ज्ञान नहीं था । ये हमारे अन्वेषण ध्यान में लाने योग्य हैं कि प्रथमतः चंद की हिन्दी तीन प्रकार की है—षट भाषा और पुरान की भाषा की योनिवाली १ षट-भाषा और पुरान की भाषा के सम २ और देशी प्रसिद्ध ३ । दूसरे, सांप्रत हिन्दी में तो नपुंसकलिंग नहीं है परंतु चंद की हिन्दी में तीनों लिंग हैं । तीसरे, जितनी संज्ञा अनुस्वार सहित उसमें प्रयोग हुई हैं वे पुल्लिंग अथवा नपुंसकलिंग ही हैं । देखो, यहां **नम्य गुरुयं** वाक्य खंड में कवि के अर्थको ध्यानमें लानेसे गुरुय शब्द पुल्लिंगमें प्रयोग किया गया मालूम होता है और पांचवें रूपक की इस तुक **गुरं सब्ब कव्वी लहू चंद कव्वी जिन दर्सियं देवि साअंग हव्वी** में गुरं शब्द चंद ने अपनी हिन्दी के नपुंसकलिंग की प्रथमामें प्रयोग किया है । और जहां क्रिया शब्दों में अनुस्वार है, जैसे इसी प्रमाण में प्रवेश की गई तुक में **दर्सियं** शब्द है यह संस्कृत **दर्शितं** से है । बहुतसे शब्दों पर लेखकों ने अपने अव्युत्पन्न होने के कारण जो अनुस्वार लगा दिये हैं उनका सूक्ष्म विचार करने से विद्वान स्पष्ट जान सकते हैं कि यहां कवि ने अनुस्वार का प्रयोग नहीं किया था किन्तु लेखकों ने अपनी अज्ञानता से लगा दिए हैं और कहीं कहीं उन्हों ने कवि के प्रयोग किए हुए अनुस्वारों को उड़ा दिया है; जैसे पांचवें रूपक के भुजंगप्रयात छंद की पहिली तुक में चंद ने ऐसा प्रयोग किया था कि **प्रथमं भुजंगी सुधारी ग्रहंनं जिनैं नाम एकं अनेकं कहंनं** ॥ उस के स्थान में एसियाटिक सोसाइटी की छापी हुई पुस्तक१के पत्र ३ में देखो कि जिस लिखित पुस्तक से वह छापी गई है उसके लेखक ने **प्रथम भुजंगी सुधारी ग्रहनं जिनै नाम एकं अनेकं कहनं** पाठ कर दिया है । इसके अतिरिक्त चंद के अनुस्वार सहित शब्दों के प्रयोग करने के और भी अनेक कारण हैं परंतु वह जब अपने संकलित किये हुए चंद के व्याकरण संबंधी नियम हम कुछ समय में प्रकाश करेंगे तब स्पष्ट रीति से हमारे पाठकों को हमारे बड़े परिश्रम से सिद्ध किये हुए अन्वेषण मालूम हो जांयगे ॥

वानीय (सं. स्त्री. वाणि:—सरस्वत्याः) सरस्वती के । यह चंद की हिन्दी में षष्ठी के एक वचन का रूप है और जैसे संस्कृत में धी: शब्द के रूप में षष्ठी का धियः होता है उसी तरह चंद ने अपनी हिन्दी में वानीय किया है ॥

वंदे वंदन करता हूं ॥ चेत रखना चाहिए कि हम ऊपर **गुरुयं** शब्द की व्याख्या में चंद की हिन्दी तीन प्रकार की होना बतला आए हैं उसमें से यहां यह **वंदे** संस्कृत-सम के रूप का प्रयोग चंद ने किया है ॥

पयं (सं० पय—गतौ) चरणों को ॥ यह चंद की हिन्दी के पुल्लिंग की द्वितीया का रूप है । कोई कोई कवि तो **पय** शब्द को पैर का वाचक होना बिलकुल नहीं बताते और उसका अर्थ यहां "दूध जैसी श्वेत अथवा जल जैसी निर्मल सरस्वती को वंदन करता हूं" करते हैं, वे भूलते हैं । **पय** शब्द पैर का वाचक सांप्रत हिन्दी में भी रात्रिदिन बोलचाल में आता है

जैसे पयलगी, पैलगी, पायागन, पाय ओर पयदल, इत्यादि। ओर संस्कृत में भी पय-गतौ है। याकज साहब ने जो इस शब्द को पैर का वाचक अपने अंग्रेजी अनुवाद में माना है वह बहुत ठीक है ओर हम उनसे इस विषय में सम्मत हैं॥

सिष्टं (सं० त्रि० सृष्टः=निर्मिते। रचिते) सृजनेवाला। चंद की हिन्दी में सं० सृष्टः सृजनेवाले का नपुंसकलिंग की प्रथमा का एकवचन है। इसको शिष्ट अथवा श्रेष्ठ आदि शब्दों का अपभ्रंश मानना अयुक्त है किन्तु यह चंद की हिन्दी में सं० त्रि० सृष्टः का सिष्टं बना है। इसी तरह सं० भृष्ट, भ्रष्ट, धृष्ट, दृष्ट, के अपभ्रंश रूप हिन्दी में भिष्ट, धिष्ट, दिष्ट होते हैं॥

धारण [सं० पु० धारण=स्वर्लोके] स्वर्गलोक। **धारयं** [सं० त्रि० धारय=धारके। नाग देशे॥ धारयैः कुसुमैर्मर्णाम्। भट्टिः] पाताल लोक॥ **वसुमती** [सं० स्त्री० भूलोक। स्पष्टम्] भूलोक यहां थोड़ा सूक्ष्म विचार कर हमारे किये अर्थ की सत्यता जांचने का काम है क्योंकि **सिष्टं धारण धारयं वसुमती लच्छीस चर्नाश्रयं** का अर्थ अनेक कवि अनेक प्रकार का करते हैं परंतु हम उन को चंद के अभिप्राय के अनुकूल नहीं समझते। इन शब्दों के पृथक् पृथक् अर्थ तो हमने संस्कृत कोशों से लेकर वर्णन कर ही दिये है। इस के सिवाय **लच्छीस** शब्द जो विष्णु का वाचक है वह हम को यह अर्थ करने की स्पष्ट लक्षणा कराता है कि धारण=स्वर्गलोक। धारयं=पाताललोक॥ ओर वसुमती=भूलोक का सिष्टं=सृजनेवाला [जो] लच्छीस=विष्णु [उस के] चर्नाश्रयं=चरणों का सेवन [करता हूं] यही बहुत ठीक अर्थ है क्योंकि यहां तत्पुरुष समास है ओर लक्ष्मीश का अर्थ विष्णु शास्त्रों में नीचे लिखे प्रमाण से स्पष्ट है। उस से भी हमारा किया हुआ अर्थ अच्छी तरह पुष्ट होता है—

यस्मात् विश्वमिदं सर्वं तस्य शक्त्या महात्मनः।
तस्मात् देवोच्यते विष्णु विशधातोः प्रवेशनात्॥
ज्योतींषि विष्णुर्भुवनानि विष्णुर्वनानि विष्णुर्गिरयो दिशश्च।
नद्यः समुद्राश्च स एव सर्वो यदस्ति यन्नास्ति च विप्रवर्येति॥
अनादि निधनं विष्णुं। सर्वलोक महेश्वरं।
लोकाध्यक्षं स्तुवं नित्यं। सर्व दुःखाति गो भवेत्॥ ६॥
लोकनाथं महद्भूतं। सर्वभूतभवोद्भवं॥ १०॥
लोकाध्यक्षः सुराध्यक्षो। धर्माध्यक्षः कृतः कृतः॥ ३१॥
लक्ष्मीवान् समितिं जयः॥ ५६॥ श्रीमाल्लोक त्रयाश्रयः॥ ८२॥
त्रिलोकात्मा त्रिलोकेशः। केशवः केशिहा हरिः॥ ८६॥
लोकस्वामी त्रिलोक धृत्॥ ८७॥ लोकाधिष्ठानमद्भुतः॥ ११२॥
त्रीन् लोकान् व्याप्य भूतात्मा। भुंक्ते विश्व भुगव्ययः॥ १४४॥
वासनाद्वासुदेवस्यः। वासितं भुवन त्रयं॥ १५३॥

चर्नाश्रयं (सं० चरण + आश्रयं =) चरणों का सेवन॥ यह अनुस्वार सहित शब्द भी चंद की हिन्दी का संस्कृत-सम नपुंसकलिंग है॥

तं। गुं [सं० न० तमः ओर पु० गुणः] तम। गुण। चंद की हिन्दी के नपुंसकलिंग॥ प्राकृत-भाषा सम का प्रयोग॥

तिष्ठति (सं० तिष्ठति) रहता है । चंद की हिन्दी के संस्कृत—समभेद का रूप है ॥

ईस (सं० पु० ईशः = महादेव) सदाशिव ॥

दुष्टु (सं० न० दुष्ट = अधमो पंचके) दुष्ट ॥ दुष्ट दहनं = दुष्टों का दहन करने के लिये अथवा दुष्टों के दहनार्थ ॥

दहनं (सं० पु० दहनः = दाहे । भस्मी करणे ।) दहन के लिये चंद की हिन्दी का नपुं० है ॥

सुनाथ (सं० पु० सुर+नाथ = रुद्रे) महादेव की ॥

सिद्धि (सं० स्त्री० = सिद्धिः = पादुकायाम्) पादुका का ॥

अर्च (सं० पु० अयः = अयणे । आये ॥ श्रिञ् = सेवायाम्) सेवन ॥ सिद्धि अर्यं = पादुका का सेवन ॥

थिर (सं० पु० स्थिरः = स्थिर पदार्थेः) स्थिर वस्तु; जैसे,— पर्वत और पृथ्वी आदि ॥

चर (सं० पु० चरः = चले) चर वस्तु अथवा पदार्थ; जैसे, वस्तु और जलादि ॥

जंगम (सं० त्रि० जंगमः = पशुपक्षी) कीट पतंगादि ॥

जीव (सं० पु० जीवः = प्राणिनि) मनुष्यादि ॥ ध्यान में लेने की बात है कि पंडितों ने सब पदार्थों को स्थावर और जंगम नामक दो भेदों में ही विशेष करके विभक्त किया है। परन्तु चंद ने सब पदार्थों के चार भेद माने हैं । प्रथम स्थिर, जो सदैव स्थिर रहते हैं, जैसे पर्वतादि; दूसरे चर, जो सदैव स्थिर नहीं रहते; जैसे स्थानादि; तीसरे जंगम जो जीव दूध नहीं पीते; जैसे कीट पतंगादि; और चौथे जीव, जो दूध पीते हैं; जैसे मनुष्यादि। हम ने किसी किसी कवि को इन चारों शब्दों के प्रयोग करने के कारण चंद कवि का दोष देते हुए सुना है परन्तु यह उनकी भूल है, क्योंकि उन्हों ने कवि के सूक्ष्म आशय का ध्यान देकर नहीं समझा है ॥

चंद बरदई = इस महाकाव्य का ग्रंथकर्त्ता कि जो हिन्दुओं के अंतिम बादशाह पृथ्वीराज जी चौहान का लगोटिया मित्र और उनके दरबार का कविराज था । वह भट्ट जाति जो आज कल राव करके कहलाती है, उसके जगात नामक गोत्र का था और उसके पुरखा पंजाब देश के लाहौर नगर के रहनेवाले थे और उनकी यजमानी अजमेर के चौहानों की थी । उसकी जैसी शूरवीरता इस काव्य से विदित होती है उसका मुख्य कारण यही है कि वह पंजाब देश की अद्यावधि प्रसिद्ध वीरभूमि के तत्त्वों से उत्पन्न हुआ था और राजपूतानेके हृदयरूपी अजमेर नगर में बड़ा हुआ था । वह षट-भाषा, व्याकरण, काव्य, साहित्य छंद शास्त्र, ज्योतिष, वैद्यक, मन्त्रशास्त्र, पुराण, नाटक, और गान आदिक विद्याओं में अच्छा व्युत्पन्न पंडित था । उसके पिता का नाम वेण और विद्यागुरु का नाम गुरुप्रसाद था । उस की दो स्त्रियों के नाम कमला अर्थात् मेवा और गौरी अर्थात् राजोरा और एक लड़की का नाम राजबाई और दस लड़कों के नाम सूर १ सुन्दर २ सुजान ३ जल्ह ४ बल्ह ५ बलिभद्र ६ केहरि ७ वीरचंद ८ अवधूत अर्थात् योगराज ९ और गुनराज १० थे । इस महाकाव्य के विषयों को वैसे तो उसने समय समय पर बना कर कंठ कर रक्खा था परन्तु उनको यथाकार में उस ने ६० ॥ दिन में रचा था और अंत को उसने रासा की पुस्तक अपने लड़के जल्ह को दी थी । इस रासा के अतिरिक्त उस के रचे और भी कई एक ग्रंथ सुनने में आते हैं परन्तु उन में सब से बड़ा ग्रंथ यही है और अन्य सब ग्रंथ अब बिलकुल नहीं मिलते हैं । उसका सविस्तर जीवनचरित और वंशावली जहां तक हमारे जानने में व्याप्ताि से आई है वह हम इस ग्रंथ के समाप्त होने पर छाप कर प्रसिद्ध करेंगे ॥

धर्म्म-स्तुति ॥

बथुआ ॥ प्रथम सुमंगल मूल अनवियं । स्मृति सत्य जल सिंचिय ।
सुतह एक धर ध्रम्म उभ्यौ ॥
चिपट साष रम्मिय चिपुर । बरन पत्त मुख पत्त सुभ्यौ ॥
कुसुम रंग भारथ सुफल । उकति अलंब अभीर ॥
रस दरसन पारस रमिय । आस असन कवि कीर ॥
छं० ॥ २ ॥ रू० ॥ २ ॥

नमयं – नमस्कार अथवा नमन करता है अथवा करता हूं ॥
सर्वेस – (सं० सर्वेशः = ब्रह्मा) ब्रह्मा ॥
बर्हामयं – बरह – स्वरूप ॥

२. इस रूपक के छंद का बथुआ नाम चंद कवि ने तो अपने समय का प्रसिद्ध ही लिखा है परन्तु वह सांप्रत काल में पुरातत्त्ववेत्ता और कविराजाओं को भी पूरा परिश्रम देनेवाला एक छंद है । हमने इस छंद के लक्षण के लिये अपने अंग्रेजी भरतखंड के कवियों के अतिरिक्त राजपूताने के कवियों से भी पूछा और सब ने आज कल के उपलब्ध छंदग्रंथों में भी उसे ढूंढा परन्तु जो कवि पक्षपातरहित और सज्जन हैं उन्हों ने तो स्पष्ट कह दिया कि इस नाम का कोई छंद हमारे जानने में नहीं आया है किन्तु चंदकृत इसी महाकाव्य में इस छंद का नाम देखने में आता है; परन्तु जो कवि ऐसे हैं कि अपनी हठ-उक्ति के आगे और कुछ ध्यान में ही नहीं लाते उनमें से किसी ने आर्य्या का एक भेद और किसी ने कहा कि इनमे लेखक और शोधक कवि के दोष से काव्य छंद में अथवा उगाहा में दोहा मिल गया है परन्तु किसी का भी कहना पुरातत्त्ववेत्ताओं को संतोष देनेवाला नहीं हो सकता है । इस छंद के विषय में हमारा कहना यह है कि जो आज अमर और भरतकृत छंद-ग्रंथ उपलब्ध होते कि जिन का आश्रय चंद ने लिया है तो उस के शोध में कुछ कठिनता नहीं पड़ती । हम इस छंद को रूपदीप पिंगल में वर्णन किये हुए रिड्डुक का नामान्तर होना निःसंदेह मान कर उस का शोधन करते हैं । देखो रूपदीप पिंगल में रिड्डुक छंद में ही रिड्डुक का यह लक्षण कहा है–

रिड्डुक नाम छंद लक्षण ।

कीजे कला प्रथम तिथ मान, दश एको दूसरे, तीजे गिन दश पांचरिये ॥
फिर चौथे दस एक । परव्यन्त में पांच में करिये ॥
रोडा सत सठ मत्त है । कीनो सेस बखान ॥
तामें फिर दोहा मिले । रिड्डु छंद पहिचान ॥

इससे मालूम होगा कि यह बथुआ छंद कैसा एक विचित्र छंद है कि जिसकी पहिली तुक में दो यति होने के कारण १५+११+१५=४१ मात्राएं होती है और दूसरी में एक यति होने से ११+१५=२६ मात्रा और सब मिलकर ६७ । इन दो तुकों के पीछे एक दोहा होता है । जो इसमें दोहा न लगावें तो जहां तक ६७ मात्राएं होती हैं वहां तक का रोडा नामक छंद होता है ॥

कर्म्म-स्तुति ॥

कवित्त ॥ प्रथम मंगल प्रमान । निगम संपजय वेद धुर ॥
त्रिगुन साख त्रिहुं चक्र । वरन लग्गो सु पत्त छुर ॥
त्वचा भ्रम्म उद्धरिय । सत्त फुल्यौ चावद्दिसि ॥
क्रम्म सुफल उदयत्त । अमत सुखत मध्य वसि ॥
छुवै न वाय न्रप नीति भति । स्वाद अमृत जीवन करिय ॥
कलि जाय न लगै कलंक रवि । सत्ति मत्ति आहुति धरिय ॥

छं० ॥ २ ॥ रू० ॥ १ ॥

इस छंद की प्रथम तुक की यति के प्रथम टुकड़े में जो पाठ अशुद्ध है, उस के स्थान में हमने त्रिय किया है । और दूसरी यति के दूसरे टुकड़े में सिंचियइ के स्थान में सिंचिय और भ्रम्मं के स्थान में भ्रम्म और यत्त के स्थान में पत्त, भारहै को भारह, और परस को पारस शुद्ध किया है और ये शोधन ऐसे साधारण हैं कि जिनके लिये कोई तर्क लिखने की आवश्यकता नहीं है ॥

३ इस रूपक में ग्रंथकर्त्ता वृक्ष के रूपकालंकार से धर्म की स्तुति करता है ॥

कवि ने इस रूपक के छंद को कवित्त संज्ञा दी है । सांप्रत काल में यह छप्पय, छप्पै षटपद, षटपदी आदिक नामों से प्रसिद्ध है, परंतु सत्रहवीं शताब्दी के पहिले यह कवित्त नाम से ही प्रसिद्ध था । रूपदीप पिंगलवाले ने भी जो नीचे लिखा छप्पय का लक्षण कहा है उसमें उसने भी यह कहा है कि—"सुन गरुड़ पंख पिंगल कहै छप्पै छंद कवित्त यह" इससे सिद्ध होता है कि इस ग्रंथ के बनने के समय तक छप्पै का नामान्तर कवित्त करके प्रसिद्ध था ॥

छप्पै

लघु दीरघ नहि नेम । मत्त चौआस करीजे ॥
ऐसे ही तुक चार । धार तुक चार भरीजे ॥
नाम रसावल होय । और वस्तू कभि जानहु ॥
उल्लाला की विरत । फेर तिथि तेरह आनहु ॥
द्वै तुक्क बनावो अंत की । यत यत में अठ बीस गहु ॥
सुन गरुडपंख पिंगल कहै । छप्पै छंद कवित्त यह ॥

इस के अतिरिक्त मंछ कवि-कृत रघुनाथ-रूपक में भी उसने छप्पै छंदों को कवित्त कर के ही लिखा है ॥

इस के पाठ को शोधन करने में ध्यान में लेने जैसी बात है कि प्रथम और मंगल शब्दों के बीच में जो बहुत सी पुस्तकों में क्रिय शब्द है वह अधिक होने से अशुद्ध है, क्योंकि इस पाद में कुल ११ मात्राएं होनी चाहिएं । बेदलेवाली पुस्तक में संपजय शब्द है और एशियाटिक सोसाइटी की छापी हुई पुस्तक में जो संपूजय किया गया है, इसमें मेरी सम्मति यह है कि पाठ में तो संपजय ही रखना चाहिए परंतु अर्थ करने में संपूजय समझना चाहिए, क्योंकि संपूजय

मुक्ति-स्तुति।

कवित्त ॥ भुगति भूमि किय क्यार। वेद सिंचिय जल पूरन ॥
बीय सुवय लय मध्य। ग्यांन अंकू रस जूरन ॥
चिगुन साख संग्रहिय। नाम बहु पत्त रत्त छिति ॥
सुक्रम सुमन फुल्लयौ। मुगति पक्की द्रव संगति ॥
दुज सुमन डसिय बुध पक्क रस। बट विलास गुन पिस्तरिय ॥
तह इक्क साख चयलोक महि। अजय विजय गुन विस्तरिय ॥
छं० ॥ ४ ॥ रू० ॥ ४ ॥

पूर्व कवियों की स्तुति और उच्छिष्ट संज्ञा कथन ॥

भुजंगप्रयात ॥

प्रथमं भुजंगी सुधारी ग्रहंनं। जिनें नाम एकं अनेकं कहंनं ॥

पाठ रखने से छंद टूटता है। गुजराती भाषा में ऐसे शब्द बहुत आते है; जैसे, मुकुन्दराम का मकन्दराम, तुलसी का तलशी, और शिव का शव। ऐसे मुख-दोष के कारण से बिगड़े हुए शब्दों के रूपों के लिये एक यह श्लोक भी प्रसिद्ध है—

गुर्ज्जरो मुखदोषेण। शिवोपि शवतां गतः ॥
तुलसी तलशी जाता। मुकुन्दोपि मकन्दतां ॥

इसके अतिरिक्त चंद की हिन्दी में ऐसे प्रयोग बहुत से आवेंगे; जैसे "षिन्दलालाट प्रसेद् कियो" यहां प्रस्वेद् का प्रसेद् हुआ है। चिहुं के स्थान में चिहूँ किया है, क्योंकि यहां अर्ध अनुस्वार प्राप्त है। लगो के स्थान में लग्गो, उदयत के स्थान में उदयत्त। लग्गौ के स्थान में लगै और छति मति के स्थान में छत्ति मत्ति सुधारे हैं, क्योंकि ऐसे पाठ सुधारने में छंद के टूटने का दोष हम को स्वयम् सचेत करता है ॥

४ इस रूपक में भी चंद कवि रूपकालंकार से कर्म की स्तुति करता है ॥

इसके पाठ में एशियाटिक सोसाइटी आदि की पुस्तकों में जो अंकुर और रजूरन पाठ हैं वे, एक बालक भी जान सकता है कि, बड़ेही अशुद्ध है, किन्तु दृष्टि देने से हमारे किए पदच्छेद से सार्थक पाठ हो जाते है अर्थात् अंकू रस जूरन। हमने रत के स्थान में रत्त, छित्ति के स्थान में छित पाठ किए हैं। हमारे डसिय पाठ के स्थान में आगरा कालेज और बेदले आदि की पुस्तकों में झसिय पाठ है, परंतु वह अशुद्ध है। मालूम होता है कि उनके लेखकों ने ड को ऐसा झ समझ कर अशुद्ध पाठ लिख दिया है और अर्थ पर दृष्टि देकर प्रतिलिपि नहीं की है ॥

५ स्मरण में रखना चाहिए कि इस रूपक में कवि रूपकालंकार से मुक्ति की स्तुति करता है अर्थात् चंद ने दूसरे, तीसरे और इस चौथे रूपकों में क्रम से धर्म्मेश्वर, कर्म्मेश्वर और मुक्तेश्वर नामक ईश्वरों के मंगलाचरण किए हैं ॥

इस भुजंगप्रयात नामक छंद का लक्षण चंद कवि के माने हुए छंद ग्रंथों में से पिंगलमुनि

दुती लभ्भयं देवतं जीवतेसं । जिनैं विश्व राख्यौ वली मंच वेसं ॥
त्रितं वेद बंभं हरी किस्ति भाखी । जिनैं ध्रम्म साध्रम्म संसार साखी ॥
तुती भारती व्यास भारत्थ भाख्यौ । जिनैं उत्त पारथ्थ सारथ्थ साख्यौ ॥
चवं सुक्खदेवं परीखत्त पायं । जिनैं उद्धर्यौ श्रब्ब कुवं सरायं ॥
नरं रूप पंचम्म श्रीहर्ष सारं । नलैराय कंठं दिने पद्द हारं ॥
छटं कालिदासं सुभाषा सुबद्धं । जिनैं वागवानी सुबानी सुबद्धं ॥
कियो कालिका मुख्ख वासं सुसुद्धं । जिनैं सेत बंध्योति भोज प्रबंधं ॥
सतं डंडमाली उलालो कवित्तं । जिनैं बुद्धि तारंग गंगा सरित्तं ॥
जयद्देव अट्ठं कवी कब्बिरायं । जिनैं केवलं किस्ति गोविंद गायं ॥
गुरं सब्ब कब्बी लहू चंद कब्बी । जिनैं दर्सियं देवि सा अंग हब्बी ॥
कवी किस्ति कित्ती उकत्ती सुदिख्खी । तिनैं की उचिष्टी कवी चंद भख्खी ॥
छं० ॥ १० ॥ रू० ॥ ५ ॥

यह लिखते हैं कि 'भुजं प्रयातं यः ॥३८ ॥ अर्थात् जिसके पाद में चार यकार (यगण) हों वह भुजंगप्रयात नामक छंद कहाता है ।

इस पांचवें रूपक के जो पाठ एशियाटिक सोसाइटी की और अन्य पुस्तकों में बहुत अशुद्ध हैं वे ये हैं:—प्रथम । ग्रहनं । कहनं । लषभयं । भारथ । उतपारथ । सारथ । सुखदेवं । परीषत । उद्धयौं श्रव । कुरुबंस षद्ध । कालिदास । मुष्य । सुसुद्ध । बंध्यौ । तिभोजन । बुद्धितारंग । गंगासरित्तं जयदेव । अठं । केवल । दरसिय । उकति । तिन । कवि । और भख्यो । इनमें से प्रत्येक को सिद्ध करने के लिये जो हम सबके विवेचना करें तो बहुत स्थान चाहिए, परंतु मैं आशा करता हूं कि पुरातत्त्ववेत्ता इन को हमारे शुद्ध पाठों से मिलाकर और जो कुछ चंद कवि की हिन्दी के नियम हम ने संक्षेप में पहिले प्रकाश किये हैं उनसे विचार कर सिद्ध कर लेंगे ।

इस रूपक में चंद कवि अपने से पहिले हुए मुख्य मुख्य कवियों की स्तुति करके अंत की दो तुकों में उनको अपने गुरु मान कर और आप निरभिमान होकर अपने काव्य को उनके कहे काव्य की उच्छिष्टी होने की संज्ञा देता है । जैसे कि इस महाकाव्य के किसी किसी रूपक में चंद के समय के पीछे बरते हुए वृत्त लिखे प्राप्त होते हैं और उनपर से इस ग्रंथ की प्रामाणिकता में संदेह किया जाता है, वैसेही यह रूपक क्या इस ग्रंथ की प्रामाणिकता को सिद्ध करनेवाला एक प्रमाण रूप नहीं है? और अन्य कवि जैसे श्रीहर्ष और जयदेवादि का समय निश्चय और निर्णय करने में पुरातत्त्ववेत्ताओं का सहायक और उपकारी नहीं हो सकता है ?

इस के अतिरिक्त इस छंद की तीसरी तुक में जो एक बंभं शब्द चंद कवि ने प्रयोग किया है उस को देख कर चारण राव और भाट जाति के अच्छे अच्छे कवियों को हम ने आश्चर्य करते हुए देखा है और वे उसका अर्थ बंद बंद करते हैं । कोई उसको ब्रह्म शब्द का अपभ्रंश बतलाता है और कोई चारों वेदों के ग्रंथों का वाचक बतलाता है और कोई कहता है कि महादेव की मूर्ति के आगे जो गाल बजा के बंबं शब्द मुख से कहते हैं और ऐसा करने से महा-

चंद की स्त्री अपने पति के उच्छिष्ट संज्ञा कथन में शंका करती है ॥

दूहा ॥ उच्छिष्ट चंद छंदह वयन । सुनत सु जंपिय नारि ॥
तनु पवित्र पावन कविय । उकति अनूठ उधारि ॥
छं० ॥ ११ ॥ रू० ॥ ६ ॥

कवित्त ॥ कहै कंति सम कंत । तंत पावन बड़ कब्बिय ॥
तंत मंत उच्चार । देवि दरसिय भक्ति सब्बिय ॥

देव प्रसन्न हो जाते हैं उसका वाचक है, परन्तु इस शब्द का हम पताल गाकर बताते हैं कि यह थंभं चंद की हिन्दी का भूतकालिक क्रियावाचक शब्द है और संस्कृत भाषा में यङ्लुगन्त प्रक्रिया के प्रयोगों में जो बंभणीति बभंति प्रयोग प्रसिद्ध होता है उससे बना है और उसका यहां फिर फिर वा बार बार पढ़ा वा भणा का अर्थ है। क्योंकि "चवं वेद बंभं हरी किति भाखी" इस तुक का अर्थ यह है कि इस 'जोशतेम ने चारों वेदों को बार बार पढ़ा वा भणा और हरी की कीर्ति को भाखा"। जो मनुष्य संस्कृत भाषा में अच्छा व्युत्पन्न और पक्षपात और हठ जैसे दोषों से विमुक्त और सत्य का दृढ़ अवलम्बन करनेवाला है वह, हम आशा करते हैं कि, ऐसे प्रयोगों को देख कर कदापि यह नहीं कहेगा कि इस महाकाव्य का ग्रन्थकर्त्ता चंद संस्कृत भाषा में अव्युत्पन्न था ॥

इस रूपक में चंद कवि आठ कवियों को अपने गुरु मान कर उनकी स्तुति और उनकी काव्य-रचना-शक्ति का वर्णन करता है। वह सब से पहिले भुजंगी नाम से परमेश्वर को कवि ग्रहण करता है क्योंकि वेदादिक में उसका कवि नाम कहा है; यथा —

"होता यो देव्या कवी०" यजुः "प्रथम वरणं भेषजं कविम्०" यजुः
"कविर्मनीषी परिभूः स्वयंभूः०" ईशोपनिषत्
"कविः क्रान्तदर्शी सर्वज्ञ नान्यतोऽस्ति द्रष्टा" इस्मृतेः ॥ शा० भा०
"कविं पुराणमनुशासितारम्०" गीता ॥

दूसरे जोवतेश से प्राणनाथ अर्थात् ब्रह्मा कि जो आदि कवि कहाता है जैसे भागवत में कहा है कि "तेने ब्रह्महृदा य आदि कवये मुह्यन्ति यत् सूरय" ॥

बाकी सब कवियों के विषय में कुछ विशेष कहने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि सर्व काव्यारसिक लोग व्यासादि के नाम से भले प्रकार विज्ञ हैं ॥

६—७—कवि चंद ने जो पहिले रूपक में अपने काव्य को अपने से पहिले हुए कवियों के काव्य का उच्छिष्ट होना कहा है उसे सुनकर उसकी स्त्री उच्छिष्ट संज्ञा में आश्चर्य के साथ शंका और अपने पति के गुणों का वर्णन करती है अर्थात् इन रूपकों में कवि चंद ने अपनी स्त्री के प्रश्नोत्तर के प्रसंग से अपने काव्य की उच्छिष्ट संज्ञा के हेतु और अपने गुण प्रकाश किए हैं। इन में सम, कंति और कंत शब्दों के प्रयोग विद्वानों की दृष्टि में रहने योग्य हैं। सम (सं० अ० सम्-संगे,-वयले, समुच्चये,) को अथवा प्रति, और सम ब्रह्मरूप में सम शब्द तुल्य के अर्थ में कवि ने प्रयोग किया है; कंति (सं० स्त्री कम्-ति) पत्नी अथवा स्त्री, और कंत (सं० पु० कम्+त) पुरुष अथवा

तंत श्रोर उचंत । रंग राजन सुख दाइय ॥
बाल केल प्रत्यंग । सुरनि उद्धरि कविनाइय ॥
अवलंब उकति उच्चार करि । जिह्वित मोहि कोविद् इवै ॥
सम ब्रह्मरूप या सब्द कहुँ । क्यों उचिष्ट कवियन कवै ॥

छं० ॥ १२ ॥ रू० ॥ ७ ॥

चंद अपनी स्त्री की शंका का समाधान करता है ॥

कवित्त ॥ सम बनिता वर बंदि । चंद जंपिय कोमल कल ॥
सबद ब्रह्म इह सत्ति । अपर पावन कवि निर्मल ॥
जिह्वित सबद नहिं रूप । रेख आकार ब्रम्ह नहिँ ॥
अकल अगाध अपार । पार पावन चयपुर महिँ ।
तिहिं सबद ब्रह्म रचना करौं । गुरु प्रसाद सरसैं प्रसन ॥
जद्यपि सु उकति जूठौ जुगति । तौ कमल बदनि कवितह हँसन ॥

छं० ॥ १३ ॥ रू० ॥ ८ ॥

चंद की स्त्री पुनश्च शंका करती है ॥

कवित्त ॥ तुम बानी बरबंद । नाग देखंत विमल मति ॥
छंद भंग गन रहित । कंठ कौमार काव्य छत ॥

पति, यह तीनों चंद की हिन्दी के संस्कृत-सम प्रयोग है। और तंत और मंत शब्दों के प्रयोग भी दृष्टि देने जैसे हैं—तंत पावन में तंत=तत्व और तंत मंत में तंत=तंत्र और मत=मंत्र के कारण कवि ने प्रयोग किए हैं ॥

अन्य पुस्तकों में यह अशुद्ध पाठ हैं :—सु, जंपिय, कवि, सुख, दाईय, कवितांईय, को, विद, समब्रम्हरूप, कहु कविय और न ॥

८ चंद इस रूपक में अपनी स्त्री को उसकी शंका का उत्तर देकर समाधान करता है। शब्दब्रह्म (सं० शब्दात्मकं ब्रह्म) शब्द का प्रयोग चंद के व्याकरण और वेदान्त शिक्षा के ज्ञान का द्योतक है। गुरुप्रसाद शब्द यहां श्लेषार्थ में कवि ने प्रयोग किया है क्योंकि भाटजिनों के अनुसार चंद के विद्या-गुरु का नाम गुरुप्रसाद था। यद्यपि कुछ विशेष वृत्त नहीं मिलते तथापि यह गुरु प्रसाद नामक पंजाब देश का रहनेवाला एक बड़ा पंडित हुआ है। कवितह चंद की हिन्दी का निज प्रयोग है और उसका अर्थ कवित्त अर्थात् काव्य रचनेवाले कवि का है। किसी किसी पुस्तक में जो बरबंदि, अमल, चयपूर, महि, तिहि, और प्रसन पाठ हैं वे अशुद्ध हैं।

९ जिन पुस्तकों में ये पाठ हैं—अमीय, सुनर और अमलहहि, वे अशुद्ध हैं। इसमें दूसरी तुक का दूसरा पाद "कंठ कौमार काव्य छत" विद्वानों के ध्यान देने योग्य है। इसका आशय यह

बुधि तरंग सम गंग। उकति उच्चार अमिय कच ॥
मुरन सुनत बिहसंत। मंत जनु वश्यकरन बल ॥
अवतार भूप प्रिथिराज पहु। राज सुख तिन सम अच्छि ॥
बोराधि बीर सामंत सब। तिन सु गल्ह अच्छी अच्छि ॥
छं० ॥ १४ ॥ रू० ॥ ९ ॥

चंद अपनी स्त्री की शंका का पुनश्च समाधान करता है ॥

कवित्त ॥ गज गवनी प्रति चंद। छंद कोमल उच्चारिय ॥
मनहरनी रस बेलि। सुरन सागर रस धारिय ॥
बंक नयन वय बाल। प्रानवल्लभ सुखदाइय ॥
अगुन निगुन गुरु अच्छनि। गवरि पूजा फल पाइय ॥
भण आदि अंत कविता जिते। तिन अनंत गति मति कच्चिय ॥
अनेक ग्रंथ तिन बरनवत। यैं उच्छिष्ट मति मैं लच्चिय ॥
छं० ॥ १५ ॥ रू० ॥ १० ॥

चंद अपनी स्त्री के आगे ईश्वर के ऐश्वर्य का वर्णन करता है ॥

॥ पद्धरी ॥

प्रनम्म प्रथम मम आदिदेव। ऊँकार सब्द जिन करि अछेव ॥
निरकार मध्य साकार कौन। मनसा बिलास सच फल फवीन ॥ १६ ॥
चयगुनच तेज चयपुर निवास। सुर सुरग भूमि नर नाग भास ॥
फुनि ब्रह्मरूप ब्रह्मा उच्चार। कथि चतुरवेद प्रभु तत्त सारि ॥ १७ ॥

है कि चंद की स्त्री अपने पति से कहती कि तुम कंठ कौमार काव्य ज्ञत हो अर्थात् तुम को कौमार काव्य कंठ है। क्या यह भी चंद के संस्कृत भाषा में व्युत्पन्न होने का एक अच्छा प्रमाण नहीं है ?

१० अन्य पुस्तकों में ये पाठ अशुद्ध हैं—बेली, सुखदाईय, जितै, बरन, लत और मैं। इस रूपक में गवरि शब्द श्लेषार्थ में कवि ने प्रयोग किया है क्योंकि ख्यातियों में चंद की स्त्री का नाम गौरी करके प्रसिद्ध है ॥

११ इस रूपक के छंद का नाम पद्धरी है और उसका लक्षण यह है—
दस करो प्रथम फिर षट मिलाय। गिन षोडश मत्ता पाय पाय ॥
इक जगन अंत में धरत सोय। भनि शेष पद्धरी छंद होय ॥ रूप दी० ॥

इस रूपक में चंद अपनी स्त्री को ईश्वर का ऐश्वर्य वर्णन कर बताता है और पहिली तुक में प्रनम्य पाठ नहीं ग्रहण करना चाहिए किन्तु प्रनम्म पाठ ठीक है अर्थात् चंद अपनी स्त्री को

बरनयौ आदि करता अलेख । गुन रहित गुननि नह रूप रेख ॥
जिहि रचे सुरग भू सत पताल । जम ब्रह्म इन्द्र रिषि लोकपाल ॥ १८ ॥
पवन अग्गि जल धर अकास । सरिता समुद्द तिथि गिर निवास ॥
असि लक्ख चार रच जीव जंत । बरनंत ते नहीं लहों अंत ॥ १९ ॥
अट्ठार बन्न वेली सु कीन । नाना प्रकार सब गुन अधीन ॥
करि सकै न कोइ अग्याहि भंग । धरि हुकुम सीस दुख सहै अंग ॥ २० ॥
दिनमान देव रवि रजनि भोर । उग्गैंइ बनैं प्रभु हुकम जोर ॥
ससि सदा रांति अग्या अधीन । उग्गैं अकास होय कला हीन ॥ २१ ॥
द्रिगपाल दाबि रहै सबरि भूंमि । चमकें न कार रहै चांपि चूंमि ॥
परिमान पवन करि गवन गाह । घटि बढि अंग मंडै उछाह ॥ २२ ॥
इन्द्र सुर्ग मेघ अग्या अकास । बरखा सु बरख रक्खे हुलास ॥
धर रहि अचल होय प्रभु प्रताप । हलि चलि न निमख सक्कै सताप ॥ २३ ॥
उठ्ठंत लहरि लग्गी अकास । तठ समुद सत्त नहिं छोज तास ॥
परिमान अप्प लंघै न कोइ । करै सोइ क्रम प्रभु हुकम जोइ ॥ २४ ॥
अग्यान मेटि को सकै ताहि । भूत न भविष्य को ब्रत्त माहि ॥
बरनयौ वेद ब्रह्मा अछेह । जल थलह पूरि रह्यौ देह देह ॥ २५ ॥
पुनि कहे व्यास दसअठ पुरान । अवतार रचित नाना विधान ॥
बरनयौ विमल मति देव देव । सब रहै सोधि नह लह्यौ भेव ॥ २६ ॥
फुनि माल्मीक रामावतार । सत कोटि ग्रंथ कथि तत्त सार ॥
विध्वंसि सीय कज देव दाद । प्राक्रंम रीछ कपि दयित वाद ॥ २७ ॥
पुनो पंच काव्य कवितान कीन । अग्यान नरन उर दीप दीन ॥
कित्तीक बात मो मति प्रकास । करि सकों ग्रब्ब मो होइ हास ॥
छं० ॥ २८ ॥ रू० ॥ ११ ॥

कहता है कि तू प्रथम मेरे आदिदेवको प्रनमन कर कि जिसने ऐसा ऐसा किया है । हमारा यह कहना अर्थ पर दृष्टि देने से बहुत ठीक प्रतीत हो सकता है । अन्य पुस्तकों में जो ये मिलते हैं वे अशुद्ध हैं जैसे-प्रनम्य, मन, ब्रह्माड, चार, सत्त, पाताल, पवनह, अरु, आसि, च्यार, कोई, सबर, कोर, बठी, संताप, अहि, समां, हि, कहे, न, रहलह्यौ, सीयक, जदेव, प्राक्रम और ग्रब्ब ॥

इस रूपक के छंद २३ की पहिली तुक के पहिले पाद में जो हमारे लहरि पाठ के स्थान में एशियाटिक सोसाइटी की छापी हुई पुस्तक में लहर पाठ है और उस को मिस्टर जान बीम्स

चंद की स्त्री अपने पति से अष्टादश पुराणों की अनुक्रमणिका पूछती है।

दूहा ॥ सुनत काव्य कवि चंद को। चित आनन्दी नारि ॥
तुम बानी बानो प्रसन। हसन हुवंत निवारि ॥
छं० ॥ २९ ॥ रू० ॥ १२ ॥

कवित्त ॥ कहै कंति मतिवंत। तंत रसना रस सागर ॥
तुम गुन श्रवन सुनंत। जानि चमकंत कलाधर ॥
तुम देवी बरदान। दान दीजै मुहि कव्वियः ॥
अष्टादसह पुरान। नाम परिमानह भव्विय ॥
तुम कथन कथन आनन्द मुहि। अग्ग पच्छ भव सुद्धरै ॥
अग्यान तिमर नट्ठय सुनत। अध्य कमल हिय उद्धरै ॥
छं० ॥ ३० ॥ रू० ॥ १३ ॥

चंद अष्टादश पुराणों की अनुक्रमणिका का कथन करता है॥

पद्धरी ॥ ब्रह्माब्यदेव सम बासुदेव। अष्टदस पुरान तिन कहि सुभेव ॥
तिन कहौं नाम परिमान ब्रम्म। जिन सुनत सुद्ध भव होत तम्म ॥ ३१ ॥
ब्रह्मंड पुरान दस सहस जुहि। जिहि पढ़त सुनत तन तप्प कुहि ॥
पचास पंच हज्जार गम्मि। पद्मह पुरान तिन कह्यौ ब्रम्मि ॥ ३२ ॥
तेतीस सहस सैं चारि जानि। विष्णू पुरान विष्णू समानि ॥

साहब ने जो फ़ारसी ابر अब्र शब्द होना अनुमान किया है वह अयुक्त है, क्योंकि फ़ारसी ابر अब्र शब्द का अर्थ यहां सर्वरीत्या अघटित है, किन्तु मानना चाहिए कि चंद ने हिन्दी सबरि शब्द का छंद टूटने के कारण सबरी प्रयोग किया है और रासो की किसी किसी पुस्तक में ऐसा पाठ भी मिलता है। जो इस शब्द का रकार और बकार के उलट पुलट लिखे जाने से बरस शब्द होना भी हम मानें तथापि यह कुछ असंगत नहीं है॥

१२ इस में प्रसन्न शब्द का पाठ किसी किसी पुस्तक में मिलता है, परंतु यहां छंद टूटने के कारण कवि ने प्रसन करके प्रयोग किया है॥

१३ इस कवित्तके भिन्न भिन्न पुस्तकों में जो पाठ मिलते हैं वे अयुक्त हैं; जैसे—कहै, बरदानि, पच्छू, नट्ठ, व, कंध्यक, और मल ॥

१४ इस रूपक के अशुद्ध पाठान्तर अन्य पुस्तकों में ये हैं—अष्टादस, कहै, सभेव, कहिहो, तवानि, तप्प, पंचास, पंचह, च्यारि, तिष्णु, अठार, भागवत, तहां, तेईस, दुस, संपूर, कनिन, अठि हज्जार, अछ, पछ, कूरम, मछ, भक्ति, हरांन, सहंस, और नंस ॥

इस रूपक की ४थ थें छंद की एक तुक भाषा के कति घटती बताकर चंद पर दोषारोपण करते हैं, परंतु यह उनकी भूल है; क्योंकि चंद ने इस छंद को एक ही तुक में कहा है

चौबीस सहस कहि शिव पुरान। निहि पढ़त सुनत सम अमिय पान ॥ ३३ ॥
अठ्ठारह सहस भागवत भेव। करि पार परिक्खत सुक्कदेव ॥
नारद पुरान कहि पाव लाख। तहं मुक्ति मोद आनन्द भाख ॥ ३४ ॥
मारकंड नाम तेइस हजार। पौरान पवित्र सो दुःख जार ॥
पंद्रह हजार संख्या सपूर। अग्नी पुरान पढि पाप दूर ॥ ३५ ॥
चवदै हजार सैं पांच पद्धि। भवषिन पुरान सो पाप जद्धि ॥
ब्रह्मवैवत्र सहसं अठार। केवल गिनान कथि भक्ति सार ॥ ३६ ॥
इक्कह हजारं लिंगह पुरान। आनन्द अर्थ आगम गुरान ॥
चौबीस सहस बाराह भक्ति। पौरव पुरान तिन अमित सक्ति ॥ ३७ ॥
हजार इक्यासी कहि विवेक। स्कंदह पुरान भव भक्ति एक ॥
ग्यारह सहस बावन सु अच्छ। पौरान सुनत सुधि अग्ग पच्छ ॥ ३८ ॥
सत्तह हजार कूरंम पुरान। भाव विनोद प्राक्रम पुरान ॥
विद्या हजार मित मच्छ देव। विधि संख उद्धरे सेव भेव ॥ ३९ ॥
उनईस सहस गरुड़ह पुरान। श्रोतान वक्त भक्ती उरान ॥
ब्रह्मांड पुरान बारह सहस्स। करि व्यास भक्ति प्रभु कंस नस्स ॥ ४० ॥
पंद्रह हजार अरु चार लाख। सम ब्रह्म व्यास कहि चंद भाख ॥

छं० ॥ ४१ ॥ रू० ॥ १४ ॥

चंद अपनी लघुता वर्णन करता है ॥

दूहा ॥ फुनि कित्ति चहुआन की। जुग्गनि जुग्ग निवास ॥
अप्प मत्ति सरसें सबल। मनी करै कवि हास ॥

छं० ॥ ४२ ॥ रू० ॥ १५ ॥

और श्लोकार्ध कहने और लिखने की रीति संस्कृत भाषा के काव्यों में प्रचलित है। चंद की यह संस्कृत-काव्य-सम शैली इस महाकाव्य में बहुत स्थानों पर देखने में आवेगी अतएव हम को इस पर आश्चर्य नहीं करना चाहिए। ऐसे उदाहरण पुराणों में बहुत मिलेंगे, परंतु जिन के पढ़ने में माघ काव्य भी आया होगा वे जानते होंगे कि माघ ने पहिले सर्ग के दूसरे श्लोक के साथ नीचे लिखा अर्धश्लोक कहा है —

"द्विधा कृतात्मा किमयं दिवाकरो। विधूम रोचिः किमयं हुताशनः ॥
गतं तिरश्चीनमनूरु सारथेः। प्रसिद्धमूर्ध्व ज्वलनं हविर्भुजः ॥ २ ॥
पतत्यधोधाम विसारि सर्वतः। किमेतदित्याकुल मीक्षितं जनैः ॥

१५ इस में अशुद्ध पाठान्तर ये हैं :—अप्प और मति ॥

गाथा ॥ पय सक्करी सुभत्ता । एकत्तौ कनय राय भोयंसी ॥
कर कंसी गुज्जरीय । रब्बरियं नैव जीवंति ॥
छं० ॥ ४३ ॥ रू० ॥ १६ ॥

सत्त खनै आवासं । महिलानं मह सद्द नूपरया ॥
सतफल बज्जुन पयसा । पब्बरियं नैव चालंति ॥
छं० ॥ ४४ ॥ रू० ॥ १७ ॥

रब्बरियं रस मंदं । क्यूं पुज्जति साध अमियेन ॥
उक्ति जुकत्तिय ग्रंथं । नथि कत्य कवि कत्थिय तेन ॥
छं० ॥ ४५ ॥ रू० ॥ १८ ॥

याते वसंत मासे । कोकिल भंकार अंब बन करयं ॥
बर बब्बर विरष्षं । कपोतयं नैव कलयंति ॥
छं० ॥ ४६ ॥ रू० ॥ १९ ॥

सहसं किरन सुभाउ । उगि आदित्य गमय अंभरं ॥
अय्यं उभा न सारो । खोडलयं नैव भलकंति ॥
छं० ॥ ४७ ॥ रू० ॥ २० ॥

कज्जल मषि कस्तूरी । रानी रेहंत नयन अंगारं ॥
कां मसि घसि कुंभारी । किं नयने नैव अंजंति ॥
छं० ॥ ४८ ॥ रू० ॥ २१ ॥

ईस सीस असमानं । सुर सुरी सलिल निष्ट नित्यानं ॥
पुनि गल्लती पूजारा । गडुवा नैव ढालंति ॥
छं० ॥ ४९ ॥ रू० ॥ २२ ॥

१६—२२ गाहा छंद का लक्षण यह है —

गाहा पहिले बारह । दूजे अठारहे कला राजे ॥
तीजे बारह धारहु । पंद्रह चोथे तहां छाजे ॥

इन गाहा छंदों में अशुद्ध पाठान्तर ये हैं — सतफल, क्यूपने, बंडू, रवि, रब्बं नगय, सुरीस लिल, और फुनि ॥

बाईसवें गाहा के "ईस सीस असमान" में जो असमानं शब्द है उस को जो मिस्टर जान् बीम्स साहब फ़ारसी आसमान آسمان होना अनुमान करते हैं उससे हम बिलकुल असम्मत हैं। हम इस को सं० असमानं, त्रि० (नास्ति समानो यस्य।) अतुल्यं, विजातीयं, सजातियभिन्न का वाचक समझते है अर्थात् ईस=परमेश्वर का सीस=शिर; असमानं= अतुल्य है।

चंद उत्तापित होकर अपने को पूर्व कवियों का दास होना, उनकी उक्ति को कहना और अपनी को बकना कहता है ॥

दूहा ॥ कहां लगि लघुता बरननं । कविन दास कवि चंद ॥
उन कहि ते जो उब्बरी । सो बकहों करि छंद ॥
छं० ॥ ५० ॥ रू० ॥ २३ ॥

चंद खलों का स्वभाव वर्णन करके सुजनों के निमित्त अपना काव्य-रचन करना कहता है ॥

दूहा । सरस काव्य रचना रचों । खल जन सुनि न हसंत ॥
जैसे सिंधुर देखि मग । स्वान सुभाव भुसंत ॥
छं० ॥ ५१ ॥ रू० ॥ २४ ॥

तौ पनि निमित्त सजन गुन । रचिये तन मन फूल ॥
जूका भय जिय जानिकै । क्यों डारियै दुकूल ॥
छंद ॥ ५२ ॥ रू० ॥ २५ ॥

सरस्वती को स्तुति ॥

॥ साटक ॥ मुक्ताहार बिहार सार सुबुधा, अबुधा बुधा गोपिनी ॥
सेतं चीर सरीर नीर गहिरा, गौरी गिरा जोगनी ॥
बीना पानि सुबानि जानि दधिजा, हंसा रसा आसिनी ॥
लंबोजा चिहुरार भार जघनां, बिघ्ना घना नासिनी ॥
छं० ॥ ५३ ॥ रू० ॥ २६ ॥

गणेश को स्तुति ॥

कचंजा मद गंध राग रुचयं, अलिभूराछादिता ॥
गुंजा चार अथार सार गुनजा, झंझा पया भासिता ।
अग्रेजा श्रुति कुंडलं करि कार, सुद्दीर उद्दारयं ॥
सोयं पातु गनेस सेस सफलं, पृथ्वीराज काव्यं कृतं ॥
छं० ॥ ५४ ॥ रू० ॥ २७ ॥

२३-२४ इनमें जो किसी किसी पुस्तक में लेखा पाठ है वह अशुद्ध । कवि चंद ने अपनी लघुता वर्णन करते करते अंत को उत्तापित होकर जो ये दो दोहे (२४।५२॥ +२५ पृ०) कहे हैं वे इस महाकाव्य के पाठकों और संग्रह करनेवालों के ध्यान में रहने योग्य हैं ॥

२६—२७ इन रूपकों में यह अशुद्ध पाठान्तर है —गो०नी गिरा जोगनी सुबानी, दधि, कार्य

गणपति की उत्पत्ति कथा ॥

विराज ॥ रतं रस भारी । कह्ना बिचारी ॥
बियै। मात नक्खं । बियो संख लक्खं ॥ ५५ ॥
मिले एक दीहं । रमै काम सीहं ॥
इकं रिष्य आयौ । दियौ काम चायौ ॥ ५६ ॥
खिज्यौ रिष्यि भारी । दियौ काम डारी ॥
भयौ पुत्त तब्बं । धजा मोद सब्बं ॥ ५७ ॥
सिरो मालधारी । गनेसं बिचारी ॥
खिजे तब्ब ईसं । भयौ रोम बीसं ॥ ५८ ॥
अवस्था इकल्ली । बियौ पुत्र भिल्ली ॥
इके डोर नई ॥ चन्या पुत्त बद्दं ॥ ५९ ॥
खिजी मात भारी । मरायं बिचारी ॥
करी जाकु ईसं । धर्यौ पुत्त सीसं ॥ ६० ॥
सबै कज्ज अग्गै । तुष्षी नाम लग्गै ॥
कलानंद रूपं । गनेसं सभूपं ॥ ६१ ॥
इकं दन्त दन्ती । बिराजंत कंती ॥
सुभै दंत ऐसै । कविंदं प्रसंसै ॥ ६२ ॥
मनो भूमि धारी । बराहं उपारी ॥
इसी नट्ठ तेजं । कला सोम केजं ॥ ६३ ॥
नमो देव कहं । प्रजा ईस महं ॥
भखै भूत प्रेतं । तिजारी न चेतं ॥ ६४ ॥

बरसा, लंबी, का, बिघना, छच, मदं, जा, आने, जा, करः, स्तु, दीर, पृथिराज, काव्य और इसे। इस में एक पृथीराज शब्द के स्थान में जो हमने पृथाज पाठ रक्खा है वह एक रासो की पुस्तक में है और चंद का ऐसा प्रयोग देखकर राजपूताने और ब्रज की ग्रामीण भाषाओं से परिचित विद्वानों को कुछ आश्चर्य न होगा, क्योंकि उन्हों ने ऐसे ही गजराज के स्थान में गज्राज बोलते और लिखते लोगों को देखा और सुना होगा। यह चंद की हिन्दी के देशी प्रसिद्ध नामक भेद का उदाहरण है ॥

२८ अन्य पुस्तकों में पाठान्तर ये हैं—कहना, सात, नष्य, दिये, रिषि, अवस्थाद, कल्ली, पुहव, होर, धर्यौ, लुहि, दट्ठ, देहै, देह, भगतं, सखी, लच्छी, थयं, नयं, समती, पती, धरे, त्रिलोक और ईसा। इस रूपक के छंद का नाम चंद ने विराज कहा है परंतु उस का नामान्तर संखा नारी और उस का लक्षण यह है —

दूकं दोष एकं। दुतो दोष मेकं ॥
भगत्तं सुचक्को। दियो लच्छि वक्को ॥ ६५ ॥
दूकं चोख अथ्थं। करै नाक नथ्थं ॥
सुभत्ती सुमत्ती। जलं माहि पत्ती ॥ ६६ ॥
धरै आक सीसं। त्रिलोकेस ईसं ॥
चयं वेद जक्की ॥ प्रियं चंद भक्की ॥ छं० ॥ ६७ ॥ रू० २८ ॥

शंकर की स्तुति ॥

दूहा ॥ नमस्कार संकर कियौ। सरसैं बुधि कवि चंद ॥
सति लंपट लंपट नवा कुबुधि मंच सिसु इंद ॥
छं० ॥ ६८ ॥ रू० ॥ २९ ॥

साधन भोग सँयोग रजि। मंडन आव अखूट ॥
नमो उमा उर आभरन। जय बंधन जट जूट ॥
छं० ॥ ६९ ॥ रू० ॥ ३० ॥

विराज ॥ जटा जूट बंदं। लिलाटंत चंदं ॥
बिराजंत छंदं। भुजंगी गलिंदं ॥ ७० ॥
शिरो माल दूंदं। गिरीजा अनंदं ॥
सिरै सिंघि नद्दं। रनैं बीर मद्दं ॥ ७१ ॥
करी चर्म सद्दं। करं काल खद्दं ॥
उनैं गंग चद्दं। चखी अग्गि दद्दं ॥ ७२ ॥
प्रलै जानि जद्दं। जयो जोग रुद्दं ॥
घटा जानि भद्दं। जरै काम तद्दं ॥ ७३ ॥
हरै चाहि बद्दं। रचै मोह बद्दं ॥
बचै दूरि दद्दं। नटे भेख रद्दं ॥ ७४ ॥
नमो ईस इंदं। बदै भट्ट चंदं ॥ छं० ॥ ७५ ॥ रू० ॥ ३१ ॥

छई वर्ण वारो। यगन्नै दुधारो ॥
रचो पाव चारी। करो संखनारी ॥ श्रीधर कवि-कृत पिंगल ॥

३० पाठान्तर—सरसे। मती। मजोग ॥

३१ पाठान्तर—गिरिजा। रनै। वीर। खद्दुं। गंगद्दुं। हद्दुं ॥ भट्ट ॥ इस रूप। का छंद ७५ चंद की संस्कृत काव्य-सम-शलाकाद्दुं शैली का दूसरा उदाहरण है। देखो टिप्पणी १४ को ॥

दूहा ॥ करिये भक्ति कवि चंद् वर। हरि जंपिय हव भाइ ॥
ईस स्याम ज्यु ज्यु कहै। नरक परंतह जाइ ॥
छं० ॥ ७६ ॥ रू० ॥ ३२ ॥

स्लोक ॥ परात्परतरं यांति। नारायण परायणं ॥
न ते तत्र गमिष्यंति। ये द्वेष्यंति महेश्वरं ॥
छं० ॥ ७७ ॥ रू० ॥ ३३ ॥

साटक ॥ गंगाया भगुलक्त वसन मसनं, लच्छी उमा देवरं ॥
संखं भूत कपाल माल असितं वैजंति माला हरी ॥
चम मध्य विभूति भूतिक युगं. विभ्रांति माया क्रमं ॥
पापं विहरति मुक्ति उप्पन वियं, बोयं वरं देवयं ॥
छं० ॥ ७८ ॥ रू० ॥ ३४ ॥

कवि की आशा का स्वरूप वर्णन ॥

गाहा ॥ आमा महीव कव्वी। नव नव कित्तीय संग्रहं ग्रंथं ॥
सागर सरिस तरंगी। बोहथ्थयं उक्तियं चलयं ॥
छं० ॥ ७९ ॥ रू० ॥ ३५ ॥

चंद का काव्य समुद्र कैसा है ॥

दूहा ॥ काव्य समुद्र कवि चंद कृत। मुगति समप्पन ग्यान ॥
राजनीति बोहिथ सुफल। पार उतारन थान ॥
छं० ॥ ८० ॥ रू० ॥ ३६ ॥

छंद प्रबंध कवित्त जति। साटक गाह दुहथ्थ ॥
लहु गुर मंडित खंडिय हि। पिंगल अमर भरथ्थ ॥
छं० ॥ ८१ ॥ रू० ॥ ३७ ॥

---

३२ पाठान्तर—करिये।
३३ पाठान्तर—यांति यह श्लोक चंद के शुद्ध संस्कृत काव्य-रचना का प्रथम उदाहरण है।
३४ पाठान्तर—भ्रगुलक्त। वसनमसनं। लछ्छी। कपालमाल। चमभूतिविधुगं। मायाक्रमं। मुक्ति। दरंदेवयं ॥
३५ पाठान्तर—कित्ती ॥
३६ पाठान्तर—थांन। थांन।
३७ पाठान्तर—भारथ्थ।

कोई अशुद्ध पढ़नेवाला चंद को काव्य-संबंधी दोष न दे ॥

कवित्त ॥ अति ढंक्यौ न उघार । सलिल जिमि सिष्षि सिवालह ॥
वरन वरन सोभंत । हार चतुरंग विसालह ॥
विमल अमल वानी विसाल । बयन बानी के ब्रंनन ॥
उक्तिन बयन विनोद । मोद श्रोतन मन धन्नन ॥
युत अयुत जुक्ति विचार विधि । वयन छंद कुव्यौ न कह ॥
घटि बद्धि मति कोई पढइ । तौ चंद दोस दिज्जो न वह ॥
छं० ॥ ८२ ॥ रू० ॥ ३८ ॥

इस ग्रंथ में चंद ने क्या क्या कथन किया है ॥

श्लोक ॥ उक्ति धर्म विशालस्य । राजनीति नवं रसं ॥
षट् भाषा पुराणं च । कुरानं कथितं मया ॥ छं० ॥ ८३ ॥ रू० ॥ ३९ ॥

रासो को रसिया सरस उच्चारैं ॥

कवित्त ॥ चरन नोम अच्छिर सुरंग । पाट लहु गुरु विधि मंडिय ॥
सुर विकास जारी सु मुष्य । उक्ति रस गौरवनि छंडिय ॥
जुगति कोह विस्तरिय । सौढियन घाट सु बढ्ढिय ॥
मच्हि मंडन मेधान । याह्दि मंडन जस सहिय ॥

३८—पाठान्तर—षिष्षि । विशाल । वच्चार । पढई । दिज्जो । दिज्जे ।

३९—कवि का यह संस्कृत श्लोक हमारे पाठकों के सदा ध्यान में रखने योग्य है। इस के सूक्ष्म विचार से हम जान सकते हैं कि षटभाषा और कुरान की भाषा के जो जो शब्द इस महाकाव्य में प्रयोग हुए हम देखते हैं वह कवि ने जान कर प्रयोग किए हैं और कुरान की भाषा शब्दों के प्रयोग का विषय कोई आश्चर्यदायक भी नहीं है, क्योंकि मुसलमानों का प्रवेश भरतखंड में शहाबुद्दीन गोरी के बहुत ही पहिले हो गया था। इस के अतिरिक्त हम को यह भी निश्चय मानना चाहिए कि चंद संस्कृत भाषा में निपुण था और षटभाषा और कुरान की भाषा से भी अपरिचित नहीं था और जो जो छंद इस महाकाव्य में संस्कृत भाषा में लिखे हमारे दृष्टि आते हैं वे उसकी संस्कृत-काव्य-रचनशक्ति के उदाहरण रूप हैं। यह श्लोक चंद के माने हुए पिंगल छंदसूत्रम् के अनुसार लौकिक अनुष्टुप अर्थात् अष्टाक्षर पद छंद है। इस रूपक के विशेष पाठान्तर अन्य पुस्तकों में दृष्टि नहीं आते किन्तु केवल विशालं के स्थान में विसाल और पुराणं के स्थान में पुरान पाठ हैं॥

४० पाठान्तर—अक्षर । सुरंग । समुष्य । मुष्य । गौरविन । सिढियन । मेधान । याहि । विस्तरंग । विश्वकर्म कर्म । उच्चारिय ।

घन तर्क उतर्क बितर्क जति। चित्त रंग करि अनुसरिय॥
विश्वकर्म कवि निर्मइय। रसियं सरस उच्चरिय॥
॥ छं० ॥ ८४ ॥ रू० ॥ ४० ॥

रासो का तत्त्वज्ञान कैसे होगा ॥

अरिल्ल ॥ तर्क वितर्क उतर्क सु जत्तिय। राज सभा सुभ भाखन भत्तिय॥
कवि आदर सादर बुध चाहै। पढ़ि करि गुन रासै निर्वाहै॥
॥ छं० ॥ ८५ ॥ रू० ॥ ४१ ॥
धर्म्म अधर्म्म न बुद्धि बिचारै। नयन नारि निय नेच निवारै॥
कोक कला कल केलि प्रकासै। अरथ करै गुन रासै भासै॥
॥ छं० ॥ ८६ ॥ रू० ॥ ४२ ॥
परासर जो पुत्त विश्वासह। सनवंतो ग्रभ्भं गुर भासह॥
प्रब्ब अठार सुधा लष लष्षै। तौ भारथ गुर तत्त विसष्षै॥
॥ छं० ॥ ८७ ॥ रू० ॥ ४३ ॥

जो रासो को सुगुरु से पढ़ता है वह कुमति नहीं दरसाता ॥

कवित्त ॥ रासौ बर बुद्धि सिद्धि। सुद्धि सो सब्ब प्रमानिय॥
राजनीति पाइयै। ग्यान पाइयै सु जानिय॥
उक्ति जुगति पाइयै। अरथ घटि बढि उन मानिय॥
या समान गुन आप। देव नर नाग बखानिय॥
भविक्रत भूत ब्रतह गुनित। गुन त्रिकाल सरसइय॥
जो पढय तत्त रासै सुगुर। कुमति मति नहिं दरसाइय॥
छं० ८८ रू० ४४

४१–४३–इस रूपक के छंद का नाम कवि ने अरिल्ल प्रयोग किया है कि जिस का लक्षण यह है–

अरिल्ल। लघु दीरघ को नेम न कीजे। ऐसे ही तुक चार भरीजे॥
षोडश कला कली बिच धारैं। छंद अरिल्ला शेष उच्चारैं॥

पाठान्तर –सुजत्तिय। भत्तिय। पढ़ि शब्द के पहिले तौ शब्द का पाठ पुस्तकान्तर में विशेष है। पढि। नारिनिय। कोक। कलाकल। अरथ शब्द के पहिले तौ शब्द किसी किसी पुस्तक में विशेष है। ग्रभं। लष्य लष्षै। भारथ॥

४४ पाठान्तर –राज। नीति। पाई। उक्ति। पाइये। पाईये। उन मानिय। ब्रतह। सरस-इय शब्द के पहिले किसी किसी पुस्तक में मध्य शब्द का विशेष पाठ है। सरसईय। दरसईय।

रासो किस को अच्छा और किस को बुरा प्रतीत होता है ॥

दूहा ॥ कुमति मति दरसन तिहिं । बिधि विना न अख्यान ॥
तिहिं रासौ जु पवित्र गुन । सरसौ अन्न रसान ॥
छं० ॥ ८९ ॥ रू० ॥ ४५ ॥

इस ग्रंथ के काव्य की संख्या का कथन ॥

दूहा ॥ सत सहस नव सिष रुरस । सकल आदि मुनि दिष्य ॥
घट बढ मत कोऊ पढौ । मोहि दूसन न वसिष्य ॥ छं० ॥ ९० ॥ रू० ॥ ४६ ॥

रासो के ढँके हुए अर्थ के विषय में कवि का कथन ॥

गाहा । अरथं ढंकिन सहसा । उघारै बनथ्यि एकसया ॥
मझ्झं मझ्झ प्रमानं । चतुर स्त्री हारयं जेमं ॥ छं० ॥ ९१ ॥ रू ॥ ४७ ॥

इस ग्रंथ के विषय का संक्षेप कथन ॥

कवित्त ॥ दानव कुल छत्रीय । नाम ढूंढा रष्यस बर ॥
तिहिं सु जोत प्रथिराज । सूर सामंत अस्ति भर ॥
जीह जोति कवि चंद । रूप संजोगि भोगि भ्रम ॥
इक्क दीह ऊपन्न । इक्क दीहै समाय क्रम ॥
जथ कथ्य होइ निर्म्मये । जोग भोग राजन लहिय ॥
बज्जंग बाहु अरि दल मलन । तासु कित्ति चंदह कहिय ॥
छं० ॥ ९२ ॥ रू० ॥ ४८ ॥

अरिल्ल । प्रथम राज चहुवांन दिष्य बर । राजथान रंजे जंगल धर ॥
मुष सू भट्ट सूर सामंत दर । जिहि बंध्यो सुरतांन प्रान भर ॥
छं० ॥ ९३ ॥ रू० ॥ ४९ ॥

---

४५ पाठान्तर—दसंन । तिहि । तिहि । रसानं ॥

४६ पाठान्तर—कोऊ ॥ इस में "सत सहस" से कवि एक लाख की ग्रंथ संख्या बताता है और यह भी कहता है कि घट बढ एढ करके मुझे दोष मत देना । कोई कोई कवि जो यहां सत शब्द से सात का अर्थ अनुमान करते हैं वह हमारी सम्मति में अयुक्त प्रतीत होता है ॥

४७ पाठान्तर—ढकिन । नथ्थिय । मझ । मझ ।

४८—५० पाठान्तर—रक्षस । तिहि । जिह । संजोगी । भोगी । उपन्ने । जोगराज । लाम-हिय । बज्जङ्गबाहु । अरि दल मलन । कत्ती । चंद्र ॥ ४७ ॥ सुर ॥ ४८ ॥ मित । बंधे । कित्ति । कथ्यो । तिथि ॥ ४९ ॥

अरिल्ल ॥ ए कवि चंद मित्त सेवह पर । अरु सुहित सामंत सूर बर ॥
बंधौं कित्ति प्रसार सार सह । अप्पों बरनि भंति थिति थह ॥
छं० ॥ ९४ ॥ रू० ॥ ५० ॥

राजा परीक्षित की तक्षक दंशन और जन्मेजय को सर्पसत्र कथा ॥

हनुफाल ॥ इति हनूफाल्लय छंद । कल बरनि बरनि सुछंद ॥
नहि नाल पिंगल जोर । दुज हूँतो दुजनिय भोर ॥ ९५ ॥
संसार बंधन होय । इक पढ्यौ विद्य समोय ॥
तन देइ अच्छर एक । नहिं पिंग पिंगल भेक ॥ ९६ ॥
किहि काल मरन सुविप्प । लहि नाग रूप सु अप्प ॥
हरि हह्यो बाहन आइ । तिहिं कह्यौ पिंगल चाइ ॥ ९७ ॥
दै विद्य रूप सु अड्ड । सो गयौ छल करि सड्ड ॥
सो तच्छ बोर प्रमान । जुग जुगनि निश्चल ध्यान ॥ ९८ ॥
इक हुतो सिंगिय रिष्य । नप करै बाल बिसिष्य ॥
नप गयौ वर आखेट । दिषि अप्प म्रतक बेट ॥ ९९ ॥
बाराह रूप प्रमान । लग्गयौ सु ब्रह्म धियान ॥
दह बार बूझ्यौ राज । दुज दिय न उत्तर काज ॥ १०० ॥
लखि चित्त चिंह सपून । यों भयो रिष ऋवधूत ॥
भयो ताम तामस राज । लियौ मोन मंच बिराज ॥ १०१ ॥
कम्मान कोनक संधि । न्टपराज दुज गलबंधि ॥
फिरि गयो ग्रह प्रमान । आयो सु बालक थान ॥ १०२ ॥

---

५० दृष्टि में रखने की बात है, जैसे महाभारतादि महा पुराणों में समग्र ग्रंथ के आशय का सार एक अथवा दो अथवा तीन अथवा चार श्लोकों में वर्णन किया गया है, वैसे ही चंद ने भी अपने इस महाकाव्य का सार इन (४८ से ५० तक) तीन रूपकों में वर्णन किया है ॥

५१ पाठान्तर—हनुफाल । हनूफाल । विद्यस । मोय । न । न । अक्षर । हयौ । तिहिं । पाथि । है । तक्ष । जुगिनि । हुंतो । रोष्य । बालषि । मिष्य । बुझ्यौ । दियऊ । चिह । चिंतस । कोनक । नवि । तुल्लि । तिहिं । अति लोल दिष्षि लिषि लोइ । लोई । समोई ॥

हमारे पाठकों को ध्यान में रखना चाहिए कि चंद कवि ने इस कथा को महाभारत के आदि पर्व के अध्याय ४९ से ५८ तक और भागवत के पहिले स्कंध के अध्याय १८ और १९ और दूसरे स्कंध के पहिले १ अध्याय से उद्धृत और संक्षिप्त करके वर्णन किया है। यदि कोई इस कथा

खिजि कह्यौ नैन भरीव। तम ताम रूप सरीव॥
पै जुम्न बालक बुज्झि। गज्जि गर्भ क्यौं न बिनुज्झि॥ १०३॥
तिहि तजिय तात चमान। धरि कोप अंग निधान॥
करि क्रोध अंखि सुरत्त। चविजानि लग्गिय लत्त॥ १०४॥
जिहि जियत गुचह चप्प। को तात लभ्भय दप्प॥
रिस करौं जोव प्रमान। जरै तीन लोक अमान॥ १०५॥
रिस तेज कंपन बाल। दिष्यौ सु तात बिसाल॥
वह लग्गि ब्रह्म धियान। भयौ कोटि तामस नाम॥ १०६॥
अति ना रत्न दिखि रिखि लोइ। दिख्या सु तात समोइ॥
छं० ॥ १०७॥ रू० ॥ ५१॥

कवित्त॥ जोरि हथ्य थुति मंच। फिर्यौ पर दृष्ठि लग्गि पय॥
रुधिर नयन आरक्त। कंठ लग्गयौ सु मुक्कि भय॥
भूत द्दार बोभार। गाजि आये सुत मग्गं॥
भर भर भर उच्चार। रोस दावानल लग्गं॥
जिहि चह्यौ अप्प सो तात गर। गनिव सत्त दिन मैं प्रमति॥
जो हत्यो अप्प तत्तक सुब्रत। कै काया अब्रत सुगति॥
छं० ॥ १०८॥ रू० ॥ ५२॥

साटक॥ धंन्यो धंन्य सु बाल तापन तपं। बालं बलं बिव्हलं॥
सोयं पुच कि सोम दोस चिविधं। बानीय गद् गद् गलं॥
एनं भूप विसाल भूमि भरतं। धर्मं धरा राजनं॥
तं तेजं नवि चोर व्याघ्र विघनं। नैवापि संतापयं॥
छं० ॥ १०९॥ रू० ॥ ५३॥

और चंद के काव्य को उक्त भारत और भागवत से मिलाकर सूक्ष्म विचार कर देवे तो वह निःसंदेह यह अनुमान कर सकता है कि चंद संस्कृत भाषा अच्छी जानता था और ये बड़े बड़े ग्रंथ भी उसके पढ़े हुए थे, क्योंकि चंद के कोई कोई छंद उक्त ग्रंथों के श्लोकों के ठीक अनुवाद प्रतीत होते हैं। इस हनूफाल छंद के चारों पाद बारह बारह मात्रा के होते हैं॥

५२ पाठान्तर—फिर्यौ। लग्यौ। बिभार। बाजि। धारय। आर्दय। हत्यो। प्रमत्ति। प्रमित्त कैकाया। सुगति॥

५३ पाठान्तर—धन्यो धन्य। तनं। बाल। भरनं। तेजंन। किचोर। बिघन॥

दत्वा श्राप मिदं श्रुतं गुरु वरं । मृत्यं च राजा नयं ।
सत्यं सप्त दिनानि पानि पवरं । नैवं चलंते पयं ॥
त्वं श्रापं चय लोक जालति वरं । भुक्ते वरं पुत्रयं ॥
एकं दोष सुतप्प प्रापति पदं । त्रैलोकयं चासयं ॥
छं० ॥ ११० ॥ रू० ॥ ५४ ॥

दूहा ॥ सब रिखि में मो पुत्र तू । बय-दिक्खै परमान ॥
मानहु उम्बर में उदै । बढति कला वर भान ॥
छं० ॥ १११ ॥ रू० ॥ ५५ ॥

कवित्त ॥ पुत्र छंडि रिखिराज । जाइ न्रप थान सु वत्ता ॥
पंथ कुलह संग्रह्यौ । रिष्षि श्रापान विरत्ता ॥
अति सु दीन सिर नीच । ऊंच नहिं भाल उचाइय ॥
दिष्टि दिष्ट राजन चरित । मंगन न्रव आइय ॥
एकंग एक जोगिन्द्र वर । धातु न बंधे हथ्थ पर ॥
करि काज रिष्षि आयौ घरह्हि । उरह धाद्दुर लग्ग डर ॥
छं० ॥ ११२ ॥ रू० ॥ ५६ ॥

गाथा ॥ जो जंप्यो रिष पुत्तं । प्रलयं होइ सत्तियं कालं ॥
जं भावइ तं ध्रंम्मं । सो किज्जै राजनं बलयं ॥
छं० ॥ ११३ ॥ रू० ॥ ५७ ॥

चोटक ॥ न्रप छंडि प्रजंक प्रजंक पला । मुहु मुंदिरु भानक मोद कला ॥
न्रप दीन चल्यौ बहु चिंत्त चितं । सुचल्या जनु पोंनय पीर पतं ॥
॥ छं० ॥ ११४ ॥
पतनं गुर जानि चरन्न लग्यौ । बहुल्यां रिषिराज सु प्रान दग्यौ ॥
छं० ॥ ११५ ॥ रू० ॥ ५८ ॥

---

५४ पाठान्तर–मृतच । मृत्यंच । पानिपवरं । पय । श्राप झुालंति । तैलाकयं ॥

५५ पाठान्तर–मै । मे । तूं । परमान । संवत् १६४१ की पुस्तक में हमारा लिखा पाठ है और इतर पुस्तकों में "मानहु इही भर उदै" है ॥

५६ पाठान्तर–लाय । संपत्तो । आपन । ऊच । नत्र । नहि । द्रिष्ट । त्रप । चाईय । जोगिन्द्र । हथ । किहि । घरह । उर । घर । धद्दुर । लगि ॥

५७ पाठान्तर–जो । जंप्यो । पुत्तं । भावे । भाव । इतं । जो । कीजे ॥

५८ पाठान्तर– छिप । त्रप । फला । इला । मुहुमंदिर । भान । कमोद । त्रप । बहुचित । जुनु । पोनय । बहुर्यां । किसी पुस्तक में सु शब्द नहीं है ॥

गाथा ॥ मनो रिषि सथ्यं प्रानं । बल्मीकं जीवनं गुरयं ॥
जो फल लग्यौ पच्छ । तौ कालं रिष सो बरयं ॥
छं० ॥ ११६ ॥ रू० ॥ ५९ ॥

दूहा ॥ इय चिंतय रिषि राज गुर । पुच्छिय अन रिष राज ॥
क्यों उधार होइ स्राप बर । कहो क्रपा करि आज ॥
छंद ॥ ११७ ॥ रू० ॥ ६० ॥

कवित्त ॥ मद भंडी इक पुरुष । निसा मद्दव अध रत्ती ॥
बरगना अंगने । डस्यौ अहि परत धरत्ती ॥
सुरापान आमिष्ष । गयौ करहु नव कुट्टिय ॥
उच्चारत हा राम । जाय वैकुंठ सु ठट्टिय ॥
परताप नाम सद गति भइय । कीर कहत परिषत्त सम ॥
भागवत्त सुनहि जो इक्क चित । तौ सराप छुट्टय अक्रम ॥
छं० ॥ ११८ ॥ रू० ॥ ६१ ॥

ज दिन स्राप तुहि भयौ । त दिन परिसोक घर घघर ॥
पसू पंषि जन्न छंडि मुनिवर समाधि उर ॥
छंडि चक्र हरि रष्षि । कूष तूं मात परिष्षत ॥
पंडव वंस प्रतष्य । तपत ध्रम धारी दिष्षत ॥
अचरिज्ज कहा तुम उद्धरन । होइ प्रसन सुकदेव कहि ॥
दिन सत्त अवधि अंतर बहुत । हरि सु उद्धरै छिनक महि ॥
छं० ॥ ११९ ॥ रू० ॥ ६२ ॥

धरनि रूप करि धेन । ध्रम्म बक्करा संग लीयै ॥
झारषंड महि चरत । देषि कलियुग कुपि हीयै ॥
चरन तीन भज्जंत । प्रजा सब आय पुकारिय ॥
चढि करि तें न्रपराज । वथ्य परि माहि बक्कारिय ॥

५९ पाठान्तर—प्रान । वलीकं । लगो । पछू । पछं । सो ॥ इस के छंद का नाम सं० १६४१ की पुस्तक में गाथा है ॥

६० पाठान्तर—चिंतन । रिषिराज । पुछिय । होय । श्राप ॥

६१-६३ ये तीन रूपक सं० १६७० और सं० १६४१ की पुस्तकों के अतिरिक्त उनसे पीछे की जितनी पुस्तकें अब तक हमारे देखने में आई हैं उन सब में हैं, परन्तु जब तक उन से भी पहिले की पुस्तकें न प्राप्त हों तब तक इन रूपकों को हम निश्चय रूप से क्षेपक नहीं कह सकते। इनके

किछि कीर अंग लगौ परस । तिछि कारन इह उपज्जिय ॥
आषेट जाय पन्नग मृतक । सिंगी, गर घतिय, षिज्जिय ॥

छं० ॥ १२० ॥ रू० ॥ ६३ ॥

घोटक ॥ इति चोटक छंद सुमंत गुरं । दिन सात पज्यौ हरि गंग कुरं ॥
त्रितकाल विकालह चित्त धरं । कित पत्त छिमा पिवु लाइ भरं ॥

छं० ॥ १२१ ॥

नृपराज परीछत तत्त गुरं । धरि ध्यान कह्यौ बदलीय धरं ॥
इन काल सु तप्पय देव नरं । नृप ग्यान सुन्यौ बपु व्यास वरं ॥

छं० ॥ १२२ ॥ रू० ॥ ६४ ॥

साटक ॥ या विद्या बदलीत राजन गुरं । आपो रिषं तारयं ॥
शून्यं राज सु इन्द्र धारन धरं । विद्या अमारा पुरं ॥
अम्भोयं सुघनं सु मातुल इयं । मोहं हरित्तारयं ॥
सो ध्यानं रिषिराज राजन वरं । पापापहारं परं ॥

छं० ॥ १२३ ॥ रू० ॥ ६५ ॥

चौपाई॥ अति किसलय सुस कोमल अंग । जानु कि मुक्तिय देषिय अंग ॥
किष्ण दिपायन दोपन व्यास । कोपिन एकिन मंडल चास ॥

छं० ॥ १२४ ॥ रू० ॥ ६६ ॥

दूहा ॥ किसनदोप दोपायनह । कही रिषी सब बत्त ॥
जु कछु सराप सु उद्धर्‌या । परनराज गुरु गत्त ॥

छं० ॥ १२५ ॥ रू० ॥ ६७ ॥

कवित्त ॥ तिनै आय बर ब्रह्म । अप्प रिषि रिषि सु पुकारं ॥
कै तच्छक नृप हनहु । न तरु तच्छक मर धारं ॥

पाठान्तर ये है—अधरत्तो । वारंगन । अग । ने । काहुं । भगवत्त । जोइ कुच्चित ॥ ६१ ॥ जत्रि । म । तद्वि । न । परिसोऊ । घर । रषि । परीषत । प्रतष्य । प्रतषि । प्रसच । धम । संग । लिये । छिये । अष्य । परिताहि । घतिय ॥ ६३ ॥

६४ पाठान्तर—तोटछंद । किलं । पिवुलाइ । त्रितकाल । तत । नून ॥

६५ पाठान्तर—गुरु । अम्भोयं । सुधनं । मातुल । तारयं । ध्यान । राजं ॥

६६ पाठान्तर—सु । सकोमल । देहीय । अयंग । किशा । दीपायन । चन्द्रायना ॥

६७ पाठान्तर—रषी । बत । जु । उधर्यौं । आवत्त ।

६८ पाठान्तर—तक्षक । हनहुं । तक्षक । मर्द । भरय । माम । तो । निधान । धरि । विन । ध्यान ।

उभय चित्त चिंतयौ। भइय श्री नाग सु मानं ॥
न्रप न चलै तौ मरन। अचित न्रप रिष्य निधानं ॥
दुअ भंति चित्त चिंता सुचित। धरिय ध्यान चित जान जिय ॥
सत दिष्ष आइ लिय बार बर। आय चष्य राजन सु दिय ॥
छं० ॥ १२६ ॥ रू० ॥ ६८ ॥

कवित्त ॥ दिय चष्यं मधि कीट। सुफल लेइ राजन धारिय ॥
कल संक्रन लागंत।। निकरि कीटं किन कारिय ॥
छिनक मधि बाढंत। भए फुनि पंचनि नारिय ॥
न्रपय हुकम मुष दियौ। कनौ सा काम करारिय ॥
फिरि आय राय दिष्टह बचिय। कम्म मह्नि उसनह फनिय ॥
जं जाइ जोइ कलि हंस हत। भइय देह ब्रन अष्यनिय ॥
छं० ॥ १२७ ॥ रू० ॥ ६९ ॥

तब जनमेजय पुत्त। दिद्धा दच्छिन जन मुक्किय ॥
तहां धन अंतर वैद। दरक चढ़ि लैन सु तक्किय ॥
करिय षेद चल्लि अप्प। सहस चेला संग धारिय ॥
आस्तीक जु धुर नाग। तब सु तञ्छक्क विचारिय ॥
छल तक्कि रूप लकुटी भइय। ग्रचिय गुरु हुहें डसिय ॥
भष काज सिष्य सिष्यां दइय। विप्र रूप तञ्छक्क चँसिय ॥
छं० ॥ १२८ ॥ रू० ॥ ७० ॥

दूहा ॥ आस्तीक जु गूर वैर कजि। पढि विद्या ग्रह नाग ॥
जनमेजय न्रिप सों मिलिय। मंड्या अप्पन जाग ॥
छं० १२९ ॥ रू० ॥ ७१ ॥

६९ पाठान्तर-भरा। किसी किसी पुस्तक में सो शब्द का पाठ नहीं है। चाई राइ। विष्टु। भईय। भईये ॥

७० पाठान्तर-दच्छिन। जनमु। क्रिय। धन। अंबरवेद। सुत। किय। तिछ्यक। छलन। कि। भईय। गुहे। सिष्य। सिष्या। दरह। तछक।

७१ पाठान्तर-निहित। बइस। यत। विप्पं। सथारच। रष्यि। जानलु। बात। नृहरिय। मछ। होम। मंत। तछक। पलौ। कनी। मंच ॥

कवित्त॥ ति छित वैर सिसु वरन। सपत विप बे.ब सु धारव॥
न्टप जनमेजय नाम। भयौ तामस उत गारव॥
तात वैर सिसु दष्षि। जियन सोइ लोइ विचारै॥
जानिहु वातन हरिय। मच्छ बंध्यौ जनु जारै॥
होमंत सक्ति तच्छक सु नग। इन्द्र सरन पत्तौ तबै॥
सुनि क्रन्न राज तामस भयौ। करहु मंत्त साधन सबै॥
छं० ॥ १३० ॥ रू० ॥ ७२ ॥

भुजंगी॥ करो अस्तुतो यं स्वधा इंद जोगं। तथा इंद्र आयौ सुरं नाग भोगं॥
इतं देव सादेव सारम्म आयौ। तिनं काटि दीयंत सो पाप पायौ॥
छं० ॥ १३१ ॥ रू० ॥ ७३ ॥

कवित्त॥ अभय दान आतुरह। अंन उग्राह पान दृन॥
सरन रष्षि भय नरन। कढ्ढि मुक चित्त छंडि सन॥
तय लगि कग्ग कराल। स्वान मसन ऊ वासै॥
रुधिर चरम करह असति। वस्त वस्तन ऊ नासै॥
जो इय जोइ जग उघरै। जननि जाय ग्रभ्भह गरै॥
तिन काज राज प्रार्थ्यिये। जियत तक्क तन उब्बरै॥
छं० ॥ १३२ ॥ रू० ॥ ७४ ॥

दूहा॥ न्टप चिंता बहु लगिग मन। ज्यौं जुथ वाय चिकाल॥
यौं न्टप राजन राज कुल। पुनर जनम दुष ज्वाल॥
छं० ॥ १३३ ॥ रू० ॥ ७५ ॥

७२ पाठान्तर—करि। अस्तुति। स्वाहा। सारन। तिन। सह॥ इस रूपक के छंद का नाम हम ने शोध करके भुजंगी रक्खा है और सं० १६४७ की तथा सं० १७७० की पुस्तकों में भी यही नाम लिखा है किंतु इतर पुस्तकों में चंद्रायना नाम लिखा है वह अशुद्ध है॥

७४ पाठान्तर-आतुरहे। धन। कढि। मु। कहित। तुय। उ। उं। ओरये। ग्रभह। कारज। प्रार्थेय। उबरै॥

७५ पाठान्तर चिन। पुनरजनम॥

वर्तमान आबू पर्वत के उद्धार की कथा ॥

उस तक्षक का आबू पर अपना अर्बुद नाम धर रहना ॥

कवित्त ॥ स तक्क आबू प्रमान । मंडीयौ सु अचल कर ॥
गरब गहर तें बिडुरि । सुडह रष्यौ जु मंत धुर ॥
अचल ईस प्रति नाम । अचल आचित्त अचल धर ॥
देव देव प्रारथिय । इन्द्र मुक्किय कंडुिय धर ।
अरबुद नाम धर जुत्तिया । दूर तषित थप्पराइया ॥
कलपांन पुहप अरु बस्त गुरु । क्रांच गुरु गुर क्राइया ॥
छं० १३३ रू० ७६

गालव ऋषि के शिष्य उत्तङ्ग का उपाख्यान ॥

दूहा ॥ सो आबू उद्धार विधि । कहौ कथा * परबंध
ज्यौं अनादिक्रा रिष्य रुष । सुनी सु गुर समबंध
छं० १३४ रू० ७७
गुरु गालव उत्तंग सिष । बहु बिद्या पढ़ि जाम
पय लग्गौ गुर राज कैं । कह्यौ दक्कना काम
छं० ॥ १३५ ॥ रू० ॥ ७८ ॥

गाथा ॥ गालव रिषि सिष्य उत्तंग । दिय बिद्या बुध क्रम क्रम अंग ॥
गुर दष्यिन कज्जै गुर जच्चै । गुर पतनी तब मंगि बिरच्चै ॥ १३६ ॥
कुंडल जच्चि षिचिया कानं । अष्यौ जासु दष्यिना दानं ॥
दिवस अट्ठमो ब्रत अषंडै । चरचौं दान बिप्र स्रुत मंडै ॥१३७॥

७६ पाठान्तर-सो । ततक्क । या । चित । बर । मुक्किय । क्रडीय । जुतिय । तष्यित । क्राईया । स=यह का वाचक और तक्क=सर्प=तक्षक का वाचक, जैसे, रू० ५१ की ८ तुक में तक्क प्रयोग हुआ है ॥

७७ पाठान्तर-रिष्य ॥

७८ पाठान्तर-उत्तंग । जाम । कै । दक्कना ॥

* हमारे पाठकों को ध्यान में रखना चाहिए कि चन्द अर्बुद के उद्धार की कथा अर्बुद खण्ड अर्थात आबू माहात्म्य नामक संस्कृत ग्रंथों से संग्रह करके वर्णन करता है। जिन पाठकों के पढ़ने में अथवा सुनने में ये ग्रंथ आए हैं वे जान सकते हैं कि कवि ने थोड़े में बहुत ही आशय लिया है और उत्तङ्क का उपाख्यान महाभारत के आदि पर्व के पौष्यपर्वाध्याय नामक द्वितीय अध्याय में से भी कवि ने संग्रहीत किया है ॥

७९ पाठान्तर-उत्तग । दक्किन । गुरपतनी । मंगि । दक्खिना । अषंडे । मंडे । करे । संपनो । बिप । प्रसंसे । समप्यो । तष्यक । कीया । रषै । अंचल । दषै । दषे । ठठै । ताम बिरम्म ।

चल्यौ रिष्षि षमंके साम। गुर गुरनी कों करै प्रनाम ॥
चिंतत इष्ठ चल्यौ वर राहं। संपत्तौ यौं सद न्रप ठाहं ॥ १३८ ॥
जच कुंडल पिषिय पासं। सोइ समप्पै बिधि वर तासं ॥
विप्र प्रसंसै समपे कुंडल। कहि डर तष्षक बीच नीच षल ॥ १३९ ॥
लै कुंडल चल्यौ हरष मन। आप्यौ राज विप्र अन्यो अन ॥
क्रम्यौ विप्र राह चंचल चर। छलि तष्षक लीनें कुंडल वर ॥ १४० ॥
क्रमयौ विप्र पुठ्ठि अति चंचल। धरि अहि रूप सु गयौ रसातल ॥
बिल इष्षै ठढ्ढौ रिषि नामं। दुमत चित्त भय विघन विरामं ॥ १४१ ॥
अस्तुति इन्द्र करन लग्गौ रिषि। नेष्यौ बासव पिनक वज्र सिषि ॥
बिन अग्नित दीयौ आषंडल। धर रिषि तक्कि षात बिल मंडल ॥१४२॥
पैठौ विप्र नागपुर ठामं। धाम प्रगहै मंच विरामं ॥
इष्यौ पुरुष एक षट आरं। फेरे चक्र तासु फिरि तारं ॥ १४३ ॥
इष्यौ बाह बाह सत बारं। उंच तेज आजेज अपारं ॥
यौं नर नारि अषै वर नामं। वे अह षष्य वेई सम कामं ॥ १४४ ॥
चिहुन सठ्ठि तां तंनि ठायं। अद्ध सेत्त स्यामं अध तायं ॥
अहि धुत्तेन उपाइ सबाहं। फुंकत पुंक सधुम्म सराहं ॥ १४५ ॥
पुंकत पुंक धार धुस चल्ली। लग्गै नाग अंग सह थल्ली ॥
प्रगटे अंसू पलक उध धत्ति। अप्यो कुंडल नाग मान हति ॥१४६॥
ग्रिह कुंडल अप्पे गुर वामं। गुर विद्या अप्पी अभिरामं ॥
दुज वर बज्र पैठ जेहा धर। बिल अग्नित तिह थान मंडि थिर ॥
कं० ॥ १४७ ॥ रू० ॥ ७९ ॥

दूहा ॥ बिल अथाह तिहि थान भय। बहुत संवछर वित्त ॥
पृथुल कराल कराल भौ। जिम जिम काल वितित्त ॥
कं० १४८ ॥ रू० ॥ ८० ॥

चल्यौ। आमत। हियौ। रिकि। पेठौ। बैठौ। धाम। ठाम। विराम। फेरै। वाह। सो। नाम। वे। इष। वे। ईस। मकाम। वेरम। सठि। ता। तति। ठायं। उपाय। स्याम। धुत्तेन। फूंकत। सधुम। धुम। लगे। थली। अंशू। कुंड। अप्यौ। हित्ति। मनि। महो। राम। पेठि। आमेत। अमित।

८० पाठान्तर–बित। प्रिथुल। प्रथार। बिवित ॥

वशिष्ठ ऋषि का आबू पर तप करना और उन की नंदनी गौ का अथाव बिल में गिरना ॥

पद्धरी ॥ किन्हि समय नाम वाचिष्ट रिष्यि ॥ घर अटन करत सम आइ सिष्य ॥
सिवपुरि सु सोभ तारन्न अन्न । सुभ थान दृष्य आमोद मन्न ॥ १४९ ॥
बर दृष्यि ठाम विश्राम ताम । अनेक रिष्यि किय तत्थ बिश्राम ॥
जिहिं समय चरंतिय छाम धेन । सामोप समंपी बिलह तेन ॥ १५० ॥
अघ दृष्यि दृष्यि धंमेव गाव । मुक्केव परिय मझि बिल अथाव ॥
छुअ छाम काल आवी न धेन । चिंतै सु रिष्यि कारन्न केन ॥ १५१ ॥
बल जंप्प लद्धौ गो पात थान । तहां गये रिष्यि सिष्यह समान ॥
उत्कंठ बिलह ठढ्ढौ सु रिष्यि । नंदिनिय नाम कह्वि सदिति सिष्यि ॥१५२॥
क्रन्दन्न गाव संपत्त बच्च । हंभार कियौ सुर उच्च तच्च ॥
सुन्ने वचन्न सावच्छ भ्रम्म । चिंत्ते सु रिष्यि निक्कास क्रम्म ॥
छं० ॥ १५३ ॥ रू० ॥ ८१ ॥

वशिष्ठ ने अपनी गाय निकालने को गंगा का आह्वान किया ॥

दूहा ॥ चिंत अनेकह विधि विवर । बिल नंदिनी निकास ॥
मंच रूप गंगा तवन । लगो करन रिष तास ॥
छं० ॥ १५४ ॥ रू० ॥ ८२ ॥

भुजंगी ॥ नमो देवि गंगे जयो मात गंगे । द्रवै रूपका मंडलं ब्रह्म संगे ॥
त्रयं पथ्य चेयं गुनं ते निवासं । हरं हंद हंकारका सेव जासं ॥ १५५ ॥
हिमं सैल भेदे सु भेदे धरायं । सजै रूप कायं सुरायं नरायं ॥
मघू छेदनं पाय प्रावेस कारी । सनं मुष्य सामुष्य सामुद्र धारी ॥ १५६ ॥
चली सेत झल्ली जलड्डो समुद्दं । अवै सेष पौरं सु मानो समुद्दं ॥
धराचल्लि भगीरथी विश्व भागं । मिटै अघ्घ ओघं तनं दुष्य दागं ॥१५७॥

---

८१ पाठान्तर—वासिष्ठ । मित्र । पुरिस । मपत्र । दृष्यि । धंमेव । सपतीव । मुक्केव । परत । हविल । आवीत । क्षीन । आवीन । चिंते । गोपात । सिष्यहि । उतकंठ । टढ्ढौ । सदति कवेन । वचेन । कनेव । संभार । रंभार । हंभार । ऊंच वचन । सावछ । भ्रम । चित्ते । रष्यि निरक्कास । क्रम ॥

८२ पाठान्तर—अनेक । ह । निकासी लगो ॥

सुभं उच्च अंदोल बीचं बिराजं । मनो स्वग्ग आरोह सोपान साजं ॥
नरं नीच नीरं तटं श्रोन प्रम्मं । तबै अग्ग देवं गुनं अब्ब अम्मं ॥ १५८॥
परै मभ्भ कलेवरं धंषि छुट्टी । भषी कावलं गिद्धि गोमाय लुट्टी ॥
तटं श्रोन भल्लै थलं वारि हल्लै । षिनं मभ्भि अंदोल बीचं वहल्लै॥१५९॥
तिनं आतमं देह आनूप धारै । वरं उर्वसी चामरं बिंभ नारै ॥
धरै ध्यान भावं तिनं दुक्ख दल्लै । मिटै मज्जनं अघ्घ साजंम सल्लै॥१६०॥
झलक्कंत गंगा तनं तेज सोहै । मनौ दाहमं दाह दाहंन्न जो है ॥
सुयं गंग गंगे सु गंगा प्रकारं । हरै नाम गंगा जमं किं करारं ॥१६१॥
त्रिपथ्थी त्रिगामी विराजंत गंगा । महा स्वग्ग लोकं नरं नारि अंगा ॥
रहट्टं घरी ज्यौं फिरै तीन लोकं । महा दिव्य धुन्नी नवं निगम लोकं ॥१६२॥
कलानी गुहोरं गुफा फारि नागं । प्रगट्टीय मातंगि मानुष्य भागं ॥
रही नष्य अष्यी सुयं ताप भंजै । महा वट्टराजं दिवं दुर्ग रंजै ॥ १६३ ॥
भयं भीषमं मात बहु पाप दंडै । जमं ज्वाल ज्वालं तमं तेज चंडै ॥
रहं रोह रंगो हरं सीस गंगे । महा मोहनी मात दुग्गा उतंगे ॥ १६४॥
बर काल काला जलं स्वेत रूपं । तहां उप्पनी मात आभंग नूपं ॥
भई गाम सहं सु हामुद्द मेतं । उच्चो नाम गंगा उतंगा त्रिहेतं ॥१६५॥
हरद्वार द्वारं कला तू प्रगट्टी । करी मुक्ति मग्गं महा पाप मट्टी ॥
तिनं नाम लीनै कियं तोय पीजै । कियं संम्मनं देव संज्यान कीजै॥१६६॥
कियौ गाहि तें पंथ उग्गाहि साजं । तुंही तापिनी तेज तूं तेज राजं ॥
तुही मध्य वारानसी मोच्छ दैनी । कली काल दुष्यं कटन्नं क्रपैनी ॥
छं० ॥ १६७ ॥ रू० ॥ ८३ ॥

दूहा ॥ जब लगि रज तन मात की । रहै अंग सो लाइ ॥
तब लगि काल न संपजै । क्रम्म पाप सब जाइ ॥
छं० ॥ १६८ ॥ रू० ॥ ८४ ॥

८३ पाठान्तर-द्रेष । दूवे । रूपका । पृथ । गुनंबे । निकास । व्रंद । व्रंदारका । सुष । सामुष । जलधी । समट्टं । सामुनै । धरा । बल्लो । नीर नीचं । स्वग । कलेवरं । मधि । वीचिव । मंजने हल्लै । यव सा । जम । दाहन । लोहै । त्रिपंथी । नाग । घटा साम । मंगा । महादिव्य । नवं । निगम । महावट्टराजं । पवित्र दुर्गं । भीषम । जालं । महामोहनी । अनूपं । धर्यो । समरनं संध्या । मोक्ष । मोच । दुष्य ॥
८४ पाठान्तर-सोलाइ ।

गाथा ॥ कम्मं अघं सब भंजै । दिव्यं करै देह सा रूपं ॥
सुरगं करै सु गामी । अङ्कं नाम रसन उच्चारं ॥
छं० ॥ १६९ ॥ रू० ॥ ८५ ॥

मंदाकिनी गंगा का उभरना और गौ का तिरकर निकलना ॥

दूहा ॥ सुनि गंगा सुवयन्न रिष । उभरी आय प्रमान ॥
ताहि तिरंतह नंदिनी । आई तट बिल थान ॥
छं० ॥ १७० ॥ रू० ॥ ८६ ॥

रिष्य सिष्य धाये सु सब । सब धर कड्ढी तँह गाव ॥
सो कड्ढवि मंदाकिनी । गइ पयाल फिरि ठाव ॥
छं० ॥ १७१ ॥ रू० ॥ ८७ ॥

बिल अथाह दिष्यौ सु रिष । चित चिंता परपत्त ॥
को निकसै या माधिगत । गात भयानक पत्त ॥
छं० ॥ १७२ ॥ रू० ॥ ८८ ॥

✓ वशिष्ठ ऋषि का उस अथाह बिल पूरने को हिमालय के पास एक पुत्र मांगने जाना ॥

विअष्षरी ॥ चिंते रिष्षि देषि बिल दुक्षित । उर लग्गी अति चिंत मभिझ चित ॥
पूछवि रिष्य सिष्य कत कामं । लहै न कोइ बुद्धि बल तामं ॥१७३॥
चिंतै ध्यान ऋष्य रिषि राज । याहि सपूरन को थिर काजं ॥
चिंतत रिष्षि ध्यान उर आसं । है सत पुत्त हेम गिरि जासं ॥१७४॥
एक पुत्त जाचों तिन पासं । बिल पूरै पूरै उर आसं ॥
क्रम्यौ राज रिषी दिसि उत्तर । देषी मन आनँद दिव्य धर ॥१७५॥
गौ रिषि राज पास गिर राजं । दृष्य अग्ग पति आसन साजं ॥
मैंना सहित आप पग लग्गे । अरघ पाद करि अचवन लग्गे ॥
छं० ॥ १७६ ॥ रू० ॥ ८९ ॥

---

८५ पाठान्तर—क्रम । साकृपं । सुगामी ॥

८६ पाठान्तर—सुनयन । तिरंत ॥ ८६ ॥ धाए । कढी । तहां । कढवि । गई । ठांव ॥ ८७ ॥ परयत । अधि । पत ॥ ८८ ॥

८९ पाठान्तर—चिंते दक्षत । कोई । संपूरन । तासं । हेमगिरि । पुत्र एक । पू । पूरं । रिषि । उत्तर । मान । रिषिराज । गिरि राजं । दष्ये । मेना । पय । लागे ॥

दूहा ॥ सुनि सुवचन गिरि राज कौ। कहि रिषि कारन घात ॥
पुच एक जचं तुमहि। गरित सपूरन गात ॥
छं० ॥ १७७ ॥ रू० ॥ ९० ॥

हिमालय का अपने सब पुत्रों से ऋषि का अभिप्राय कहना ॥

कवित्त ॥ तब सुचिंत गिर ईस। पुच सह निज सब्बं ॥
कहि कारन षिति घात। अप्प रष्षौ कुल अब्बं ॥
इह सुरिष्षि सुत ब्रह्म। नाम वाचिष्ट महामति ॥
धर्म पार तप पार। पार श्रुत कर्म परम गति ॥
जचे सु सोइ तुम एक कहुँ। चिंतिय चत कारज्ज रिषि ॥
संब सो वास विल उद्धरौ। पद पामौ परमुच्च अषि ॥
छं० ॥ १७८ ॥ रू० ॥ ९१ ॥

हिमालय के बड़े पुत्र का उत्तर देना कि वह भूमि निषिद्ध है ॥

कवित्त ॥ तब अष्षहि अग्र पुत्त। सुनहु गिरि राज चिंत चित ॥
पिता वाच रिष काज। कोइ छंडहि सुकम्म हित ॥
उह सु भूमि निषेद। थान जानहु तुम सब्बं ॥
भ्रंन क्रंम अरु देव। सेव जाजन नहि अब्बं ॥
कुच्छित्त देस कारन विक्रम। तहँ सु केम किज्जै गमन ॥
अप्पियै प्रान मांगे जो रिषि। पै दुष्ट थन थप्पहिं न तन ॥
छं० ॥ १७९ ॥ रू० ॥ ९२ ॥

वशिष्ठ का प्रत्युत्तर दे कहना कि वह भूमि बड़ी रम्य है ॥

कवित्त ॥ तब जंपे सुत ब्रह्म। सुनौ गिरि राज पुच सम ॥
इहि सु भौमि बिल थान। रम्य मंडहि सु तप्प छम ॥

---

९० पाठान्तर—गिरराज। सपूरन ॥

९१ पाठान्तर—ईसं। रष्षो महामति। परमगति। कहुं। संव। सबसो। परमुच ॥

९२ पाठान्तर—गिरिराज सुक्रम। कुच्छ। षब्ब। तहां। कहहां। पै ॥

९३ पाठान्तर—जंपै। सुष। गिरिराज। तिष। गंधर्व। मूर्तिमान। सज्जे। तिसर। धाम। महि ॥

सबै देव इहि वास । निष्य सब्बे रिषि सब्बं ॥
विप्र ब्रत्त बर वल्लि । सु गुन गंध्रव सब कब्बं ॥
किन्नरह क्रंम सुत धर्म धर । मुरति मान सज्जैति सिर ॥
हरि ब्रह्म ईस संवास सह । जो आश्रम हि इक्क गिर ॥
छं० ॥ १८० ॥ रू० ॥ ९३ ॥

और वहां आगे वाल्मीकि ऋषित्व को प्राप्त हुए हैं ॥

पद्धरि ॥ रमनीक ठाम वाचिष्ट राज । तहां बसहि देव देवह विराज ॥
इहि थान पुव्व कत युग प्रमान । रिषि कियो तप्प ज्जर्जित विधान॥ १८१॥
बाल्मीक वीर इक बधिक रूप । अति पाप क्रंम आघात कूप ॥
भंजै सु मग्ग तिन भ्रम्म थान । पायै सु हरिय दरसन विधान ॥१८२॥
चित संष चक्र गद पद्म बाहु । तन स्याम सुभित पीतह प्रवाहु ॥
दिष्ष्यौ सु लक्कौ तन रूप भील । कीनी नह तन तिन निमष ढील ॥१८३॥
आयौ सु दिठ्ठ गोबिन्द वीर । जानो न पुव्व भ्रम्मह सरीर ॥
छिति दिष्षि दिठ्ठ कामह कहूर । बिंध्यो सु पाप मध्यां सम्रूर ॥ १८४ ॥
तब आय रिष्य उपदेस दीन । किहि काज इहां यह क्रंम कीन ॥
भग्गनी रु बंध तिय मात पुत्त । बंटहि कि पाप पापह सजुत्त ॥ १८५ ॥
तिहि जाइ कह्यौ वर भील मान । बंट्यौ न पाप किन अंग थान ॥
लग्यौ चरन्न कर धनुष तोरि । आघात घात बानी सजोरि ॥ १८६ ॥
व्याघात नाम सों बधिक थान ॥ भ्रम भम्यौ इक्क इक्कह निधान ॥ *
छं० ॥ १८७ ॥ रू० ॥ ९४ ॥

गाथा ॥ यों कहियं रिषि राजं । तुम कोइ दिवस भमन करि ऋथ्यं ॥
फुनि हम दरसन प्रायं । सथ्थं गुर मंच दे कानं ॥
छं० ॥ १८८ ॥ रू० ॥ ९५ ॥

---

९४ पाठान्तर—जु । धर्म । दर्सन । लच्छि । वीर । धर्मह । धरमह । छिठ्यै । मथांस । भूर । रिषि । इश्रां । इह्यां । क्रम । चिय । पुत । संजुन । चरन । तोरी । भम्यो । इक । इक्क ।
* यह पंक्ति कर्नैल टाड साहब वाली पुस्तक में नहीं है ॥
९५ पाठान्तर—कोई । भ्रमं । ससथ्य । मरा । मरा । गहिय । भट्टे । चव । ग्रवयौ ॥

मरां मरां यह कहियं। गहियं भगनाय अंगयं नेहं ॥
भिद्दे तु चक्रम मंटी। दही निय अब यो देहं ॥
छं० ॥ १८९ ॥ रू० ॥ ९६ ॥

दूहा ॥ बांबी फिर अंगह बली। अंग उदैहो जाम ॥
झीन सबद मुष निक्कसे। धीर धीर कै राम ॥
छं० ॥ १९० ॥ रू० ॥ ९७ ॥

तब धरि मधि कढ्यौ सु रिषि। दिष्षि प्रबल तप पार ॥
बालमीक रिषि सो भयौ। सुनि गिरि सुअन बिचार ॥
छं० ॥ १९१ ॥ रू० ॥ ९८ ॥

हिमालय के मध्यम पुत्र नंद का वशिष्ठ के साथ आना स्वीकार करना ॥

कवित्त ॥ सुनि सु वचन गिरि सुअन। सर्व विधि राम वाच रहि ॥
मध्य पुत्र गिरि नंद। सोय उच्चयो वाच सहि ॥
हौं सु पंग बिन पाय। क्रम्मि सक्कौं न राह दुर ॥
जाय परौं षित षान। करौ उद्धार वाच धुर ॥
पित वाच राम सज्यौ सु बन। वाच सु हरिचंद्र अब्ब वहि ॥
सोइ वाच तात कत कज्ज रिषि। कोइ सचुक्कहि मुष्ष महि ॥
छं० ॥ १९२ ॥ रू० ॥ ९९ ॥

वशिष्ठ का अर्बुद नाग से कहना कि जो तू नन्द गिरि को उठा ले चले तो हमारा कार्य सिद्ध हो ॥

पद्धरी ॥ अर्बुदा अचल अर्बुदनि नाम। किन काम पयह षेरौ सु काम ॥
धर नंद नंद नंदन प्रमान। उद्धार सार लै जाहु थान ॥ १९३ ॥

९६ पाठान्तर—बांकी। निकसै। कैं ॥

९७ पाठान्तर—दिषि। रिष ॥

९८ पाठान्तर—गिगिरं। सोइ। हों। उच्चयौ। पाइ। क्रमि। क्रंमि। सकों। सक्कौं। सक्कूं। परों। करो। कोई। चुकहि। मुष ॥ इस रूपक की पांचवी तुक के वाच और सज्यौ शब्दों के बीच में राम शब्द किसी किसी पुस्तक में लेखक ने लिखना छोड़ दिया है। तथा इसी तुक के दूसरे पाद का पाठ हमारे पाठ के सिवाय किसी किसी पुस्तक में "पिता वाच सिर चलु वहि" करके भी है ॥

१०० पाठान्तर—इस की पहिली तुक के पहिले पाद का पाठ हमने सं० १६४७ की

रुंधी सु गाय बन व्याघ्र क्रोध । आयौ सु राज राजन समोध ॥
कुह जाय करिय करुना सु धेन । छंडाय राज राजन बलेन ॥ १८४ ॥
तन धरिग कह्यौ जज्जर सरीर । दिष्ष्यौ न सिंघ तहां निमल तीर ॥
सु प्रसन्न गाय धेनक सु रिष्षि । कीनौं जु अंग द्रप्पक विसिष्ष ॥१८५॥
थन थान दिष्षि अर्बुदा राज । रिष कहै जोग हो चलन साज ॥
छं० ॥ १८६ ॥ रू० ॥ १०० ॥

अर्बुद नाग का कहना कि जो मेरे नाम से तीर्थ प्रसिद्ध हो तो मैं नंदगिरि को उठा ले चलूं ॥

कवित्त ॥ तब तबि अर्बुद नाग । मित्त गिर नंद चित्त दिय ॥
हौं उद्धरि लै जाउँ । तिथ्थ मो नाम नाम दिय ॥
तब नंदी उच्चरयौ । होहि तो नाम तिथ्थ चित ॥
सु रिष्षि कज्ज सुद्धरहि । सु रिन उद्धरहि बाच पित ॥
थप्पी सुबत्त अर्बुद उरग । सु रनि सीस नंषे सु मन ॥
पय परसि मात पित बंध ब्रग । सुभ्र सुहेम कीनो गमन ॥
छं० ॥ १८७ ॥ रू० ॥ १०१ ॥

अर्बुद नाग का नंदगिरि को उठा लाकर बिल में रख देना ॥

कवित्त ॥ तब निय अर्बुद नाग । कंध उद्धर्यो नंदि नग ॥
मग्ग अग्ग गिरि राज । रिष्षि संचर्यौ सथ्थ अग ॥
साध सिद्ध सुर सुरह । सुमन नंषे उच्चरि सह ॥
रिषि अग्ग गिरि पच्छ । आय संपत्त तथ्थ दह ॥

पुस्तक से रक्खा है । सोसाइटी की छापी हुई तथा अन्य पुस्तकों में "अर्बुदा सबल अर्बुद्दस नाम" करके पाठ है । कत । पोरी । गाव । खिन । कुहना । कर्यौ । सोह । तिहा । कितो । द्रप्पक । दप्पक । जो । गहूं ॥

१०१ पाठान्तर–हित । तिथ । उच्चर्यौ । हों । हितो । सुरनि । सुद्ध । रहि । उद्ध । रहि । सत । अरबुद । धय । इस रूपक की दूसरी तुक का दूसरा पाद और तीसरी तुक जो बेदले वाली पुस्तक सोसाइटी में है उस में लेखक की भूल से नहीं है ; अन्य सब में हमारा लिखा पाठ है ॥

१०२ पाठान्तर–उद्धर्यौ । नन्दिग । अग्गा । गिरिराज । रिषि । संचर्यौ । अग्ग५ थिथ ।

प्रविस कियो गारस गिरि । जय जय वचन सरीर कुष ॥
भो मगन सुमन सव्वै सु गिरि । उवस्यौ नाक सुनाग धुष ॥
छं० ॥ १९८ ॥ रू० ॥ १०२ ॥

बिल का पुर जाना और पुष्पवृष्टि सहित जयजयकार होना ॥

दूहा ॥ उवस्यो नाक सु नाग ध्रुअ । दिव अस्तुति परमान ॥
पुहप वृष्टि वर्ष्या करिय । जयजय बंध्यौ तान ॥
छं० ॥ १९९ ॥ रू० ॥ १०३ ॥

नग का हिलना ॥

दूहा ॥ गात सकल गिरि जात को । सव बूझ्यौ सम नाग ॥
उवरि नास सैलह तहां । सो चल्यौ बिन लाग ॥
छं० ॥ २०० ॥ रू० ॥ १०४ ॥

नग के हिलने से वशिष्ठ चिन्ता कर ईश आराधन करने लगे ॥

दूहा ॥ नास सुचल चल्यौ सुनग । उर अति चिंता जग्ग ॥
अति आतुर वाचिष्ट रिषि । ईस अराधन लग्ग ॥
छं० ॥ २०१ ॥ रू० ॥ १०५ ॥

वाचिष्ट ऋषि ने महादेव का यह आराधन किया ॥

साटक ॥ ईसंजा गिरिजाननें वगरयं । उच्छंग मातंगिनी ॥
चर्मजा वद्जामनं जलजं । वुंदं नयं उज्जलं ॥
रख्यं जारनि कर्न कामनि मलं । दलयंनि नीयं पुरं ॥
त्रिपुरारिं तन तुंग तारन गुरं । जैजै चरं ईसयं ॥
छं० ॥ २०२ ॥ रू० ॥ १०६ ॥

उवरि । चागे । पछ । संपन । सध ॥ इस की अंत की तुक का पाठ किसी किसी पुस्तक में "भू मग सुमन सबे सुगिरि । उवस्यो नाक सु नाक धुव" है ॥

१०३ पाठान्तर—उवर्यो नाक । कर्यां ॥

१०४ पाठान्तर—यह रूपक सं० १६४० की पुस्तक में नहीं है और जब तक कि वह इस से भी प्राचीन पुस्तक में नहीं मिले तब तक उस को क्षेपक नहीं कह सकते । सोह । लही । बुझ्यौ ॥

१०५ पाठान्तर—नाग । वाशिष्ट । आराधन । लग ॥

१०६ पाठान्तर—उछंग । चलजं । जलदं । रिपं । करन । दलयंति ॥

भुजंगी ॥ नमो आदि नाथं स्वयंभू सनाथं । नहीं मात तातं न को मंगि वातं ।
जटा जूटयं सेषरं चंद्र भालं । उरं हार उद्दारयं रुंड मालं ॥२०३॥
अनीलं असक्कं उपव्वीत राजं । कलं काल कूटं करं सूल साजं ॥
वरं अंग ओधूत विभ्भूत ओपं । प्रलै कोटि उग्रंसि कालं अनोपं ॥२०४॥
करी चर्म कंधं हरी पारिधानं । वृषं वाहनं वास कैलास थानं ॥
उमा अंग वामं सु कालं पुरष्षं । सिरं गंग नेत्रं त्रयं पंच मुष्षं ॥२०५॥
नमः संभवायं सरव्वाय पायं । नमो रुद्रयायं वरद्दाय सायं ॥
पसूपत्तए नित्तए मुग्गयाए । कपर्द्दी महादेव भीमं भवाए ॥ २०६ ॥
मघघ्नाय ईसानए त्रंबकाए । नमो ध्रम्मए धातए अड्डकाए ॥
कुमारो गुरव्वे नमो नील ग्रीवे । नमो व्याधए बाधए दिच्छ जीवे ॥२०७॥
नमो लोहिते नील सिष्षंडए तं । नमो शूलिने चक्षुषे दिव्यए तं ॥
वसूरेतते सव्वदेवस्तुतेवं । नमो लिंग जाटिल्लए देव देवं ॥ २०८ ॥
नमो तप्प मानाय ब्रह्मं भुजाए । नमो ब्रह्मचारी त्रयंब्रह्मकाए ॥
सिवं चातमे गातगे स्वर्गवाए । नमो विश्वमावित्तए विश्वराए ॥ २०९॥
नमस्ते नमस्ते नमो सीततए । नमो सर्वव्वक्षायने संकराए ॥
नमो ब्रह्मवक्षाय भूतं पिताए । नमो वाचपे विश्वपे भूतपाए ॥२१०॥
नमो सीससाहस्त्रए नीतएसं । सहस्त्रंभुजा नैन साहस्त्र तेसं ॥
नमो पादसाहस्त्र आसंखकर्नें । नमो वन्हि हीरन्य हीरन्यवर्नें ॥२११॥
नमो भक्ति आकंपनं संभु देवं । थिरं रिद्धि दाता मनं वच्च सेवं ॥
प्रसन्नो भवो ईस नव्वै न कव्वै । ततं नाप विन्नासए चित्त तव्वै ॥
छं० ॥ २१२ ॥ रू० ॥ १०७ ॥

१०७ पाठान्तर—स्वभू । समाथं । नही । मंगी । चद्रमाल । उर । रुद्रमाल । धमन । उपवीत । कनकालकूटं । विभूत । त्रिकाल । अनोपं । करि । कध । वृषवाहन । वासं । थानं । वामं । कुरष्षं । गगा । नैंन । उद्रयाय । परवाय । वरदाय । पसू । पत्त । ए । नित । ए । मुग । गाए । कपद्दी । कपर्द्दी । मघंघ्नाय । रसं । नए । ध्रम्म । ए । धात । ए । गुर्व्वे । नल । व्याध । ए । बाध । ए । दिच्छ । सिष्षंड । एतं । दिव्य । एतं । वसूदेवते के सवदेवं । स्तुतेवं । ब्रह्म । जाये । त्रयब्रह्म । काए । स्वर्ग । वाये । विश्वमा । वित्तए । नमस । ते नमस । ते । सीत । ताए । साहस । एनीत । एसं । सहस्र । नैन । सहस्र । आसंख । कर्नें । हिरन्य । संभो विन्नास । ए । चित्त ॥ सं० १६४७ की पुस्तक में इस छंद की ८ वीं तुक में का नत्तए शब्द नहीं है ॥

वशिष्ठ के वचन सुन महादेव का प्रत्यक्ष हो वर मांगने को कहना ॥

चैापाई ॥ सुनि मुनि वचन मोद मन ईसं । आय परौ रष्यौ उद्धरि सीसं ॥
बर ! बर ! बानि जानि मन मंगहु । जंपहि ईस आस जिहि जग्गहु ॥
छं० ॥ २१३ ॥ रू० ॥ १०८ ॥

मंगहु मुनि सज्जन गुन गुन बर । चलै किति जित्तौ जिहि धुर धर ॥
ता कित्ती मुकतीह सों लिज्जै । ब्रह्मासन आसन डोलिज्जै ॥
छं० ॥ २१४ ॥ रू० ॥ १०९ ॥

ईस का स्वरूप देख ऋषि का मुदित होना ॥

चैापाई ॥ देषि सरूप ईस मन उम्मदि । जै भै जीह धन्य बानी बदि ॥
गैार कपूर तेज तन उद्दित । रिषि रोमंचित तब मन मुद्दित ॥
छं० ॥ २१५ ॥ रू० ॥ ११० ॥

मुद्दित मन उद्दित तन भारी । षरि वैकुंठ ईस मनचारी ॥
अर्बुद गिरि धरि ध्यान सु ईसं । करै काल तिहि काल जगीसं ॥
छं० ॥ २१६ ॥ रू० ॥ १११ ॥

वशिष्ठ ऋषि का महादेव को नमस्कार करना ॥

साटक ॥ चेनैनं चिजटेव सीस चितयं । चैरूप चीसूलयं ॥
चदेवं चिदिसा चिभू चिगुनयं । चीसंधि वेदचयं ॥
चैरगिनं चयनच्छि काल चितयं । ग्रामं चयं चैवयं ॥
गंगा चै चिपुरारि भासित तनुं । सोयं नमः संभवे ॥
छं० ॥ २१७ ॥ रू० ॥ ११२ ॥

१०८–१०९ पाठान्तर–मंगहुं । जग्गहुं ॥ चलै और किति शब्दों के बीच में "ई" शब्द पाठ सं० १६४७ की पुस्तक में नहीं है और इधर के समय की लिखित पुस्तकों में है । धुर धुर । कीती । मुक्तीह ॥

११०–१११ पाठान्तर–उंमदि । गैारक । पूर ॥

११२ पाठान्तर–चिजटेवसीस । चयलच्छिकाल । चितयंग्राम ॥

प्रमथाधिपति ने आनन्दित होकर वर मांगने को कहा ॥

दूहा ॥ आनंद्यौ प्रथमाधिपति । बर ! बर ! बंद्यौ बानि ॥
रिषि मंगहु उतकंठ मन । सोइ समप्पौं आनि ॥
छं० ॥ २१८ ॥ रू० ॥ ११३ ॥

वशिष्ठ ऋषि का नंदगिरि को अचल करने का वर मांगना ॥

दूहा ॥ फिरि रिषि जंप्यो संभु सों । जो तुट्टौ मुझ भाव ॥
नग्ग चलंतौ अचल करि । फुनि सज्जौ थिर बास ॥
छं० ॥ २१९ ॥ रू० ॥ ११४ ॥

सो आबू गिरि राज गुरु । सुर गिर सम सैलास ॥
त्रिपथ ताम मुनि देव का ॥ बसि रु किये कैलास ॥
छं० ॥ २२० ॥ रू० ॥ ११५ ॥

महादेव का पर्वत को अचल कर उस में अचल नाम से विराजना ॥

कवित्त ॥ तब सु ईस मन मुदित । पानि चंप्यौ गिर गौरव ॥
अचल अचल कहि अचल । भयौ अचलेस नाम तब ॥
सुथिर भयौ नग नंदि । अप्प थिर वास सु सज्यौ ॥
उभय आय तिहि थान । सगन प्रमथाधिप रज्यौ ॥
गिरि नंद नाम हेमच सुतन । अबुद नाग सु मित्र मन ॥
तिहि नाम त्रिविध भय तिथ्य हर । पारस रूप्पन अर्थ तन ॥
छं० ॥ २२१ ॥ रू० ॥ ११६ ॥

कवित्त ॥ अचल नाम कहि अचल । अचल विद्या अभ्यासिय ॥
अर्बुद गिरि थिर धस्यौ । बियौ बानारस बासिय ॥
उचित नाम इक बरष । मुत्ति लभ्भेति जगन गुर ॥
इच्छत नाम इक दीह । करै उपवास सोइ नर ॥

११३-११५ पाठान्तर-प्रथमाधिपति । बानी । समप्यों ॥ ११३ ॥ सों । तुठो । भग्ग वास ॥ ११४ ॥ गुरं । सं०१६४७ कीप्रतिमें "सुरगिर सम सैलास" और सं० १७७० की प्रति में "सुर गिर सम सैलास" और सं० १८५९ में "मेर समल सैलास" पाठ हैं ॥ त्रिपथा । नाथ । मुनि वसि । रुकियो ॥ ११५ ॥

११६ पाठान्तर—यथ । प्रथमाधिपं । रंज्यौ । नग । तिथ । अथि ॥

बाना रभंति बारानसिय। आबू अर्बुद उद्धरिय॥
जट विकट जाल विभूति रंग। सुरग मुकति ढिग ढिग फिरिय॥
कं० ॥ २२२ ॥ रू० ॥ ११७ ॥

आबू को अचल देख कर वशिष्ठ का प्रसन्न होना और अन्य ऋषियों को वहां यज्ञ के लिये बुलाय जप तप और वास करना॥

पद्धरी॥ अग अचल दिष्षि वाशिष्ट रिष्य। मन मुदित भयौ सम आय सिष्य॥
धर वासदेव सब गुन समान। आवरन रिद्धि चिन चिंत थान॥२२३॥
आभासि सिष्य गौतमह तथ्य। आवद्धौ बास अनि रिष्य सथ्य॥
आभासि रिष्य अनेक तान। संबोधि बोलि प्रथू प्रिथुक नाम॥ २२४॥
देवलह असित अंबावि सुत्र। सौमित्र सर्प्प माली विभूव॥
मष मषन सनक जैनेय पैल। दालभ्य वक्क सुमंत बैल॥ २२५॥
दीपाय किस थूलसि राय। तैतरिय जअवक्री सुनाय॥
जैमनिय भव्व वैसंपायन। दर्षनह लोम असुहोच जान॥२२६॥
मंडव्य अरति कौसिक्क दाम। उष्णीष चिवन पर्णाद बाम॥
घटजान सुवन मोजायनेय। वलवाक परासर वायवेय॥२२७॥
सचिवाक जान क्रन क्रन्न मान। सनिवाक क्रितास्रम सुचि पान॥
सिषि वांनसु पर्वत पारिजात। अगस्ति मारकंडे सुभाति॥२२८॥
पाविच पानि सर्वन्य रभ्य। किरनाषकेत भगु मेध सभ्य॥
जंघाव भालुकी कोप वेग। गालम चरीय ब्रह्म अगेग॥२२९॥
कौडिन्न बंध माभी सनक्क। सानंद सनातन कच वक्क॥
सांडिल करक वाराह पंग। कौमार अश्व चय घोष मंग॥२३०॥
वेनीय जघन जघ नासकेत। कन्हं कलाप वकीव सेत॥
अष्टावक्र उद्दालकेय। च्यवनह कपिल मातंग जेय॥ २३१॥

---

११७ पाठान्तर—धर्यौ। बोयो। लभ्यौ। तिलगन। बानार। भंत। बानारसीय। उद्धरीय। मुति॥
११८ पाठान्तर—दिषि। वाशिष्ट। सिष। थार्यौ। प्रिथक। अंबवा। विभूय। सप्प। धुव। सरस। बह। मंडप। कौसिक। उष्णीक। पनविवाम। घट। जात। वाल। वाक। वालवाक। वाय। वेथ। सचि वाक। क्रन। क्रनमाल। सनि। वाक। क्रितास्री। सिषि। वांनस। पर्वत। भाल। की। मालं। महि। रिय। कोंडिन। सांडिल। बेनी। जय। घव। घना। सकेत। कन्ह। वसेत अष्टाह।

माधव्व गरग अनेक रिष्य । आए सु अन्य तहाँ समथ सिष्य ॥
आख्यान मंच बल तप्प सथ्य । सब देव रिष्य आए सु तथ्य ॥ २२२ ॥
कालिंद्र गंग सरसत्ति आय । अनुसरिय बहु सब सीय ताय ॥
ऊषधी स्त्रब्ब मनि सब्ब धात । बर वृष्य लता फल पुहप पात ॥ २२३ ॥
जाजन्य जजन अधियन अध्याय । लगेसु करन रुचि रिष्य आय ॥
आख्यान बान उचान जाप । लग्गे सु करन रुचि इष्ट ताप ॥ २२४ ॥
जप होम मंच धारना ध्यान । आरंभ रिष्य लग्गे सु ग्यान ॥
आराधि सकति आभासि ताम । संचास कीन गिर उंच धाम ॥ २२५ ॥
आदरस रिष्य संबास कीन । आश्रम्म अब्ब क्रम काज चिन्ह ॥
जगनच जाप अध्याप होम । आराध उंच आशास धोम ॥ २२६ ॥
प्रीनंत देव सुव्वास आय । सब मिले इंद इंदार काय ॥
वीसेष मंच जंचं गुरेन । बंधे जु मंच कर आप देन ॥ २२७ ॥
करि भसम देव देवल लषीव । विस्साष अम्रत पावै सु पीव ॥
अति भम्म क्रम्म द्रष्षे अनंद । आए सु निसाचर कलन मंद ॥ २२८ ॥
भररंत रिष्य मंगिय कहर । तिन समन भूमि षच नग्ग नूर ॥
चित अचित पंच आभासि देह । रस दुग्ध सहो पुहा अछेह ॥ २२९ ॥
के भषैं वाय के ध्यान देव । जल दूध कंद मूलह सु केव ॥

कं० ॥ २४० ॥ छं० ॥ ११८ ॥

गाथा ॥ कंदं फलानि फलयं । कक्रुंतं मुनिय काल बेकालं ॥
एकोपि धार धरयं । संतोषं सर्व निधानं ॥

कं० ॥ २४१ ॥ छं० ॥ ११९ ॥

संतोषं विना न लभ्भै । कलपंतं राजनं सुष्यं ॥
जो संतोषं देहं । तौ सुषं हय मूल काम लया ॥

कं० ॥ २४२ ॥ छं० ॥ १२० ॥

थक । उद्दाल । केय । व्यव । नह । मातंग । जेय । महां । तथा । मथ । देवरिष्य । कलिंद्र । सरसति । ऊषधी । स्रब । बधनय । अध्याय । लगे । बाय । लगे । धारनाध्यान आदर । सरिव । क्रम । अध्याय । सु । बास । मिले । विसेष । जंच । अम्रत । द्रष्ये । भषें । कंध । सकेव ॥

११९–१२० पाठान्तर—ककंतं । कालबेकालं । ए कोपि । संतोसं । सब्ब । तिहायं ॥ ११९ ॥ संतोषन । विया । लभइ । काल पंतं । संतोसं । तो ॥ १२० ॥

यज्ञ का अनुष्ठान सुन कर राक्षसों का एकत्र हो आना ॥

दूहा ॥ जंबकेत दानव दुसह । अरु रष्यस धुमकेत ।
अप्प सथ्थ लीने सकल । आए दुष्टह हेत ॥
छं० ॥ २४३ ॥ रू० ॥ १२१ ॥

ऋषियों का अनलकुंड रचन कर ब्रह्म कर्म प्रारंभ करना ॥

कवित्त ॥ आबू करि रिषि जग्य । मंच कारन सु मंच जपु ॥
पंड हथ्थ नर उंड । अष्ट अंगुल ऊर्द्ध वपु ॥
हथ्थ तीन अरु अद्ध । मंडि चवकून समा सम ॥
स्वप्प समति सम कियौ । फनति बचयौ देव क्रम ॥
अगिनेव थान अगिनेव घर । बाय कुंड दष्षिन दिसा ॥
नैरत निवर्त धज मंडि कै । ब्रह्म कम्म लग्गे रिसा ॥
छं० ॥ २४४ ॥ रू० ॥ १२२ ॥

दैत्यों का ऋषियों के यज्ञ में विघ्न करना ॥

कवित्त ॥ पंच पव्वे जग्योपवीत । पंच पव्वीं अधिकारिय ॥
देवो मुनि दुजराज । वैश्य शूद्रह चितकारिय ॥
चर बिडाल पशु म्लेछ । क्रंम चंडाल पंड करि ॥
इह प्रमान दस विधि * सुक्रम । जग्ग मंडे सुमंडि चरि ॥
दानव सु दुष्ट दुष्टंसु क्रम । दुष्ट म्रच वरिषा करै ॥
पसु मंस रुधिर नंषे सु जल । क्रंम विप्र संमुह डरै ॥
छं० ॥ २४५ ॥ रू० ॥ १२३ ॥
चौ बेदी चौ विप्र । गीत गायच मंच जप ॥
ता मंझो घन विघन । करै आरिष्ट असुर कुप ॥

---

१२१ पाठान्तर यवकेत । राषेस । धुम्रकेत । आप । सथ । आहेत ॥

११२ पाठान्तर—आब्बू । रिष्षि । तप । हथ । वर । उरद्धु । वप । अद्धं । संमति । स्वप । कीयो । वंचयो । अग्गिनेत्र । आगे । नेत्र थांन । अगि । नेव । वार । क्रुंड । दषिन । किसा रसा ।

१२३ पाठान्तर—जग्योपवीत । जुग्योपवीम । सं० १६४७ और १७७० की पुस्तकों में यह पाठ है "इह विधि प्रमान दस विधि सुक्रम" । जंग । जग । सुमंहि । सुदुष्ट । दुष्ट । सुक्रम्म । पसु । मंसु । सुजल । कर्म । समुह ॥ * विधि विशेष है ॥

१२४ पाठान्तर—गायच । मंझय । मंझे । पर्बत हलावै । मोहिनी । रूप कलहिका धरै । नहुंहिं । कलक । वै । "वै हविन तालि न धरै" भी सं० १६४७ की प्रति में पाठ है । हथ्थें ।

कबहक भूमि चलावै । कबहक पव्वंत चलावै ॥
अग्नि दृष्टि कब करै । कबहक बुझै बुझावै ॥
मोचनी रूप कबहुक करै । कबहक सिघ नद्दह करै ॥
तुष्णीक रचै गावै कबहु । वे चष्यो तानव धरै ॥

छं० ॥ २४६ ॥ रू० ॥ १२४ ॥

ऋषियों का संतापित होकर वशिष्ठ के पास जाय पुकारना ॥

दूहा ॥ दिष्षि रिष्य मंडी सु रिध । अग्गिन होमह जाप ॥
नाहि विगारन मन मुदित । लगे सकल संताप ॥

छं० ॥ २४७ ॥ रू० ॥ १२५ ॥

पद्धरी ॥ रज दृष्टि उपन्न चिन नंषि थान । चासना बीर पहु लगि भयान ॥
रिष गये सव्व वाषिष्ट पास । रष्यसन कह्यौ मंड्यौ विनास ॥ २४८ ॥
रिष राज दुष्ट वध चिंत आय । कंड्यौ जजन्न बल मंच भाय ॥

छं० ॥ २४९ ॥ रू० ॥ १२६ ॥

जिस पर वशिष्ठ का प्रतिहार चालुक्य और पँवार को प्रगट करना ।

कवित्त ॥ तब सु रिष्य वाचिष्ट । कुंड रोचन रचि रचि तामह ॥
धारिय ध्यान जजि होम । मध्य वेदो सुर सामह ॥
तब प्रगट्यौ प्रतिहार । राज तिन ठौर सुधारिय ॥
फुनि प्रगट्यौ चालुक्क । ब्रह्मचारो व्रत धारिय ॥
पांवार प्रगट्या बीर बर । कह्यौ रिष्य परमार धन ॥
चय पुरष जुद्ध कीनौ अतुल । मह रष्यस घुहंत तन ॥

छं० ॥ २५० ॥ रू० ॥ १२७ ॥

---

१२५ पाठान्तर—दिष्षि दि'ष्य । दिषि दिषि । दिषि । दिषि । लगे । संताप । मंताप ॥

१२६ पाठान्तर—अग्नि । थान । सब । सर्ब । राष्यसन । राषिसन । बध । चिंति । जजन । बलं ॥

१२७ पाठान्तर—रिषि । वाशिष्ट । रोचेता । तहिं । ध्यान । मध्यवदी । सरवा । मदि । प्रगट्यौ । परिहार । राइ । चालुक । सं. १६४० में "ब्रह्म तिन थाल सुधारिय", सं. १७५८ की में "ब्रह्म तिन थाल सुसारिय" पाठ हैं । रव्व । रव । पंमार । धनु । धनु । रवस । तनु ॥

तथापि राक्षसों का उपद्रव शमन न होना ॥

मलया ॥ कारयं जग्य वंभान निंमानयं । रचियं कुंड षंडं थिरं थानयं ॥
आसनं दिव्य देवान आह्वानयं । आसुरं कोन उचिष्ट ऊथानयं ॥
छं० ॥ २५१ ॥ रू० ॥ १२८ ॥

तब वशिष्ठ का स्वयं कुंड रचन कर यज्ञार्थ बैठना और चिंतवन करना ॥

दूहा ॥ जब वाचिष्टह जग्य कजि । सजि कुंडह सुभ थान ॥
तब आसुर अन संक से । किय उचिष्ट उतान ॥
छं० ॥ २५२ ॥ रू० ॥ १२९ ॥

कवित्त ॥ तब चिंतिय वाचिष्ट । एह आसुर अविचारिय ॥
जग्य जीह उचिष्ट । करैं कातर क्रत धारिय ॥
सुरन अंस संग्रहे । हवै नह हय हुआवह ॥
सो उपाव संचियै । जो * याहि संवरै असुर सह ॥
न्रिंमौ सु सूर संग्राम भर । अरि अलंघ पंडन सु षल ॥
सम धम्म हि जग्य कारन सकल । विमल स्रिष्ट सोभै सयल ॥
छं० ॥ २५३ ॥ रू० ॥ १३० ॥

अरिल्ल ॥ अघट घाट रिषि दृष्षि निसाचर । परिसि च्यार घरि ध्यान ग्यान वर ॥
चिंतिय ब्रह्म करम किहि कामह । भयौ रूप रिषि ब्रह्म सुनामह ॥
छं० ॥ २५४ ॥ रू० ॥ १३१ ॥

---

१२८ इस रूपक के छंद का नाम जो चंद ने मलया प्रयोग किया है वह स्रग्विणी नामक चार रगण का छंद है ॥

पाठान्तर-बंभानंनि । मानयं । रचियं । आह्वानयं । उचिष्ठ ।

१२९ पाठान्तर—वाशिष्ट । सुथांन । अनं ।

१३० पाठान्तर—चिंतिय । शिष्ट । जिह । करै । हवै न हव्यहु आवह । संग्राम । षंडं । समं । सोभै ॥ (सो *) विशेष है ॥

१३१ पाठान्तर-दैषि । निसाचरं । वरं । ब्रह्मकरम ॥ सं० १६४० की पुस्तक में "ग्यान" शब्द नहीं है ॥

वशिष्ठ का चाहुवानजो को उत्पन्न करना ॥

कवित्त ॥ अनल कुंड किय अनल । सज्जि उपगार सार सुर ॥
कमलासन आसनह । मंडि जग्योपवीत जुरि ॥
चतुरानन स्तुति सह । मंत्र उच्चार सार किय ॥
सु करि कमंडल बारि । जुजित आह्वान थान दिय ॥
जा जन्नि पानि अव अहुति जजि । भजि सु दुष्ट आव्हान करि ॥
उप्पज्यौ अनल चहुवान तव । चव सु बाहु असि बाह धरि ॥
छं० ॥ २५५ ॥ रू० ॥ १३२ ॥

दूहा ॥ भुज प्रचंड चव च्यार मुष । रत्त व्रन्न तन तुंग ॥
अनल कुंड उपज्यौ अनल । आहुवान चतुरंग ॥
छं० ॥ २५६ ॥ रू० ॥ १३३ ॥

ऋषियों का चाहुवानजो का स्वरूप देख कर उन को चाहुवान कहना । उन को राक्षसों से युद्ध करने की शक्ति देने को आशापुरा देवी का स्मरण करना । देवी का प्रत्यक्ष होकर चाहुवान जी को राक्षसों से युद्ध करने में सहायता देना । राक्षसों का रसातल को जाना । देवी का चाहुवान जी को अपनी कुल-देवी मानने की आज्ञा करना और उन का अपने वंश भर की कुलदेवी मानना स्वीकार करना । देवी का उन को वर देकर पधारना । वशिष्ठ का चाहुवान जो को आशीर्वाद देकर अन्य अनलों का वर्णन करना और दुर्वासा को शाप देकर पठाना ॥

गाथा ॥ उपज्यौ अनल अनूपम रूपं । नहि आकृत्ति अवर नर रूपं ॥
व्रंन अभूत सु उन्नत जिष्टं । वंदन भर कि बद्ध मनु पिष्टं ॥ छं० ॥२५७॥

---

१३२ पाठान्तर—अनलकुंड सजि । मंडि । जग्योपवीत । आहवान । आजाने । चाव्हान । उपज्यो । चहुयान ॥ पुरातत्ववेत्ताओं के स्मरण में रहे कि प्रायः यह कहा जाता है कि अग्निकुलों की कथा उत्पत्ति आबू पर हुई उसका कोई पौराणिक प्रमाण भी नहीं मिलता । अतएव हम एक यह प्रमाण विदित करते हैं कि कालिंदिका प्रकाश नामक ग्रंथ में पुराणोक्त यह श्लोक लिखा है:—

श्लोक ॥ दूषयिष्यन्ति यवना स्सहस्राब्दे गते कलौ ।
तदा रक्षां करिष्यन्ति याज्ञिकाः क्षत्रियर्षभाः ॥

१३३ पाठान्तर—रत । व्रन । बच ।

स्याम रोम कपोल विसालं । उज्जल कंध कनिय दुसालं ॥
चाल मान सोभे उर सोभं । सधु प्राक्रष्ट दिक्ख कर दोभं ॥ छं० ॥ २५८ ॥
नयन प्रयुज भ्रकुटी सु कहरं । मुख आकृत्ति बाल घर नूरं ॥
कवच चोन उर चान सरीसं । दल आकत्ति भय नक दीसं ॥ छं० ॥२५९॥
तोन पूरि सर बधि सु कासं । धरिय पांन सरबी रवि रासं ॥
षेटक षग्ग उनंगी धारं । चाहिशान दिष्यो रिष सारं ॥ छं० ॥ २६० ॥
चाहि आइ रिषि आइ समंगे । चहुआन कवि मद सुरंगे ॥
समरी सकति रिष्षि गिर वासी । दिय रुाहाय युद्ध कजि तासी ॥छं०॥२६१॥
आई सकति सिंघ आरोही । द्वादस भुजा सु आयुह सोही ॥
षेटक षग्ग बरद्दह पासं । घंटा बान क्रतो सिर आसं ॥ छं० ॥ २६२ ॥
षप्पर सकति सूल मद पाचं । देषे रूप क्रंम क्रम क्राचं ॥
आसा पूरि कवे रिषि राजं । चाहुवान मंडी क्रत काजं ॥ छं० ॥ २६३ ॥
चाली सकति सपाइ अनसं । क्रसे सूर सबै कसि बसं ॥
सब आए कढि रष्यस ठानं । मंड्यौ जुद्ध सवै असमानं ॥ छं० ॥ २६४ ॥

१३४ इस रूपक के छंद २५७ के पाठ में बड़ी गड़बड़ है । एशियाटिक सोसाइटी बंगाल की छापी हुई पुस्तक में "उपज्यौ अनल अनूपम रूप । नहि आकृति अवरम रूपं ॥ तन अभूत सु उंनत सिष्टं । बंदन भर कि बहुम नुपिष्टं" ॥ और सं० १६६० की पुस्तक में 'उपज्यौ अनल अनोपम रूपं । नहि आकृति अवरम रूपं । तन अभूत अतु उत्तमा जिष्टं । बंदन भाकि बहु मन मिष्टं" और संवत् १८४७ की में "उपज्यौ अनल अनूपम रूपं । नहि आकृति अवरम स्रूपं । तन अभूत अतु उत्तम जिष्टं । बंदन भरा के बहु मन पिष्टं" ॥ किन्तु हमारा पाठ कर्नेल टाड साहब के गुरु यतिवर ज्ञानचंद्रजी ने जिस सं० १८५९ की पुस्तक से रासो पढ़ा था उसके अनुसार है ॥ इस में "स्रूपं" शब्द हमारे पाठकों को अर्थ करते समय परिश्रम देगा क्योंकि जिस संस्कृत शब्द 'स्रुप्र' का यह अपभ्रंश हिन्दी है वह संस्कृत के अच्छे विद्वानों के पढ़ने में भी उस का बहुधा प्रयोग न होने के कारण बहुत ही कम आया होगा और वह अाचस्पत्यबृहदभिधान और शब्दार्थचिन्तामणि जैसे बड़े कोशों में भी नहीं मिलेगा परन्तु प्रोफेसर विलसन साहब के कोश में मिलेगा । वे इसको विलिंग में Strong अर्थात् बलवान अथवा पुष्ट का वाचक लिखते हैं ॥

पाठान्तर—उजिल । उंजिल । कवन । दुसालं । प्राकुष्ट । दिक्ष । आकृति । कालहर । आकृति । करि और सिरसं । उनंगी । चाहि । बान । गिरवासी । बरदह । कतो । क्रम । मंडो । अहारे । ठानं । आश्रटि । धुंमकेत । सकतिय सहलिय । अध । पास । साथ । लक्ष । प्रवंजिय । चष्पे । नाम । साम । संवत् १६४० और संवत् १९०० की में "आग्यो कर सिर ले चहुवानं" पाठ है । और "चाहुवान । प्रथु । वंस । मान । चहुवान । असमान । मई । है है । चहुवानं । उपजिय ।

बाचै आवधि सकनी सारं । बड आरहि पंडे धर भारं ॥
सहे धुमरकेन सकतीयं । जंबकेत चहुआन सु * बनीयं ॥ छं० ॥२६५॥
बड्ड सु रष्षस दानव सद्दे । गए रसातल नहु अद्दे ॥
देवी आइ अनहल्ल पासं । जंपी तथ्य प्रसन्नी तासं ॥ छं० ॥ २६६ ॥
आसापुर कहै सो नामं । पुज्ज पुच पौच परिनामं ॥
कुलह गोच भुम्म थप्पै नामं । अप्पों रिद्धि अचल्लह तामं ॥ छं० ॥२६७॥
धास्यौ सिर लै कर चहुवानं । ब्रह्म बंस अंस जस मानं ॥
जीती अप्पं देवो चहुवानं । दिय बर दान गई असमानं ॥ छं० ॥२६८ ॥
गइ असमान कियो सद भारी । धुं ! धुं ! कार जै ! जया सारी ॥
/ह्वै ! ह्वै ! करि हं ! हं ! चहुवानं । अनल कुंड उपजे परिमानं ॥छं॥२६९॥
चो मुष्यौ चो वेद प्रकारं । ऐसो मुष देष्यौ अधिकारं ॥
वेदं स्याम अथर्वन रूपं । रिगु जिजु वेद देव गुन नूपं ॥ छं० ॥२७०॥
चित चमकार चिहूं दिसि लग्गिय । पढत माहि ब्रह्ममंड सु जग्गिय ॥
बानी धुनि मुनि हरषि बसीसं । वर बसिष्ट तहां दई असीसं ॥छं०॥२७१॥
तोहि वंस होइ कुंडल धारी । जनु कि अर्क राका विस्तारी ॥
थुनि करि सेव देव निहि पानं । जै जै तप्प जिते चहुवानं ॥छं०॥२७२॥
परहरि वोर बीर नर केकं । तिहि चालुक्क भयो गुन मेकं ॥
परिहरि वर पावार ति वारं । क्रोध रूप जाजुल्य निधारं ॥ छं० ॥२७३॥
जाजुल्लति परिहार न दिष्ष्यो । बिजि करि विप्र पौरि तह रष्ष्यौ ॥
तिन कारन वाचिष्ट रिषीसं । अबुद नाम गिरि नंद जगीसं ॥छं०॥२७४॥
ता ऊपर दरवासा आए । दै सराप वाषिष्ट पठाए ॥
अब वे दानव दुष्ट सु दावै । तो रष्या चव कुली सु रावै ॥ छं० ॥२७५॥
बंस छतीस गनीजै भारी । च्यार कुली कुल तिन अधिकारी ॥
सब सु जात जोनी मग दिष्षिय । ए ब्रह्मा अविसेष विसिष्षिय ॥
॥ छं० ॥ २७६ ॥ रू० ॥ १३४ ॥

विहू । पठत । सरसिव । सीसं । बसिष्ट । राषा । तप । नरकेकं । तिवारं । पारहारन । तहं । उपर । रच्या । कुलीन । बसि । वे । कोती । (मु०) विशेष है ॥

क्षत्रियों के छत्तीस वंशों की नामावली ॥

कवित्त ॥ रवि ससि जादव वंस । ककुस्थ परमार सदावर ॥
चाहुवान चालुक्क । छंद सिलार आभीयर ॥
दोयमत्त मकवांन । गरुअ गोहिल गोहिल पुत ॥
चापोत्कट परिहार । राव राठौर रोस जुत ॥
देवरा टांक सैंधव अनिग । योतिक प्रतिहार दधिषट ॥
कारट्टपाल कोटपाल हुल । हरितट गोर कलाप मट ॥
छं० ॥ २७७ ॥ रू० ॥ १३५ ॥

दूहा ॥ धन्यपालक निकुंभ वर । राजपाल कविनीस ॥
काल छुरक्कै आदि दै । बरने बंस छतीस ॥
छं० ॥ २७८ ॥ रू० ॥ १३६ ॥

चारों अग्निकुल क्षत्रियों ने वशिष्ठ का यज्ञ निर्विघ्न किया ॥

कवित्त ॥ पढन मंच रिष जाग । च्यार विची उप्पाय ॥
कुचिल दीन परिहार । पौरि रष्षु सत भाय ॥

१३५-३८ पाठान्तर-यादव । परमार—र । तोवर । चालुक । छिंद । छदक । आभीवर । गुरुव गोह । गही भुव । राठोर । सिंधव । अनग । अनंग । योतिक । प्रतिहा । दधीषट । करटपाल । हुन । हरीतट । गोरक । भाड़ । जट ॥ १३५ ॥ ध्यानपालक । ध्यान पालकनि । कुंभ । कविनीस । दै । छत्तीस ॥

कवि चंद के समय में जो छत्तीस कुल क्षत्रियों के प्रसिद्ध थे उनके नाम उसने वर्णन किये हैं अर्थात रवि=सूर्यवंशी १ ससि=चंद्रवंशी २ यादव=यदुवंशी ३ ककुस्थ=कछवाहे ४ परमार ५ सदावर=तोवर ६ चौहान ७ चलुक=सोलंकी ८ छंद=राठल ९ सिलार १० आभीयर ११ दोयमत्त=दाहिमा १२ मकवान १३ गोहिल १४ गोहिलोत १५ चापोत्कट=चावड़ा १६ परिहार=पढ़ियार १७ राठौर १८ देवड़ा १९ टांक २० सैंधव=सिंधव २१ अनिग=अनग २२ योतिक २३ प्रतिहार २४ दधिषट २५ कारट्टपाल=काठी २६ कोटपाल २७ हुल=हुन, हुण २८ हरितट=हाड़ा २९ गोर=गोड़ ३० कमाय=कमाह जेठवा ३१ मट=जट ३२ ध्यानपालक वा धान्यपालक ३३ निकुंभ ३४ राजपाल ३५ कलछुरक्के=कालकर ३६। इन के विषय में कवि दलपत रामजी अपने जाति निबंध नामक ग्रंथ में लिखते हैं कि रत्नकोश नामक संस्कृत ग्रंथ की टीका में लिखा है कि क्षत्रिय कुल का आदि पुरुष मनु उसके वंश में से ये छत्तीस हुए हैं।

सं० १६४० और सं० १७७० की पुस्तकों में इन रूपकों के स्थान में रूपक १३७ और उसके स्थान में इनको लिखा है अर्थ स्पष्ट पुष्ट है। हम ने उनका क्रम इस लिये ग्रहण नहीं किया है कि रूपक १३४ के छंद २७६ की पहिली तुक का अर्थ उसके पीछे इन रूपकों का ही होना प्रकाश करता है ॥

चतुर बीर चहुवान । च्यार मुष्षौ चैाराई ॥
अष्ट अस्त्र आरिष्ट । देव चारिष्ट सु स्वाहं ॥
पंमार वाह धन धन करह । कह्यौ रिष्य परमार धन ॥
चालुक्क वाह चालुक्क दुज । कुसिन कुसन मंडित तन ॥
छं० ॥ २७९ ॥ रू० ॥ १३७ ॥

अनल कुंड आभंग । उपजि चैाहान अनिल थल ॥
सुकर सठि करि वार । धनुब संग्रह्यौ बान बल ॥
तिन रष्यिस परिवार । धार सुष धरनि नि धट्टिय ॥
षल जुषित्त संमुहे । तिनह फिर सरस्रन तुट्टिय ॥
बंभान जग्य निर विघन किय । पुहप वृष्टि सुर सीस रजि ॥
रष्यि सु धरनि षग भुज्ज वर । रिष्ट निवारिय इष्ट भजि ॥
छं० ॥ २८० ॥ रू० ॥ १३८ ॥

जिन्होंने द्विजों की रक्षा की उनके वंश में पृथ्वीराज हैं ॥

दूहा ॥ तिन रचा कीनी सु दुज । तिहि सु बंस प्रथिराज ।
सो फिरषत पर बादनह । किय रासा जुविराज ॥
छं० ॥ २८१ ॥ रू० ॥ १३९ ॥

चाहूवानजी के वंश के राजाओं की कथा ॥

चाहूवानजी से माणिकराजजी पहिले तक तेरह पीढ़ी का वर्णन ॥

पद्धरी ॥ ब्रह्मान जग्य उतपन्न सूर । चहुवान अनल अरि मलन सूर ॥
उत्तंग अंग प्रचंड बाह । पहुमीस इंद अरि गिलन राह ॥ छं० ॥ २८२ ॥
प्रतिपाल धरनि अंगह सु ध्रम्म । स्रुत मान कीन उत्तंग कम्म ॥
रत्तो सु जोग भव भोग रास । पुर अमर नाग नर किति जास ॥ छं० ॥ २८३ ॥

१३७–१३८ पाठान्तर–जाय कुलिल । चहुवान । मुषैा । सुमाहं । वाह्न । रिषि । पंमार । मंहि । सलन ॥ १३७ ॥ कुंड । चैाहांन । रष्षि । सपरिवार । मुष । निघट्टिय । जुषित । निरविघन । भुज्जवर ॥ १३८ ॥

१३९ पाठान्तर–रष्या । तिहिं । पृथ्वीराज । पृथिराज । प्रबादनह ॥

१४० पाठान्तर-ब्रंम्हान । उत्पन्न । चहुवांन । मल । मसूर । उतंग । पहुवीसु । इंदु परिगिलन । धरनी । अंग । सुतमान । उतंग । रतो । सुजोग । भास । किति । तासू । अन । सु । मन । माहंत । संका । विहार । मानिक । राजत । सु । मन । माह । भूत । भयंकर । रस ।

ता सुअन सूर सामंतदेव। अरिमंत मत्त मत्ता जु देव॥
महदेव सुअन मोहंत तास। सु प्रसन्न ईस सेवंत आस॥ छं० ॥२८४॥
वर अजयसिंघ सिंघह सु राम। नर बीरसिंघ संग्राम नाम॥
सुअ बिंदसूर उदारहार। आसोक ओय संकाविहार॥ छं० ॥ २८५ ॥
सुअ वैरसिंघ वैरी विहंड। ध्रुव बीरसिंघ अरि बीर खंड॥
अरिमंत सकल कलि कलनचूर। मानिक राव चहुआन सूर ॥छं०॥२८६॥

महिसिंहजी से धर्म्माधिराजजी तक का वर्णन ॥

राजस * सुअन ता सहस मध्य। महसिंघ सिंघ संग्रम पथ्य॥
सुअ चंद्रगुपत सम चंद्ररूप। प्रतापसिंघ आरेन दूप॥ छं० ॥ २८७ ॥

नृप। सत। पूर। बालन। प्रथम। जग। तुव। बहु। मंद। रत। कोढ़ी। किये। चल्यो। प्रमान। मांन। घांन। चल्यो। मुकलो। मुकये। निगम। मुक्कयो। जित। किति। चौसठि। चित। गायौ। खंम। बिव। खंम। कदंम। करम। दानेश्वल। घांन। स। घानि। उगत। उगात। उतंग। पुकल्या। जरन जाहुजाहु। जाह जाह। इन्द्र। सं० १७१० और १६४७ में 'नेर पुर रुद्र हरि हक बलि। मांनि। जज्जंगी। जज्जांय। पांनि। लगे। हके। सुरूप। मृग। सर्प। अप्प। अप। सद्द। पुज॥

* * पक्षपातरहित वृद्ध और विद्वान कवि कहते हैं कि यहां अर्थात् छंद २८६ और २८७ के बीच में कितनेक छंद लोप हो गए हैं किन्तु चंद कवि ने तो मूल पुरुष श्री चाहुआन जी से लेकर पृथ्वीराजजी तक पीढ़ावली वर्णन की थी जिनको सब ऐतिहासिक ग्रंथ और सर्वसाधारण मनुष्य हिन्दुओं का अंतिम बादशाह होना प्रकाश करते और मानते हैं। और क्वचित् चंद का नाम विध्वंस करनेवाले यह कहते हैं कि ग्रंथकर्ता ने अपने अज्ञात होने के कारण खंड:खंड वंशावली वर्णन की है। इन दोनों सम्मतियों में से हम पहिली से सम्मत हैं क्योंकि प्रथम तो चंद कवि अपनी वंशपरंपरा से इस राजकुल का मुख्य कवि और ख्यात वर्णन करनेवाला था और यह कदापि संभव नहीं है कि आज तो हम चौहान वंश की शुद्ध अथवा अशुद्ध पीढ़ावली जान सकें और हम से सात सौ वर्ष पहिले जो उक्त राजकुल का निज कवि हुआ वह न जानता हो और न वर्णन करे। दूसरे चाहुआन वंश की पीढ़ावली जो श्रीमान श्री बूंदी राव राजाजी महोदय ने निश्चय कराया है और जो एक चाहुआन वंश मात्र की पीढ़ावली हम भी सन् १८७३ से सिद्ध कर रहे हैं और वह बूंदीवाली से विशेषांश में मिलती हुई है। उन दोनों के अनुसार भी चाहुआनजी से पृथ्वीराजजी एक सौ सतत्तरवी १७७ पीढ़ी में हुए सिद्ध होते हैं। अब यहां सूक्ष्म बुद्धि से विचार कर देखने की बात है कि छंद २८२ से २८६ तक में जो तेरह १३ नाम क्रम से कवि ने कहे हैं वे उक्त दोनों वंशावलियों से बराबर मिलते हैं और "राजस सुअन ता सहस मध्य" का अर्थ इन प्रथम माणिक्यराजजी के विषय में घट नहीं सकता क्योंकि इतना वंश यहां तक बढ़ नहीं सकता। इसके सिवाय जो पाठक चाहुआन वंश की इस परम प्रसिद्ध कथा को जानते होंगे कि तीसरी पीढ़ी में महादेवजी (जिनका उपनाम परमंजनजी भी है) के हाथ से अनजाने प्रमति ऋषि की एक गाय मर गई थी कि जिस पर ऋषि ने शाप दिया था कि "तुम्हारा वंश नाश हो" तदनन्तर ऋषि को

सुत मोह सिंघ बर मोह रूप । भूतह भयंक रन रत्त भूत ॥
सुत सेनराइ वड सेन वंत । संपत्ति राइ सुम तत्त मंत ॥ छं० ॥२८८॥

सुत्र नागहस्त सम नाग राज । अस्थूल नंद आनंद राज ॥
गिर लोहधीर सुत प्रम्मसार । सुत्र बीरसिंघ संकाबिडार ॥छं०॥२८९॥

सुत्र षिबुधसिंघ सम जोगसूर । जस चंदराय बर अजस दूर ॥
सुत किस्नराज जस किस्न चिंत । हरहरहराइ नर बुद्धिमंत ॥छं०॥२९०॥

षालन्न राइ थलि अंग नास । सुत्र प्रथव राइ पहुमी प्रकास ॥
तिन अनुज अंग राजत अनेय । कवि अनप आउ कित्ती अजेय ॥छं०॥२९१॥

धर्माधिराज रति जोग भोग । षट षुंट षित्ति षग्गह सु भोग ॥

मनाने पर उन्होंने अपराध क्षमा कर के कहा कि कितनीक पीढ़ियों तक तो तुम्हारे वंश में एक ही पुत्र होता रहेगा, फिर वंश बढ़ेगा। इस से भी इस तुक का अर्थ माणिकराजजी में नहीं घट सकता।

तथा उक्त दोनों पीढ़ावलियों को इस रूपक के साथ मिलाने से यह भी ज्ञात होता है कि छंद २८७ से अर्थात् उप में कहे महिसिंहजी एक सो अड़तालीसवीं पीढ़ी में हुए और उन से फिर सब नाम बराबर क्रम से एक सो सतत्तरवें पृथ्वीराजजी तक मिलते हैं। क्या अब तो चौदहवीं पीढ़ी से एक सो सैंतालीसवीं पीढ़ी तक के बीच के नाम यह भी क्रम से चंद कवि बिलकुल ही नहीं जानता था अथवा क्या वह उनको निगल कर परलोक में जा बैठा है; जो कि हमारी वृत्ति सदैव प्रत्येक विषय के अनुकूल अनुमान करने और उस के साधर्म्य को मान्य करने की है इसलिये प्रतिकूल अनुमान ही क्यों करें और वैधर्म्य की ओर क्यों दृष्टि डालें। क्योंकि जो आज विद्वान लोग अन्य बड़े बड़े प्रसिद्ध ग्रंथों के विषय में ऐसे ही प्रतिकूल ही अनुमान करने लग जायें और वैधर्म्य का ही आश्रय कर लें तो बड़ा अनर्थ हो जाय। अब हम चौदहवीं पीढ़ी से एक सो सैंतालीसवीं पीढ़ी तक के नाम अपने तथा बूंदी राज्य के शोध किए हुए हमारे पाठकों के जानने के लिये यहां लिखते हैं। पुष्करजी (विजयपालजी) १४ असमंजसजी १५ प्रेमपूरजी १६ भानुराजजी १७ मानसिंहजी १८ हनुमानजी (धर्म्मपाल) १९ चित्रसेनजी २० शंभुजी २१ महासेनजी (चट्टोशजी) २२ सुरथजी २४ रुद्रदत्तजी (कर्णपालजी) २४ हेमरथजी (रामपालजी) २५ चित्रांगदजी २६ चंद्रसेनजी (चित्ररथजी) २७ वाल्मीकजी (वत्सराजजी) २८ धृष्टद्युम्नजी (वरुणजी) २९ उत्तमजी ३० सुनीकजी ३१ सुबाहुजी (मोहनजी) ३२ सुरथजी ३३ भरथजी (महासेनजी) ३४ सत्यकीजी (सात्यकजी और सात्विकजी) ३५ शत्रुजितजी (कमदेवजी) ३६ विक्रमजी ३७ सहदेवजी (इन को जीतकर कुरुवंशी राजा ने दिल्ली ले ली) ३८ वीरदेवजी (भीमसेनजी) ३९ वसुदेवजी ४० वासुदेवजी ४१ रणधीरजी ४२ शत्रुघ्नजी ४३ सुमेरुजी (शालिवाहनजी) ४४ शतवर्म्माजी ४५ सुवर्म्माजी ४६ दिव्यवर्म्माजी ४७ यौवनाश्वजी ४८ हरियश्वजी ४९ अजैपालजी (अजमेर बसानेवाले) ५० अठदमनजी ५१ अनंगराजजी ५२ भीमजी ५३ गोगाजी ५४ शुभकरणजी ५५ उदयकरणजी ५६ अजयकरणजी ५७ हरीकरणजी ५८ कीर्तीशजी ५९ बालकृष्णजी ६० हरिकृष्णजी

बीसल देव जी का वर्णन ॥

जग दुष्य बीसल नरिंद । बहु पापरत्त द्रव्यान अंध ॥ छं० ॥ २९२ ॥
क्रत अक्रित काम क्रितह सु कीन । जिन असुर घोर घनि द्रव्य लीन ॥
संमार थागि फुनि द्रव्य काज । उपजाइ मत्ति अजमेर राज ॥ छं० ॥२९३॥
कौडी सु मोल गज कियौ एक । लीयो न क्रितह फिरि सहर नेक ॥
कामंध अंध सुझ्झौ न काल । इक अचक जोर गिरि हुक्क माल ॥छं०॥२९४॥
चल्ल्यौ न राजनीतह प्रमान । आनीत बंधि न्रप थान थान ॥
सुझ्झौ न ध्रम्म चाल्यौ प्रमान । मुक्कौ निगम्म करि अगममान ॥छं०॥२९५॥
अवलोह छोह छंडिय सु कित्ति । मुक्कयौ ध्रम्म आध्रम्म जित्ति ॥
दरबार अतिथ दीसै न कोइ । अप्प सुह कित्ति संभरै लोइ ॥ छं० ॥ २९६ ॥
चौसट्ठि बरस बर राज कीन । पायौ न पुत्त फल सुष्य हीन ॥
बहु अवल चित्त चिंत्यौ सुकाल । पायौ न सुकत कछु करन साल ॥ छं० ॥ २९७ ॥
मति अंत सुमति सो होइ बीर । पावै सु जन्म जज्जर सरीर ॥
द्रवि मयौ सुमन बीसल नरिंद । उप्पनौ बीर छिति बीष्य कंद ॥छं०॥२९८॥
धन मदन सदन भरि लब्ध जन्म । निह परत उट्ठि क्रत्या कदम्म ॥

---

६१ रामकृष्णजी ६२ बलदेवजी ६३ हरदेवजी ६४ भीमजी ६५ सहदेवजी ६६ रामदेवजी ६७ वसुदेवजी ६८ श्यामदेवजी ६९ हरिदासजी ७० महीधरजी ७१ वामदेवजी ७२ श्रीधरजी ७३ गंगाधरजी ७४ महादेवजी ७५ सारंगधरजी ७६ मानसिंहजी ७७ चक्रधरजी ७८ शत्रुजितजी ७९ हलधरजी ८० महाधनुजी ८१ देवदत्तजी ८२ दामोदरजी ८३ काशीनाथजी ८४ लीलाधरजी ८५ धरणीधरजी ८६ रमेशजी ८७ भगवतदासजी ८८ कृष्णदासजी ८९ शिवदासजी ९० हरिपूर्णजी ९१ देवीदासजी ९२ कर्मचंद्रजी ९३ रामदासजी ९४ महानन्दजी ९५ विष्णुदासजी ९६ महारामजी ९७ रेवादासजी ९८ अमरसिंहजी ९९ गंगादासजी १०० मानसिंहजी १०१ विश्वंभरजी १०२ मथुरादासजी १०३ द्वारिकादासजी १०४ माधवजी १०५ सुदासजी १०६ वीरभद्रजी १०७ गोपालजी १०८ गोविन्ददासजी १०९ माणिक्यराजजी दूसरे (इन के दो पुत्र बड़े हनुमानजी और छोटे सुग्रीवजी जिन में से पाटवी हनुमानजी सांभर का राज्य अपनी प्रसन्नता से सुग्रीवजी को देकर आप पटना जीत वहां के राजा हुए कि जिन के वंश में इकतीस ३१ प्रकार के पूर्बिये चौहान हुए) ११० सुग्रीवजी (सांभर के राजा हुए) १११ अंगदजी ११२ केसरीजी ११३ जयंतजी ११४ जगदीशजी ११५ जयरामजी ११६ विजयरामजी ११७ कृष्णजी ११८ जीतयुद्धजी ११९ गोवर्द्धनजी १२० मोहनजी १२१ गिरिधरजी १२२ उदयरामजी (उद्यमजी) १२३ भारतजी १२४ अर्जुनजी १२५ शत्रुजीतजी १२६ सोमदत्तजी १२७ दुसंतजी १२८ भीमजी १२९ लक्ष्मणजी १३० परशुरामजी १३१ रघुरामजी (मारोठ के राजा से सात दिन लड़कर सांभर छोड़ बुरहानपुर अपने सुसरे के यहां भाग गए और वहीं मरे) १३२ अमरसिंहजी १३३ माणिक्यराजजी तीसरे (सांभर इन्हों ने पीछे विजय कर लिया १३४ मधुकर्मजी

ढुंढा दानव की उत्पत्ति और उसका अजमेर के बन में रहना ॥

कत्या कदम्म उर असुर रज्जि । धर ढुंढ नाम दानव उपज्जि ॥छं०॥२९९॥
जगि जोग नयर जुगमोय थाम । पुज्जै सु आय उग्गति विहान ॥
रथ च्यार चक्र उत्तंग बाह । अस्सि अस्सिय हथ्थ मुष अग्ग दाह ॥ छं० ॥३००॥
संभरिय धरा धरनीय ठाह । पुक्कारौ नरनि रे जाहु जाह ॥
सिर कोपि रीस धुनि दसन बज्जि । उभरे पग्ग जनु इन्द्र गज्जि ॥छं०॥३०१॥
प्राकार पाय धुकि धरनि धुज्जि । पुर नयरजुद्र उर चक्कि बज्जि ॥
कंपी सु भूमि नव षंड मान । जज्जरिय नाव ज्यौं बाय पान ॥ छं० ॥३०२॥
लग्गै न पलक द्रग देव चष्षि । डक्कै डकार द्रगपाल गष्षि ॥
दिष्षो सरूप दानव उतंग । बैराट रूप धरि धर्यौ अंग ॥ छं० ॥ ३०३ ॥
पंथीह मग्ग नर रुप्प भाजि । आघात सद्द दानव सु गाजि ॥
चित चिंत चिंत्त जुगिगनि प्रधान । पुज्जै सु आनिउग्गति विहान ॥छं०॥३०४॥
चहुआन रूप दानव प्रमान । भज्या सु पुच आबू सथान ॥
छं० ॥ ३० ॥ रू० ॥ १४० ॥

(दामोदरजी) १३५ रामचंद्रजी १३६ संग्रामसिंहजी १३७ शिवदत्तजी (श्यामदत्तजी) १३८ भोगादत्तजी १३९ शिवदत्तजी १४० रुद्रदत्तजी १४१ ईश्वरजी १४२ उमादत्तजी १४३ चतुरजी १४४ सोमेश्वरजी पहिले (इन के दो लड़के भरथजी १ और उदयजी २ उन में से भरथजी पाटवी के वंश में पृथ्वीराजजी हुए और उदयजी के वंश में बूंदी और कोटा आदि के हाड़ा चौहान हुए हैं) १४५ भरथजी १४६ युद्धिष्टजी ॥

इसके छन्द २८८ की पहिली तुक के पहिले पाद "सुत मोहसिंह वर मोह रूप ।" में कवि का गूढ़ आशय यह समझना आवश्यक है कि वह उसमें तीन नाम वर्णन करता है मोहसिंह (सिंहदेवजी) सिंहवर और मोहनरूप कि जिसके सिंघ शब्द को अर्थ करने के समय मोह शब्द के साथ और वर के साथ दोबार लगाने से पृथक दो नाम सिद्ध हो जाते हैं अतएव हमने सिंघ शब्द के नीचे दो लकीर करी हैं। और इसी तरह छन्द २९१ की पहिली तुक के दूसरे पाद में "प्रथम" शब्द से पृथ्वीराज नाम का निःसन्देह यहण षट् भाषा में व्युत्पन्न विद्वान कर सकते । तदनन्तर वीसलदेवजी के जो वृत्त चंद ने जैसे के तैसे उत्साहित होकर लिखे हैं उनको मनन करने से विद्वान पाठक सहज ही में यह अनुमान कर सकते हैं कि यद्यपि चंद उनके कुल का वंशपरंपरा से राज-कवि था पर वह निःसंदेह बड़ा ही स्पष्ट वक्ता और पक्षपातरहित पुरुष था, क्योंकि आज इस उन्नीसवीं शताब्दी में भी जब कि स्वतंत्रता और सभ्यता का सूर्य पूर्ण प्रकाशित हो रहा है तब भी कोई राज-कवि ऐसा स्पष्ट-वक्ता और पक्षपातरहित अपने यजमान की दुर्नीतियों को उसकी भावी संतानों के शिक्षार्थ निडर होकर प्रकाश करनेवाला प्राय: किसी की दृष्टि में न आया होगा । इस के साथ भाषाओं के शोध करनेवाले विद्वानों को चंद

दूहा ॥ सो दानव अजमेर बन । रहि तह दिन घन अंत ॥
सून्य दिसान न जीव कैा । थिर थावर द्रिगमंत ॥
छं० ॥ ३०६ ॥ रू० ॥ १४१ ॥

अरिल्ल ॥ संभरि सोर नरिंदह संभरि । पंथ प्रजा पसरै रन अंगर ॥
रम्य अरम्य करी सु धरन्निय । रहै मठ कोट अकोट करन्निय ॥
छं० ॥ ३०७ ॥ रू० ॥ १४२ ॥

सारंगदेवजी की राणी गैारीजी का अनलगर्भ सहित रणथंभ पधारना ॥

दूहा ॥ गैारां चलि रनथंभ गिरि । सारंग रह्यो राइ ॥
प्रजा पुरंदी मध्यिम धरि । ग्रभ्भ अनल्ल गैाराइ ॥
छं० ॥ ३०८ ॥ रू० ॥ १४३ ॥

अनल्ल ग्रभ्भ धरि गैारि सिसु । गय रनथंभ दिसान ॥
राजइव रावत पती । मातुल पष चहुवान ॥
॥ छं० ॥ ३०९ ॥ रू० ॥ १४४ ॥

का यह वाक्यखंड "ढक ग्रहक" भी ध्यान देकर समझने योग्य है कि "ढक" अथवा "ढक्क" जो हिन्दी भाषा में प्रयोग होता है वह अरबी अथवा फारसी नहीं है किन्तु संस्कृत ढक्क शब्द से है और "ग्रहक" शब्द स्वतः इस बात की स्पष्ट साखी देता है । इसी रूपक के छन्द ९९९ से ढुंढा राक्षस की उत्पत्ति चंद कवि वर्णन करता है ॥

१४१ पाठान्तर रहितह । रहनह । विमानन । जीवक्यो । द्रिग । मंत ॥

१४२ पाठान्तर-पसरी । अवन्निय । रहै ॥

१४३-१४४ पाठान्तर-सारंग । ग्रभ । गैाराय । शुभ । रिनथंभ । राजवइ । पति ॥

इन रूपकों के पढने के पहिले हमारे पाठकों को यह बात ध्यान में रखनी चाहिये कि बीसलदेवजी ने अपने लड़के सारंग देव जी को अपने हाथ से मार डाला था कि जिस के पीछे वे आप भी सांप के काटने से मर गये और अजमेर अर्थात् संभर का राज्य बिना राजा के रह गया और अजमेर के बन में ढुंढा नामक दानव रहने लगा किन्तु बीसलदेवजी के लड़के सारंगदेवजी की रानी गैारी के गर्भ था । रानी जी राज्य की यह दशा देखकर अपने पिता रणथंभ के राजा के यहां चली गईं और वहां सारंगदेवजी के अनल अर्थात् आना राजा उत्पन्न हुए । यह सब कथा आगे के रूपकों में जब आना राजा अपनी माता से अपने पिता का नाम और सब वृत्तान्त पूछेंगे तब कवि माता और पुत्र के संवाद में बीसलदेवजी की कथा सविस्तर वर्णन करेगा । इन रूपकों में अभी गैारी रानीजी का सगर्भा रणथंभ जाना ही कवि ने वर्णन किया है ॥

आना राजा का जन्म होना और उन का बालपन ॥

भुजंगी ॥ धरै गौर जन्मंम आनल्ल राजं । बसे देव गामं दुनो छच लाजं ॥
नवं वृत्त नित्तं नवं हृत्त सिष्षै । नरं तार तारं नवं ख्वत्त मिष्षै ॥ छं० ॥३१०॥
चरं संभरी बात पुच्छंत मित्तं । धरै ध्यान दिष्षै अजम्मेर चित्तं ॥
कला स्वन्व सिष्षिं मत्ता मल्लवोरं । गिनै मग्ग ओमं पढै मंच धोरं ॥छं०॥३११॥
दिनं सोद्द अव्वीद्द आषेट षिल्लै । ननं नेद्द निद्रा सुरं सिद्ध मिल्लै ॥
करं पाइकं विद्ध साइक्क नष्षै । भरं भै अभैनं सुयं सव्व रष्षै ॥ छं० ॥३१२॥
वधै काम कामं अलीहो न भष्षै । सुभै राजसं तामसं सत्त चष्पै ॥
रमै जम्म सेना ग्रहै जम्म भारी । सुई संभरी वात दिष्षै करारी॥छं०॥३१३॥
कहै काल कालं अकालंनि वंधै । इतं जोर मा वित्त सैां चित्त संधै ॥
दुअं बाह्द परचंड दुर्ग्ग सरूपं । इसो दिष्षियै राज आना अनूपं ॥
छं० ॥ ३१४ ॥ रू० ॥ १४५ ॥

कवित्त ॥ अति बल बंड प्रचंड । षिंड आषेटक षिल्लै ॥
हिरन रोज वाराह । बंधि बागुर वर मिल्लै ॥
वन परवत्त भिरना । निवान राइ* राजन संग हिंडै ॥
राग रंग भाषा* कव्वित्त । दिव्य बानी चित मंडै ॥
छय छष्षि देय संकै न मन । षग्ग मग्ग धुनी बहै ॥
चहुआन बंस अवतंस इम । रंग अनेक आना रहै ॥
छं० ॥ ३१५ ॥ रू० ॥ १४६ ॥

---

१४५ पाठान्तर—आनल । वृत । नितं । त्रत । भृत । बात । पुछंत । सेतं । चितं । स्वश । सिषिं । मिषं । महामल्ल । गिनी मंगि आमं । औ मं । अबीह । सिद्धं । पायकं । सारक । नंष्षै । भरंभे । अभैन सोई सव्व रष्षै । भरं भेय भैनं सोई सव्व रष्षै । भरं भेप भैनं सायं सव्व रष्षै । बधे । अली । होन । सत्तं । बचै । जम । ग्रहे । जम । सोई । सारे । सोइ । संभरि । तिवधै । जो । रमावित्त । सों । दुर्गा । दिषिये । अनूप ॥

इस रूपक से कवि ने आना राजा के जन्मादि की कथा वर्णन करनी प्रारंभ की है ॥

१४६ पाठान्तर—राइ । संग । हिंडे । कवित्तं । संषै । रंग । राइ * भाषा * विशेष हैं ॥

आना का बालापन व्यतीत होना और वीरत्व को प्राप्त हो माता से पूछना ॥

दूहा ॥ नन मंडी मधि अप्पनी । छंडी बालक बुद्धि ॥
रोस रम्यौ अरि अंग में । तब पुछि मातह सुद्धि ॥
छं० ॥ ३१६ ॥ रू० ॥ १४७ ॥

आना की माता का उसको सर तर और अष्षर विद्या का उपदेश करना ॥

गाथा ॥ सर तर अष्षर विद्या । सा विद्या अन्य सारसो नथ्थी ॥
सो आना अन भंगं । मंचनं प्रिय ये सष्षि ॥
छं० ॥ ३१७ ॥ रू० ॥ १४८ ॥

जा सिसु वीरं पतनी । बीरं होइ बीर भज्जायं ॥
नवं तीन वत्त तरंगं । सा माता वीरया पुत्तं ॥
छं० ॥ ३१८ ॥ रू० ॥ १४९ ॥

आना का माता से पूछना कि मैं किस वंश में उत्पन्न हुआ हूं ॥

दूहा ॥ बीर पुत्त मातुल सुमति । गवरि सपन्नो जाइ ॥
को किहि बंसहि ऊपज्यौ । तूं मुझ जंपहि माइ ॥
छं० ॥ ३१९ ॥ रू० ॥ १५० ॥

गौरी माता का कहना कि यह बात न पूछो उसके कहते मुझे भय और करुणा होती है ॥

दूहा ॥ गौरि मात कहै पुच सौं । पुत्त न पुव्वकछु बत्त ॥
जिहि भय जल लोचन भरहि । बर पूछन पर तत्त ॥
छं० ॥ ३२० ॥ रू० ॥ १५१ ॥

---

१४७ पाठान्तर—मत । मही । सुधि । पुछिय ।

१४८—१४९ पाठान्तर—सरकर । मंचनं । अनभंग । साखे ॥ १४९ ॥ वीर । भजाइं ॥ नवती नवत तरंगं । नव तीन वत्त तरंगं । नवती नव तत रंगं ॥ यह तीन प्रकार के पदच्छेद कोई कोई करते हैं ॥

१५० पाठान्तर—पुत्ति । संपनो । जाइ । जाइं । किहिं । ऊपनो । मांइ । माइ ॥

१५१ पाठान्तर—गौरी । सो । पुत । कुछु । जिन । भरहिं । पूछत । बरतत ।

आना का माता से अपने वंश की कथा हठ करके पूछना ॥

पद्धरी ॥ उचर्‍यौ मात सों पुच्छ सच्चि । जानों न वंस मो पिता वच्चि ॥
मो तात नाम बंदो न लेहि । नन करों श्राद्ध कबहू न गेह ॥छं०॥३२१॥
अप्पौं न अंब अंजुलिय तात । उप्पनौ वेद हूं किन सु गात ॥
के नाम लेय मातुलह वंस । पित बैर लेउं बर बीर हंस ॥छं०॥३२२॥
छंडौं कि प्रान मुक्कूं व देह । संसार भार अप्पौं कि छेह ॥
आना नरिंद यह कहिय बात । सुनि श्रवण कप्प धर परिय मात ॥
छं० ॥ ३२३ ॥ रू० ॥ १५२ ॥

आना की माता का उसे कथा प्रगट न करने को कहना और ढँक करके संक्षेप में कहना ॥

दूहा ॥ पुत्र प्रगट्ट न कीजिये । मो तिय इय अंदेह ॥
आदि हुते दानव प्रबल । धर धुंमी असुरेह ॥
छं० ॥ ३२४ ॥ रू० ॥ १५३ ॥

भिरन कहत दानव सरिस । मानव मनुषी देह ॥
मो गंधारि निहारि मुष । पुच्छ बिलासनि गेह ॥
छं० ॥ ३२५ ॥ रू० ॥ १५४ ॥

अरिल्ल ॥ इह मातुल वंस प्रधानह मान । भये इम पुत्त सु मानिक थान ॥
विचारि कह्यौ तहां संभरि ग्राम । बस्यौ अजमेर सुमंत विस्राम ॥
छं० ॥ ३२६ ॥ रू० ॥ १५५ ॥

---

१५२ पाठान्तर–उचर्‍यो । उधर्‍यो । कच्छ । जानो । मुझ । वच्छ । लेहि । कर्‍यो । सु । वेदहु । किनसु । कै । लेइ । लेऊं । लेऊ । छंडों । कै प्रानं । मुक्कौं । व चछेह । आनां । इह । इम । कहीय । चप । धरिय ॥

१५३–५५ पाठन्तर–पुत्र । पुत्त । प्रगट । कीजीए । त्रिय । अंदेस । हुंते । असुरेस ॥ १५३ ॥ बिलासन । विलास । न ॥१५४॥ प्रधांनह । मांन । मांनिक । थांन । गाम । सुमंत । विश्रांम ॥१५५॥

अन्य उपलक्ष्यों के द्वारा आना का संभरि की पूर्व कथा सँभारना॥

कवित्त॥ धर मुक्किनह्नि राय। मान लभ्यौ न कित्त रिस॥
धर मक्किय सुत्र पंड। सुष्य मुक्कौ सु दुष्य बसि॥
धर मुक्किय श्रीराम। सिया षोइय बन गोइय॥
धर मुक्की नल राय॥ सिरहि कालंकित ज्योइय॥
धर मुक्कि बीर बर चंद न्टप। नोव घरह घट जल भयौ॥
ढंकन सु इला न्टप जानियै। न्टप ढंकन इलचर करौ॥
छं०॥ ३२७॥ रू०॥१५६॥

न्टप ढंकन इल होइ। इलह ढंकन सु राज भर॥
घह ढंकन वर देव। देव ढंकन वर अंबर॥
अपजस ढंकन कित्ति। कित्ति ढंकन जस धारिय॥
औगुन ढंकन विद्य। सुगुन विद्या उच्चारिय॥
ढंकनह काल वर ध्रंमको। ध्रंम काल ढंकन करिय॥
मावत्ति गुरू ढंकै जु सिसु। सिसु ढंकन पित उच्चरिय॥
छं०॥ ३२८॥ रू०॥१५७॥

अरिल्ल॥ इहि विधि आनल बत्त उचारिय। पुव्व कथा संभरि संभारिय॥
किहि विधि राषस ढुंढ उपन्ना। सारंगदे कैसे जुद्ध किन्ना॥
छं०॥ ३२९॥ रू०॥ १५८॥

आना का माता से पूछना कि नर अर्थात् वीसलदेव दानव कैसे हुआ॥

दूहा॥ एक बत्त तुम सम कहौं। मात कथा समझाइ॥
नर किहि विधि दानव भयौ। इह अचिरज मो आइ॥
छं०॥ ३३०॥ रू०॥ १५९॥

१५६–१५७ पाठान्तर–इल। राइ। लिन्यौ। रिस। मुकीय श्री। सुष। दुष। मुकीय। सीया। षोईय। गोईय। मुक्किय। सिरं। सिरह। कालंक। तज्यौ। जोइय। मुंकि। घरहिं। भयौ। इल। भूमि। इल घर। कर्यौ। षय। जस। किति। किर्ति। धारीय। औगन। सगुन। उचारीय। कों। मा। वित्त॥ १५७॥ बत। उचारीय। किहिं। उपन्नौ। कीनौ॥

१५८–१५९ पाठान्तर–बत। सों। समझाय। अचरिज॥ १५९॥ जो। सो। हूं। जानियो। नव निहचै नि संदेह॥

दूहा ॥ जो मोसों सांच न कहौ। तौ हौं छंडों देह ॥
इह अप्पनि जिय जांनि जहु। नव निहचै निज ओह ॥
छं० ॥ २२१ ॥ रू० ॥ १९० ॥

गाहा ॥ कथि मा कांनन कथयं। जो मो ऊपर पुत्र हितायं ॥
जीवन दृथा परंनो। आना नह आंन उपायं ॥
छं० ॥ २२२ ॥ रू० ॥ १९१ ॥

आना की मा का कहना कि दानव की कथा न सुन चित्त भंग होगा ॥

दूहा ॥ पुत्र नि सुनि दानव कथा। श्रवन सुनत होइ भंग ॥
इह अरिष्ट अंग उप्पजै। पित परिपिता प्रसंग ॥
छं० ॥ २२३ ॥ रू० ॥ १९२ ॥

आना का उत्तर दे कहना कि ऐसे मुझे क्यों डराती है ॥

मुरिल्ल ॥ ऐसी कहि मो कहुं डरपावहु। मेरै कछु इह दाय न आवहु ॥
रामाइन भारथ की बाता। सो हौं सबै सुनत हौं माता ॥
छं० ॥ २२४ ॥ रू० ॥ १९३ ॥

आना की मा का कहना कि जिस से कार्य सिद्ध न हो उसका कहना व्यर्थ है ॥

कवित्त ॥ जिहि पुर गवन न होइ। ताहि कोइ पंथ न बुझ्झै ॥
जिहां दिष्ट नह भिदै। तहां कैसैं करि सुझ्झै ॥
जो श्रवन न नह सुनी। सु* कहौ कैसी परि कहियै ॥
जाकै देह न होइ। ताहि कैसै कै गहियै ॥
इह कथा असम अदभूत अति। हठ निग्रह सुत जिन करै ॥
सुनत ही श्रवन दुष उप्पजै। सिद्ध न कोइ करिज सरै।
छं० ॥ २२५ ॥ रू० ॥ १९४ ॥

---

१९१ पाठान्तर—१६४० में ॥ कवि कथाश्रत कथियं। जो उपर पुत हितायं ॥

१९२ पाठान्तर—पुत्रहि। होय। भंग। उप्पज्यौ। उपज्यौ ॥

१९३ पाठान्तर—कूं। क्यूं। पावहि। मेरे। कछूरं। आवहि। बातं। हूं। हूं। हों। हो मातं ॥

१९४ पाठान्तर—गमन। तासु। को। बूझै। जहां। कैसें। सूझै। श्रवनहु। नहु। न। कहु। शरीर। कैसें। गहियै। उपजै। कोय ॥ सु * विशेष है ॥

आना का प्रत्युत्तर देना कि आगे कितने नर, ऋषि और राइ दानव हुए हैं कथा सुनने से क्या होता है ॥

कवित्त ॥ मात सुन हु मुझ बात । कथा सुनतें कहा लग्गै ॥
केते नर रिष राइ । भए सुर दानव अग्गै ॥
तिन की कथा प्रसंग । सुनहि सब को समुझावहि ॥
तिन कौ जुद्ध विरुद्ध । लोक वेदन में गावहि ॥
इह जानि मात श्रवननि सुनौं । कहतैं कछु लग्गै नहै ॥
जेजे निर्मान विधि निम्मए । तेते निहचै निब्बहै ॥

छं० ॥ ३३६ ॥ रू० ॥ १६५ ॥

आना की माता का बीसलदेवजी की सविस्तार कथा कहना ॥

बीसलदेवजी का जन्म होना ॥

अरिल ॥ पुत्त सुनहु इह बत्त पुरानी । कहत्तै होइ गद गद बानी ॥
अनल कुंड आबू रिषि कीनौ । राज उपाइ राज सिर दीनौ ॥

छं० ॥ ३३७ ॥ रू० ॥ १६६ ॥

दूहा ॥ ताके कुल तें उप्पनौ । महाराज ध्रंमाधि ॥
ताके बीसल देव नृप । सबै राज आराधि ॥

छं० ॥ ३३८ ॥ रू० ॥ १६७ ॥

बीसल देवजी का पाट बैठना ॥

कवित्त ॥ आठ सैं रु इक ईस । बैठि बीसल्ल सु पाट भ्रप ॥
सुक्रवार प्रतिपदा । मास वैसाष सेत पष ॥

---

१६५ पाठान्तर—बात । सुनतैं । सुनि । कोर । वेदनि । जानि । कहेतें । कहै । तें । जे जे । नमान । नमए । निंमए । निरवहे ॥

१६६ पाठान्तर—वत । पुरानी । गहेतें । कहे । ते । बांनी । रिष ॥ १६६ तें । ऊपनो । धम्माधि । ताके । नप ॥

१६७ पाठान्तर—बसल । पाठ । वर । प्रतिपादा । प्रतिपद्दो । धारै । उधारै । उद्धरै । अंगवर । धम । करै ॥

१६८ हमारे पाठकों को भले प्रकार ज्ञात है कि कुछ दिनों से कोई कोई विद्वान इस ग्रन्थ को आदि से अंत पर्यंत जाली बना हुआ अनुमान करते हैं और जितना तर्क वे अपने अनुमान को सिद्ध करने को लाते हैं उनमें सब से बड़ा तर्क कि जिस पर दूसरे तर्कों का भी सर्वतोभा

आये बंस छत्तीस। विप्र बंदी जन सारे ॥
दियौ छत्र सिर तिलक। वेद मंत्रंच उच्चारे ॥

आधार है वह यह है कि इस ग्रन्थ में लिखे हुए संवत् संप्रति शोध हुए और मुसलमानी तवारीखों में लिखे हुए संवतों से नहीं मिलते। अतएव इस संवत् विषयक झगड़े का प्रारंभ इस रूपक १६८ और छन्द ३३९ से समझना चाहिये, क्योंकि रासो के जितने छन्दों में संवत् मिती कहे गए हैं उनमें से प्रथम छन्द यही है। इससे हम को विदित होता है कि संवत् ८२१ वैशाख सुदी १ शुक्रवार को बीसलदेवजी राज-गद्दी पर विराजे, किन्तु इसी आदि पर्व में इस रूपक से थोड़े ही और आगे बढ़कर हम को बीसलदेवजी के पट्टन विजय करने के संवत् सूचन करनेवाले नीचे लिखे रूपक मिलेंगे—

(संवत् १८५९ की पुस्तक में)

दोहा। सो संवत् नव सत्त अट्ठ। बरस तीस छह अग्ग ॥
पुर पट्टन बीसल नृपति। राजत सयलंह जग्ग ॥

कवित्त ॥ संवत् नव सत अट्ठ। बरस दस * तीय सत्त अग्ग ॥
पुर प्रतिष्ठ बीसल नरिंद। राज्यंब सयल जग्ग ॥

(संवत् १७७० की पुस्तक में)

दोहा ॥ सो संवत् नव सत्त अध। बरस तीस छह अग्गि ॥
पुर पट्टने बीसल नृपति। राजत सयलंह जग्ग ॥

कवित्त ॥ सर संवत् नव सत्त। बरस दस * पंच सत्त अग्ग ॥
पुर प्रतिष्ठ बीसाल। नृपति राजंत समल जग ॥

(गुजरात देश की पुस्तक में)

दोहा ॥ सो संवत् नव सत अधिक। वर्ष तीस छह अग्ग ॥
पुर प्रतिष्ठ विशल नृपति। राजत्त सकले जग्ग।

जितनी पुस्तकें हम इस टिप्पण के लिखते समय देख सके उन सब में ऊपर लिखे पाठ पाए अर्थात् किसी में हमारी सं० १८५९ की पुस्तक का पाठ मिलता है तो किसी में संवत् १७७० वाली का। शोक की बात है कि हमारी १६३१ तथा १६३२ वाली पुस्तकमें तो यह पर्व्व ही नहीं है और संवत् १६४७ वाली में वह पृष्ठ नहीं है कि जिसमें इन छन्दों का होना सम्भव है। यह तो जानने में ही है कि पिछले रूपक १४० में चंद कह आया है कि 'चौसट्ठि बरस बर राज कीन" चौसठ

* हिन्दी भाषा के ऐसे काव्यों में चंद जैसे महाकवियों की गूढ़ बातों को खोलने की कुंजियों में से हम एक का यहां प्रकाश करते हैं कि दश दस और दशि दसि शब्दों का अर्थ, जहां वे कुछ संख्या प्रकाश करने को प्रयुक्त हुए हों वहां सूक्ष्मता रखते हैं, अर्थात् दश अथवा दस = १० का वाचक और दशि अथवा दसि = शून्य० अर्थात् केवल दहाई का वाचक होता है और जहां लेखकके दोष से इन शब्दों के लिखने में गड़बड़ हो जाती है वहां संख्या में भी गड़बड़ पड़ जाती है—इस के उदाहरण इस महाकाव्य में यहां से लेकर अनेक स्थलों में आवेंगे॥

आनंद अग्गवर इन्द्र सम । अंम नंद जस उद्धरै ॥
अजमेर नयर अरि जेर करि । विमल राज बीसल करै ॥
छं० ॥ ३३९ ॥ रू० ॥ १६८ ॥

बरस बीसलदेवजी ने राज्य किया । अब विद्वानों के विचार देखने जैसी बात है कि इस रूपक के संवत् को इसी प्रकार के दूसरे रूपकों में कहे संवतों से मिलाने से एक सौ वर्ष का फरक पड़ता है और जो ९१ वर्ष का एकसा अन्तर रासो में लिखे सब संवतों को संप्रति शोध से मिलाने और जो परवाने हमने पृथ्वीराजजी के शोध किये हैं उनसे पड़ता है वह इस से सिवाय है । जगत का एक यह सर्व साधारण नियम है और उसका भार सब पक्षपातरहित विद्वानों पर है कि प्रत्येक समय के विद्यमान बड़े बड़े विद्वान सब परम पद-प्राप्त ग्रन्थकर्त्ताओं के ऊपर जो कोई व्यर्थ आक्षेप करे उस को खण्डन कर के छिन्न भिन्न कर दें, क्योंकि यदि यह भार विद्वानों पर स्वतः सिद्ध न रहा होता तो सब कीट क्रिकिट सब अमूल्य ग्रन्थों को काट कर खा जांय और बड़े बड़े कवियों के नामों पर पोता फेर दें । अतएव ऐसी ज़िम्मेदारी को शुद्ध अन्तःकरण से समझने-वाला कोई विद्वान क्या यह कहेगा कि भिन्न भिन्न पुस्तकों में यह भिन्न भिन्न अशुद्ध पाठ चन्द कवि जैसा महाकवि बीसलदेवजी की तरह दानव होकर लिख गया है ? क्या इन भूलों का अपराधी चन्द है ? नहीं—नहीं—कभी नहीं । हम क्या एक छोटा सा बालक भी कह सकता है कि यह सब भूलें अयोग्य लेखक और कवियों ने जान कर अथवा अनजाने की हैं । अब हमारी सम्मति इस विषय में चन्द की शैली और ख्यातिओं की पुस्तकों में लिखे सं० ९३१ को देखते हुए ऐसी है कि यहां ऐसा पाठ था कि "नौ सै अरु इकतीव" और इस हमारे अनुमान की पट्टन—विजय करने के संवत्वाले रूपक पुष्टि करते हैं । देखो :—

बीसलदेवजी का पाट बैठना	...	...	...	...	९३१ वर्ष
उनका राज्य करना जोड़ो	...	...	...	...	६४ वर्ष

रासो के संवतों और विक्रम में जो सर्वत्र एकसा अन्तर है वह जोड़ो—९१ वर्ष
विक्रमी संवत् १०८६

रासो के रूपकों के जो मूल पाठ अशुद्ध हैं उनको अभी हम जैसे लिखित पुस्तकों में हैं वैसे ही रक्खेंगे, क्योंकि जब तक सब विद्वान एक मत न हो जांय तब तक उनको हम पुरातत्त्व विद्या के नियमों के अनुसार बदल नहीं सकते हैं । इस के अतिरिक्त हम पुरातत्त्ववेत्ताओं को चेत कराते हैं कि फोरोज़शाह की लाट पर की प्रशस्तियों को अब एक बार प्रथम बीसलदेवजी के और पृथ्वीराजजी के चरित्रों को भले प्रकार ग्रन्थान्तरों में पढ़कर उन आशयोंके सहारे से फिर विचारें तो उन को मालूम हो सकेगा कि पहिली प्रशस्ति जिसमें का नीचे लिखा अनुवाद है उस को बीसलदेवजी की नहीं समझना चाहिये किन्तु पृथ्वीराजजी की समझना उचित है और केवल यही विशेष समझना होगा कि बीसलदेवजी के उपलक्ष का सम्बन्ध उस में इतना ही है कि जिस मिती को यह प्रशस्ति निर्माण हुई है वह मिती बीसलदेवजी के पाट बैठने की है अर्थात् वैशाख सुदी १ और पृथ्वीराजजी को बीसलदेवजी का अवतार होना लोग मानते हैं अतएव इन प्रशस्तियों के लिखनेवालों ने अपने इस गूढ़ भाव को प्रकाश करने में उन दोनों का सादृश्य दिखाया

बीसलदेवजी का अंत समय पट्टन विजय करने को छत्र धारण करना ॥

दूहा ॥ बर पट्टन अट्टन अमित । समित बेद् फुनि राज ॥
समय अंत बीसल सिरह । धर्यौ छत्र सम साज ॥
छं० ॥ ३४० ॥ रू० ॥ १६९ ॥

पद्धरी ॥ सिर धारि छत्र बीसल नरिंद । आसनह सिंघ बर बरन इंद ॥
भूदेव मंडि बेदी विसाल । रस पंच मधि मेलैं ति काल ॥छं०॥३४१॥
बर बढी ज्वाल खंडन विभाग । जमि रहे जमल पुट पलनि लाग ॥
मष समुष दिष्य परसपर बैन । तिनपुटह बीच तन धूम अैन ॥छं०॥३४२॥
जानंत बेद् मुख रहै मौंन । सुभ समय असुभ उच्चार कौंन ॥
संपूर बेद् किन्नो भिषेक । द्विज दूरय बंदि आसिष अनेक ॥छं०॥३४३॥
विधि कीन राज दिय सु लप मान । जै जया सबद बीसल सुआल ॥
छं० ॥ ३४४ ॥ रू० ॥ १७० ॥

है कि जिस से निर्णय करने में यह झगड़ा पड़ जाता है कि अमुक प्रशस्ति पृथ्वीराजजी की है अथवा बीसलदेव जी की। हमारे पास इन प्रशस्तियों संबन्धी सब सत्र प्रस्तुत नहीं है और न इतना अवकाश है, नहीं तो हम ही परिश्रम करके कुछ विशेष सारांश प्रकाश करते। इस के अतिरिक्त जो सं० १२३० जैसी प्रशस्तियों को बीसलदेवजी की मानें तो फिर पृथ्वीराजजी को तेरहवें शतक में मानना पड़ेगा; उस दशा में भी पृथ्वीराजजी चितोड़ की और आबू की प्रशस्तियों के अनुसार रावल समरसीजी के समकालीन होंगे और मुसलमानी तवारिखों के सन झूठे ठहर कर संप्रति प्रसूत हुए तर्क के अनुसार मुसलमानी तारीख जाली सिद्ध होंगी ॥

OM

In the year 1230, on the first day of the bright half of the month Vaishakh (a monument) of the Fortunate—Visal—Deva—son—of—the—Fortunate—Amilla-Deva-King—of—Sacumbhari,

Popular Ed of the Asiatic Researches, page 315.

पाठान्तर—पाठ । बर । बर । प्रतिपादा । प्रतीपट्टो । छत्तीस । धारै । दीयौ । उच्चारै । नैर ।

१६९ पाठान्तर—पुनि । समैं । सरह । धर्यो । साज ॥

१७० पाठान्तर—मंहि । छत्रधारि । बंबरन । इंद्र । मधि । मेले । मले । मेलिय । बढिय । बढी । विधि । बेन । पुट । हवी । चतन । मौंन । रहे । मले मोंन । शुभ । अशुभ । कोंन । कीनो । बंध । बंधि । सन । शद्ब । सुवाल ॥

बीसलदेवजी पाट बैठकर कैसे राज करते थे ॥

दूहा ॥ समय पाट बीसल न्रपति । विकल दुच्छ घन भार ॥
　　षंडन चिय दंडन करै । बिन अपराध अतार ॥
छं० ॥ ३४५ ॥ रू० ॥ १७१ ॥

कवित्त ॥ इसौ बीर बीसल्ल । नरिंद अजमेर नैर पर ॥
　　रचि रचना पुर दिव्य । मनों बिसकम्म कीय कर ॥
　　अधम ध्रंम उप्परैं । क्रंम दुक्कित मन इच्छै ॥
　　चक्क द्रव्य संग्रहै । बिना चक्क लोभन बंछै ॥
　　चव बरन सरन चहुआन कै । बंस छतिस सेवंत ची ॥
　　बीसल्ल नरिंद ध्रंमाधिधरि । देव कला देवत्त ची ॥
छं० ॥ ३४६ ॥ रू० ॥ १७२ ॥

बीसलदेवजी का अपने पुत्र सारंगदेवजी को उपदेश करके सांभर भेजना कि जो अपनी धा-बैन के पति के विनाश से दुखित हो गए थे ॥

कवित्त ॥ पट रागिनि परिहार । ग्रभ्भ सारंग उप्पन्नौ ॥
　　पुच होत मह मृत्य । बाल बानिक कौं दिन्नौ ॥

---

१७१ यह रूपक संवत् १७७० और १६४७ की पुस्तकों में तो नहीं है किन्तु सं० १८५९ तथा सोसाइटी की छापी हुई पुस्तकों में है। जब तक कि इन से भी बहुत पुरानी पुस्तकों में यह न मिले तब तक उसको रूपक संज्ञा हम नहीं दे सकते। यहां यह भी समझ लेने योग्य बात है कि १६९ रूपक से १७० रूपक तक बीसलदेवजी को पाटन की चढ़ाई के लिये छत्र धारण करने का वर्णन है। प्राचीन समय में जब कि राजा किसी पर चढ़ाई करते छत्र धारण विधि का वैदिक कर्म करके प्रस्थान करते थे। पाठकों को यह बीसलदेवजी की कथा बहुत सावधानता से पढ़नी चाहिये क्योंकि इस के बीच बीच में उन के लड़के सारंगदेवजी आदि के भी वृत्त आते जाते हैं परन्तु उन सब को कवि ने बीसलदेवजी के वृत्तों में मिलाकर वर्णन किया है ॥

पाठान्तर—रह्न ।

१७२ पाठान्तर—बीसल । नेर । मनौं । विश्वकम्म । विसकम्म । बिसकर्म्म । करि । अधंम । ध्रम । ऊपरै । क्रम । दुक्कित । नन । इच्छै । बिनां । चक्क । लोभ । न । चछैाव । चहुआंन । छतीस । ध्रमाधिधार । देव । ताही ॥

१७३ पाठान्तर—पाट । रानि । ग्रभ । उप्पनै । भय । मृत्ति । कों । दीनौं । बनिक । दिनी । सम । पै । रूक्क । लगें । कीयै । बीना । हुवे । गये । बिनस्स्यौ ।

ता वानिक्क नंदिनिय। नाम गौरी सारंग सन * ॥
इक्क थाल पय पान। इक्क सिज्या इक आसन ॥
नव बरस लग्गिम कन्या रही। व्याह राज बीसल कियौ ॥
बीवाह कुक्के कर बन गयो। तहां सिंघ बर विनस्यौ ॥
छं० ॥ ३४७ ॥ रू० ॥ १७३ ॥

दूहा ॥ सिंघ विनास्यौ वनिक्क सुत। कन्या किया अंदोह ॥
हत्त धर्यो ब्रह्मचर्य कौ। तप पहुकर तजि मोह ॥
छं० ॥ ३४८ ॥ रू० ॥ १७४ ॥

पद्धरी ॥ अति दुच्चित भयौ सारंग देव। नित प्रत्ति करै अरहंत सेव ॥
बुध भ्रम्म लियौ बंधे न तेग †। सुनि श्रवन राज मन भौ उदेग ॥छं०॥३४९॥
बुल्लाइ कुंअर सनमान कीन। किहि काज तुम्म इह भ्रम्म लीन ॥
तुम छंडि सरम क्रम कहौ बत्त। बांनिक्क पुत्र हन तैं दुचित्त ॥छं०॥३५०॥
इह नष्ट ग्यांन सुनियै न कान। पुरषातन भज्जै किति थान ॥
तुम राज वंस राजनह संग। मृगया सर षेलौ वन दुरंग ॥छं०॥३५१॥
परमोध तजो बोधक्क पुरान। रामाइन सुन भारथ निदान ॥
अभिमान दान रिन सरन भ्रम्म। चार्यौ प्रकार सुनि राज क्रम्म ॥छं०॥३५२॥
परमोध मानि राजन कुमार। तत काल मंगि बंधे हथ्यार ॥
भय प्रसन राज कीनौ पसाव। संभरि रजधानी करहु जाव ॥ छं० ॥ ३५३ ॥
गजराज पाट दै वर उतंग। सिंघासन दीनौ जटित नंग ॥
तुम जाहु कुंअर संभरिय थान। किरपाल करिय कायथ प्रधान ॥छं०॥३५४॥
प्रोहित मुकंद ‡ सारंग सुजान। साषीर धनी नरसिंघ भान ॥
धंधार भार बघ्घल बलोच। दिय बहुत हसम कीयौ न सोच ॥छं०॥३५५॥

* यह पाठ हमने सं० १६४० तथा १७७० की पुस्तकों से रक्खा है। इधर की सब पुस्तकों में सुत पाठ है। सतोस्त्रियपुत्राने तथा चि० परवाह्नते ॥ अथवा सं० सून वा सूनु का अपभ्रंश है।

१७४ पाठान्तर—कन्या। कीयो। हुत धर्यौ। पुहकर ॥

† हिं० तेग from Sk. (तैग्म्य (तिज to assail, to seek, to injure, to attempt, to kill) or तिग्म = sharp as a weapon) इसी तरह हिं० तेज is not from the A. Tayz, or P. Tez. but from the Sk. तेज m. Sharpness, pungency, sharpness of a weapon brilliancy, spirit.

‡ यह नागर जाति का ब्राह्मण था ॥

१७५ पाठान्तर—प्रति। ध्रम। कीयो। बंधे। स्रवन। भय। बुलाय। कुवर। तुम। ध्रम। धर्म। हुत। बानिक। तें। दुचित्त। ग्यांन। सुनिये। सुनीये। कांन। भजै। किति।

अनेक जाति उमराव सथ्थ । हैं गै नर बाहन सुतर हथ्थ ॥
तिहि बार धाय बानिक बुलाय । जिन जाहु कुँअर की सथ्थ काय ॥छं०॥३५६॥
तुम कियौ पुत्र सौं मेक मुंड । षिझि वैन कह्यौ कहा देहु दंड ॥
अजमेर मेल्हि संभरि दिसान । जो जाहु नध्ध षंडौ परान ॥छं०॥३५७॥
इतनी कथ्थि नृप चल्यौ सथ्थ । रथ च्यार भरे तिन बार अथ्थ ॥
जोजनह एक कीनौ मिलान । अनेक भष्य तहां षान पान ॥छं०॥३५८॥
भय प्रात प्रसन पग लग्गि पुत्त । चलि सीष मंगि संभरि पहुत्त ॥
सर जाय पहुच्चिय संभ राय । मन बच्च सुद्ध करि क्रंम नाय ॥छं०॥३५९॥
दस महिष भंजि तहां बलि सु दीन । जज होम धोम सुर प्रसन कीन ॥
कीनौ प्रवेस सुर महिम मोलि । तोरन कलस बंधि राज पौलि ॥
छं० ॥ ३६० ॥ रू० ॥ १७५ ॥

कवित्त ॥ किय प्रवेश सारंग । देव संभरिय थान थिर ॥
आयेह वैस्य षिषिय । अनेक पग लग्गि नम्मि नर ॥
तव कायथ किरपाल । सवन कौं आग्या दीनी ॥
सस्त्र वस्त्र हत चित्त । देय दिल्लासा कीनी ॥
जइवनि गौरि आइय जवहि । पाइ लगी परमार कै ॥
तव सगुन भए सगुनी कह्यौ । कुँअर होइ कुमार कै ॥
छं० ॥ ३६१ ॥ रू० ॥ १७६ ॥

दूहा ॥ देवराज रावत सुता । देवत्तनि जहौंन ॥
गौरि नाम सारंग वर । मनरति म्रूरति जौन ॥
छं० ॥ ३६२ ॥ रू० ॥ १७७ ॥

षोलो । सुनहु । रिषा । धम । चाढ्यो क्रम । कूंआर । बंधे । हथ्यार । हुव । प्रसव । रजधान। सभरिय काह जब । हैं । कुमर । थांन । कतीय । प्रधांन । सारंग । चुहांन । चेहान । धनीय । भांन । दिये । हसंम । कियौ । बांनिक । बुलाई । सथ सों । मूठ । धन । कह्यो । दिसन । खरांन । कथ । सथ । मध्य । सथि । लोजन । अरक । लगि । पहुंत । बध । नाह । भंजि । बांली । प्रसव । तोरंन कलस बधेलि पील ॥

१७६ पाठान्तर-थांन । आय । आइ । षिचि । को । आया । ससत्र । वस्त्र । चित्त । दिलासा । किनी । जइवनि । पाय । कुंअर । कुंमार ॥

१७७ पाठान्तर-देवसनि । जहौन । मनो । रनि । मनोरति ॥

बीसलदेवजी का मृगया से बहुरना, एक तालाब बनाने की आज्ञा देना और दरबार करना ॥

दूहा ॥ तब बाहुरि बीसल नृपति । मृगया षेलत बन्न ॥
देषि थान सर*उद्धरन । मतौ उपायौ मन्न ॥ छं० ॥ ३६३ ॥ रू० ॥ १७८ ॥

पद्धरी ॥ तब देखि नरिन्द अनूप ठाम । निर्झर गिरिन्द बन अभिराम ॥
बुल्लाय लिए मंत्री प्रधान । सर* रचौ इत्थां पहुकर समान ॥छं०॥३६४॥
फुरमाय † काम अप आय गेह । आनंद अंग उपज्यौ अछेह ॥
बैठो सिंघासन भ्रम्म नंद । बीसल नरिन्द नरलोक इंद ॥ छं० ३६५ ॥
सिर छत्त पास दुय चमर ढार । अति रूप जानि अस्विनि कुमार ॥
आईय सु कुल्लि छत्तीस नाम । पावासर तोंवर गौर राम ॥छं०॥३६६॥
हजूर लए राजन बुलाइ । तंदोलि दियो सनमुष्ष चाइ ॥
पढि बंदि छंद बोले विरद्द । मुसकाय सीस नायौ नरिन्द ॥छं०॥३६७॥
सब सभा पूरि जैसें नछित्त । चहुआन बीच जनु चंद रत्त ॥
सनमान करे सब दइय सीष । फिर बंदी जन दीनी असीष ॥ छं० ॥३६८॥
निसि गई पंच पल एक जाम । राजन्न महल्ल ‡ प्रावेस ताम ॥
करपूर अगर मृगमद सु वास । सौंधे छिरक्कि उत्तिम अवास ॥
छं० ॥ ३६९ ॥ रू० ॥ १७९ ॥

---

* यह बीसल का तालाब अब तक अजमेर के पास विद्यमान है । उसके किनारे पर जहांगीर पादशाह ने एक महल बनाया था जिस में उसने इंगिलस्तान के पादशाह जेम्स पहिले के एलची से मुलाक़ात की थी । इस टिप्पण को हमने इस तालाब के किनारे पर खड़े होकर लिखा है । यदि कोई पुरातत्त्ववेत्ता इस तड़ाग की वर्त्तमान दशा अपनी आंख से देखे तो उसको बड़ा शोक और आश्चर्य होगा कि अंगरेज़ सरकार के राज्य में ऐसे प्राचीन स्थलों का जीर्णोद्धार राज-कोश के द्रव्य से होता है परंतु रेलवाले अपनी रेल इस पर दौड़ा दौड़ा उस को नष्ट भ्रष्ट किए डालते हैं कि पांच वर्ष पीछे वह समूल नष्ट हो जायगा । हमारी सम्मति में यह विषय पुरातत्त्ववेत्ता विद्वानों और समस्त भारतीय प्रजा को सरकार हिन्द की सेवा में मिमोरियल करने योग्य है जिससे यह ऐतिहासिक चिह्न यथास्थान बना रहे ।

† यह भी हिन्दी शब्द है संस्कृत स्फुरितम अथवा स्फूर्ति=स्फुरणो, मनसः कल्पनायाम् से ॥

‡ यह भी हिन्दी है । संस्कृत महल्ल=अंतःपुर inner apartments, palace और महल्लिक=अंतःपुर रक्षक से ॥ १९८ पाठान्तर-नृपति । बन । थान । मतो । मन ॥

१९९ पाठान्तर-नरिंद । निझर । नर्झरन । गिरंद । अभिराम । बुलाय । लये । रचो । समांन । बैठो । सुसिंघासन । भ्रम । नरिंद । समीप । दोय । जानि । अश्वनि । आइय । कुली । छतीस । ताम । पावासिर । हूजर । बुलाय । बुलाहि । दीयो । सनमुख । चाहि । चाय । छंद । बंदि । विरद । नाम्यौ । जैसं । चहुआन । सनमान । दरेय । जांम । राजन । थांम । कपूर । सोंधे । छिरकि । उत्तम ॥

बीसलदेवजी का रणवास में पधारकर विश्राम करना और उनकी एक अप्रिय रानी का उनको नपुंसक करना ॥

कवित्त ॥ सुरंग धाम अभिराम । तहां विश्राम राज किय ॥
राग रंग नाटक । विनोद सुष महल बोल लिय ॥
पट रागिनि पांवार । रूप रंभा गुन जुब्बन ॥
प्रमुदा प्रान समान । नहीं विसरत इक्क छिन ॥
रति भोग सुरति तिन सैां सदा । कबहु आन न दिष्ष चिय ॥
षिझि सैांति सकल एकत्र भय । पुरषातन तिन बंध किय ॥
छं० ॥ ३७० ॥ रू० ॥ १८० ॥

पद्धरी ॥ तब सकल भइय एकत्र नारि । पुरुषातन तिन बंध्यौ विचार ॥
प्रचार सहर दूतिका च्यार । लै षबरि सहर पहुचो मझार ॥ ३७१ ॥
प्रसताव भाव तिन कहि उचार । जोगिनिय बोल आदीतवार ॥
पहराइ वेस बदलाय भेस । इम किये राजद्वारह प्रवेस ॥ ३७२ ॥
लै अध्य दई दरवान हथ्थ । इम किय प्रवेस महचरिय सथ्थ ॥
जोगिनिय गई रागिनी मद्धि । सब बोलि कह्यौ ह्वै सिद्ध सिद्ध ॥ ३७३ ॥
आदेस कियै सब पाइ लग्गि । आसन्न जोरि कर उभ्भ अग्ग ॥
किहि काज आज हू बोलि लीन । किहि नार तुमहि इह सोष दीन ॥३७४
सब सैांति कह्यौ दुष सुनहु तुम्म । राजन तनय हम सैां न कम्म ॥
के जानि मात बिंझनी पीर । सैांति कैातान साल्लै सरीर ॥ ३७५ ॥
तुम कहैा करहु जोव तै बद्ध । तुम कहैा करैां नारी विरुद्ध ॥
तुम कहैा करैां काम तै भंग । ज्यैां नारि अंग त्यैां पुरुष अंग ॥३७६॥
सब चित्त बसी इह सैांति बात । अब हो इह वारज करो मात ॥
मंगाय अग्गिनि तब कियै होम । षर स्वान मांस प्रति वास धोम ॥ ३७७ ॥
उच्चयौ मंत्र आराधि इष्ट । तन काल भयैा काम तै नष्ट ॥
दस दिसा लग्गि इह करी विद्धि । गत भैा पुरुषातन रहि न सिद्धि ॥३७८॥
दै द्रव्य कह्यौ माता सिधाव । इह सहर छंडि अनि सहर जाव ॥

१८० पाठान्तर—सुरंग । सुष ताम । विश्रांम । सुष । पवार । जुव्वन । प्रान । समांन । इक्क । स्यं । नि । दरम । सैांक । भई ॥

बीसलदेवजी का पुरुषत्व नाश होने से दुचित्त हो गोकर्णेश्वर की यात्रा करने को गुजरात जाना ॥

अति दुचित राज भय काम नास। ब्रह्मचर्य नेम लियौ चतुर मास ॥३७९॥
कातक्क करत पहुकर सनान। गोकन्न * महातम सुनत कान ॥
बुल्लाय जैतसिय गोलवाल। तुम भूमि पास नागरद† चाल ॥ ३८० ॥

---

* इन गोकर्णेश्वर महादेव की उत्पत्ति-कथा स्कंध पुराणान्तर्गत जो नागर ब्राह्मणों का एक परम पूज्य संस्कृत भाषा में २८००० हजार श्लोक की संख्या का नागरखंड नामक ग्रंथ है उसके ६६ वें अध्याय में लिखी है। यह संपूर्ण ग्रंथ मेरे पुस्तकालय में है ॥

आज जो बड़नगर और वीसल नगर नामक नगर गुजरात में प्रसिद्ध हैं उनका प्राचीन नाम चमत्कारपुर था, उसकी सीमा का प्रमाण उक्त ग्रंथ के १६ वें अध्याय में लिखा है अर्थात् इन गोकर्णेश्वर का उसकी दक्षिणोत्तर सीमा पर होना प्रकाश किया है—

ऋषय ऊचु. ॥ चमत्कारपुरोत्पत्तिः श्रुतात्वत्तो महामते।
तत्क्षेत्रस्य प्रमाणं यत्तदस्माकं प्रकीर्तय ॥ १ ॥
यानि तत्र च पुण्यानि तीर्थान्यायतनानि च।
सहितानि प्रभावेन तानि सर्वाणि कीर्तय ॥ २ ॥

सूत उवाच ॥ पंचक्रोश प्रमाणेन क्षेत्र ब्राह्मण सत्तमा।
आयामव्यास तश्चैव चमत्कारपुरोद्भव ॥ ३ ॥
प्राच्यां सस्यां गयाशीर्षं पश्चिमेन हरेः पदं।
दक्षिणोत्तरयोश्चैव गोकर्णेश्वर संज्ञिकं ॥ ४ ॥

हाटकेश्वर संज्ञं तु पूर्वमासीं द्विजोत्तमाः।
तत्क्षेत्रं प्रथितं लोके सर्वपातकनाशनं ॥ ५ ॥
यतः प्रभृति विप्रेभ्यो दत्त तेन महात्मना।
चमत्कारेण तत्स्थानं नाम्नां ख्याति ततो गतं ॥

† नागरद=उक्त नागरखंड जिसके भले प्रकार पढने में आया होगा वह कह सकता है कि अनर्त देश में हाटकेश्वर क्षेत्र है; उस में जो आज बड़नगर नाम से प्रख्यात है वह नगर यही है। इस के सतयुग में आनन्तपुर, त्रेता में चमत्कारपुर, द्वापर में मानपुर अर्थात् मनीगुर और कलि में नगर अर्थात् बड़नगर नाम प्रसिद्ध हुए है। इस के अतिरिक्त यह भी ध्यान में रखने योग्य बात है कि नागर ब्राह्मणों में से जो आज बीसलनगरा नामक नागर ब्राह्मण प्रसिद्ध हैं वे बड़नगरों में से इन्हीं बीसलदेवजी के समय में उन के दान लेने से पृथक हुए हैं और बीसलनगर नामक जो नगर आज गुजरात में प्रसिद्ध है वह इस समय का इन ही बीसलदेवजी का प्रदान किया हुआ है। नागरखंड से यह भी ज्ञात होगा कि बीसलदेवजी के समय में जिन नागर ब्राह्मणों को दान दिया गया है उनमें से कुछ उस समय पुष्कर में भी रहते थे और येही लोग बीसलदेवजी को पुनश्च पुंसत्व प्राप्त कराने को गोकर्णेश्वर की यात्रा कराने लिए का

तुम देस कन्नौजै गोउकन्न। परवत्त सरोवर नदी रन्न ॥
महाराज उर्हां महादेव थान। वानास नदी कौमारि कान ॥ ३८१ ॥
गिरवर उतंग इक तीन कोस। निझरना झरत मन अति जोस ॥
केतीक दूर अजमेर हुंत। दिन दोय मंझ नीके पहुंत ॥ ३८२ ॥
चढ़ि चल्यौ राज गोकव दिसान। मै मंत गुरिय घूंमत निसान।
आवाजि पहुंचिय दस दिसान। अरि भमैं वन्न तजि थान थान ॥
छं० ॥ ३८३ ॥ रू० ॥ १८१ ॥

दूहा ॥ अरि उद्यान भ्रमि थान तजि। बजि पर षंड अवाज* ॥
तक्षितपुर † गोकन्न दिसि। पहुंच्यौ बीसल राज ॥
छं० ॥ ३८४ ॥ रू० ॥ १८२ ॥

कवित्त ॥ गिरि उतंग सलिता। विहंग उद्यान थान दर ॥
सघन छांह पंषी। असाव रचि लता भुंमि तर ॥

वर्णन यहां कवि ने किया है, ले गए थे और अजमेर के चाहुवान राज्य के पुरोहित भी येही नागर ब्राह्मण थे। उनमें से एक पुरोहित मुकुन्द का नाम १७५ रूपक में आ चुका है। नागरों की पुरोहिताई छुटने पर अन्य ब्राह्मण चौहानों के पुरोहित हुए हैं॥

* यह संस्कृत अ+वाज तथा आ+वाज अथवा अवाद तथा आवाद से है॥

† जो हाल में गुजरात प्रान्त में **बड़नगर** कहलाता है उसी का नाम है। **नागरखंड** के पढ़ने से उसके कितनेक अन्य नाम भी ज्ञात होंगे, जैसे, वृद्धपुर, वृद्धनगर आदि। उक्त ग्रंथ में यह भी पढ़ने में आवेगा कि इस स्थान में एक समय सर्पों का बड़ा उपद्रव हुआ था और वह महादेवजी के त्रिजात ब्राह्मण को **"नगरम् नगरम्"** मंत्र प्रदान करने से दूर हुआ, इसी से यह **नगर** कहाया। इस नगर के रहनेवाले नागर ब्राह्मण अब तक प्रसिद्ध हैं। यह कथा नागरखंड के ११३ वें अध्याय में सविस्तर लिखी है॥

पाठान्तर—भई। बंधन। प्रच्यार। सहस। प्रस्तार उच्चार। जोगनीय। आथि। चहुआन। कीय। सहचरा। सथ। जोगिनी। आदेस। कंयौ। आमन्न। उम्भ कर जोगि जग। किह। हम। ताम। काम। जानै। आभनी। कै। साल। सालैं। कहां। करो ते। सो। करौं। अगोन। उचर्यौ। आराध। ते। लगि। त्रिद्व। रहित। कालिग। करंत। सानाना। सुनहु। कांन। पावल। पास कल। कन्नौजै। गोकन्न। परवत। महाराज। बचास। कोमारिकान। निझरना। मझ। नीकै। मै घुम्मत। दिसांन। थांन॥

१८२ पाठान्तर—उद्यान। थान। तक्षितपुर। गोकन्न। पहुंच्यौ॥

१८३ पाठान्तर—उध्यान। उद्यांन। छांह। असव्य। भुंमि। वरन। पहुप्प। पीक। चकोर। चकोर। सारस। त्रिवि। अनूप। ठाम। आरांम। फासत॥ इस रूपक की पहिली दो तुकों की पहिली यतियों में दस दस मात्राएं हैं और दूसरी में चौदह चौदह। यह कोई ऐसा दोष नहीं कि जिस के लिये हम ग्रंथकर्त्ता को दोष दें। ऐसे उदाहरण अन्य बड़े बड़े कवियों के काव्यों में

बरन बरन पल्लव । पहुप द्रुम वेलि केलि फल ॥
कीर पिक्क चक्कोर । मोर कोकिल कैतूहल ॥
वाराह सिंघ मृग जूथ जहां । दिष्षराज अचरिज भयौ ॥
अनूप ठाम आराम अति । सिव परसन सब सुष भयौ ॥
छं० ॥ ३८५ ॥ रू० ॥ १८३ ॥

कवित्त ॥ परवत में कंदरा । तहां किन्नर सु विराजै ॥
वारि बूंद सिर झरै । पास सिंघ जूथ समाजै ॥
आनि अचानिक राज । पाइ लगो करि प्रन्न पति ॥
ॐ नमो सिव सकल । नमो अकलेस अकल मति ॥
फल पहुप द्रव्य पंचा अमृत । धूप दीप अग्गें धरिय ॥
असनान दान चहुवान करि । तब अस्तुति सेवा करिय ॥
छं० ॥ ३८६ ॥ रू० ॥ १८४ ॥

बीसलदेवजी का गोकर्णेश्वर महादेव की स्तुति करना ॥

भुजंगी ॥ नमो वाय भूताय थानं भयानं । जटा मांहि गंगा झलक्कै प्रमानं ॥
चयं नेच ज्वाला जलं चंद्र भालं । विषं कंठ माला रुलै रुंड मालं ॥३८७॥
महा आदि मुद्रा नयं सिंगि नादं । सिधं देव देवं कथं साथ साधं ॥
धरा धूरि धूसं विभूतं घसंतं । नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥३८८॥
गजं चर्म आछादितं भ्रंम भासं । रहै वीर भैरों गनं आस पासं ॥
पद्मासनं पुष्टि नंदी प्रचंडी । चवं वेद आमोद चौसट्ठि चंडी ॥३८९॥

भी देखने में आते हैं अतएव इस को कवियों की एक शैली मानना चाहिये । ऐसे स्थलों में प्रायः शुष्क-कवि आपस में बहुत वादविवाद कर सिर फोड़ा करते हैं अतएव हम एक और भी सूक्ष्म कारण बताते हैं कि चंद और सूर जैसे आदि-कवि गान विद्या में पारंगत होने के कारण जहां एक ही यति में अनेक स्वर स्वरित हो गये हों वहां की एक दो मात्रा को दूसरी यति में मिला देते हैं कि जिस में स्वर न बिगड़े । देखो यहां उतंग के तं और सलिता के ता पर स्वर स्वरित हो गये हैं ॥

१८४ पाठान्तर— प्रबत्त । किंनर । बुंदि । नषै । सिंघ । पाय । प्रनति । उं । द्रवि । पंचै । दांन । चहुआंन ।

१८५ पाठान्तर—झलक्कै । बंद्दे । सधं । दुरि । दुसं । भैरूं । आसा । पासं । पदंमासनं । ष्टो । कोद । चोसठि । डक । है रूं । लहके । मेरे । धूजै । धनुकं । धरं । वांम । सूलपांणी ।

बजै डक्क डौरू डमंकं तडक्कै । धकै मेरु धुज्जै हकै गैन हक्कै ॥
धनूकं पिनाकं धरै बाम हस्ते । नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥ १९० ॥
सिधं साध आराधयं सूलपानी । सिवा ध्रंम साधेति के साध जानी ॥
नरं किंनरं गंध्रवं नग्ग जष्षं । सुरं आसुरं अच्छरी हूर रष्षं ॥ १९१ ॥
सनक्कादिकं सप्तर्षी बाल कालं । प्रथीवायुगेनाय तेजंस लालं ॥
नमो भान चंद्रं नवं ग्रह समस्ते । नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते ॥
मिटै संकटं वाट घाटं विघट्टं । रटै नाम तो कोटि काटै कसट्टं ॥
घरं षेचरं भूचरं जच्च मंत्रं । जपै व्याधि आसाधि भाजै अनंतं ॥१९३॥
महादी पुरुषं महीमा मुरारी । नवं कौन तो सो निपातिक परारी ॥
गिरा गौरि अर्धंग कैलास वस्ते । नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते

छं० ॥ १९४ ॥ रू० ॥ १८५ ॥

साधेति । ध्यनी । यध्रब । जखं । अछरी । रिखं । सनकादिक । सपत रिषी । सप्त रिषे । प्रथी वायगेनाय तेजं । भांन । मिटे । नाम । तो । महा आदि । पुरिष । पुरुष । सवें । कोन । तो । नपातिग । अरधंग । कयल्लास ॥

हमारे जो पाठक ऐसे हैं कि जिनको न तो कभी यह शंका हुई न अब है और न आगे होगी कि हिन्दी भाषा का यह अति प्राचीन महाकाव्य आदि से अन्त पर्यंत जाली बना है उन को उचित है कि यूरोप देश निवासी मिस्टर ग्रौस, डाकटर होर्नली, मिस्टर बीम्स और भारतखंड निवासी डाक्टर राजेन्द्रलालजी मित्र जैसे महाशयों को अनेक धन्यवाद दें कि उन के शोध और अनेक लेखों के कारण से यह महाकाव्य सर्वसाधारण लोगों के जानने में आ गया नहीं तो कुछ समय और व्यतीत होने पर कोई मनुष्य जैसे कि तर्क वितर्कों से अब दोष देते हैं वैसे ही इस रूपक में 'नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमस्ते'' का पाठ देख करके कदाचित यह अनुमान कर लेते कि इस को स्वामी श्रीदयानन्द सरस्वतीजी के सिद्धान्तानुयायी किसी कवि ने झूठा बना दिया है क्योंकि नमस्ते शब्द का प्रचार या तो वैदिक समय में था अथवा इन दिनों में आर्य समाजियों में है और आदि के चार रूपकों से चंद के धर्म संबन्धी विचार वैदिक समय के से प्रतीत होते हैं। यद्यपि आज यह महाकाव्य इतना प्रसिद्ध हो गया है परंतु भावी दोष देनेवाले के लिये वह कुछ बाधक नहीं हो सकता, क्योंकि जो कुछ प्रमाण इस समय की प्रसिद्धि के उसको उस समय में मिलेंगे उन सबको वह निःशंक होकर वर्तमान समय के दोष देनेवाले की भांति जाली कह सकता है जैसे कि इस समय में सब राजपूताने के राज्यों के प्राचीन संवत इस रासे के ९१ वर्ष के अंतर के संवत के अनुसार मिलते हैं और उन सब को इसी रासो ने अशुद्ध कर दिया यह कहा जाता है, इसी तरह वह भी कह सकता है कि इस समय में जाल ही जाल फैल गया था क्योंकि जैसे आज चंद स्वयम् साक्षी नहीं दे सकता वैसे हम लोग भी उस समय में न होंगे। सारांश यह है कि एक नशा सो दुःख हरता है और थोथे हठ के आगे किसी की कुछ नहीं चलती ॥

बीसलदेवजी से गोकर्णेश्वर के सिद्ध का उनका नाम ग्रामादि पूछना ॥

दूहा ॥ इति अस्तुति राजन मवह । पढि पुज्जिव पग बंदि ॥
देषि सिद्ध चकित भयौ । भाजन बुद्धि नरिंद ॥
कं० ॥ ३९५ ॥ रू० ॥ १८६ ॥ *

कहत सिद्ध किहि पुरहु तैं । कौन गोत किहि नाम ॥
इहि तीरथ आये हुते । कै अगैं कोइ काम ॥
कं० ॥ ३९६ ॥ रू० ॥ १८७ ॥

बीसलदेवजी का अपना नाम गाम आदि बताना ॥

दूहा ॥ पुर अजमेर सु वास हम । गोत ग्याति चहुआन ॥
बोसल दे मो नाम सिष । अयौ करन सनान ॥
कं० ॥ ३९७ ॥ रू० ॥ १८८ ॥

सिद्ध का गोकर्णेश्वर के तीर्थ की महिमा वर्णन करना ॥

अरिल्ल ॥ सिद्ध कहत सुन राजन षत्तिय । जो तू तजि अयौ निज धत्तिय ॥
इह गोपेसुर थान अपूरब । नित प्रति निसा उतरै सौ रंभ ॥
कं० ॥ ३९८ ॥ रू० ॥ १८९

इन थानक चारन बर पाए । तिनके नाम कहि रु समझाए ।
भसमाकर रावन मधु कीटक । तिन उपास निराचर षट टक ॥
कं० ॥ ३९९ ॥ रू० ॥ १९०

इहै तिथ की महिमा गाए । धेनु दुगधतैं आनि न्हवाए ॥
जैसैं ध्याए तैसैं पाए। इतनी कहि सिध ऊठि सिधाए ॥कं०॥४००॥रू०॥१९१॥

---

१८६ पाठान्तर—मौ ॥

* यह रूपक सं० १६४० और १७७० की लिखी पुस्तकों में नहीं है जो इन से भी पुरानी पुस्तकों में यह न मिले तो इस को क्षेपक मानना चाहिये । किन्तु अभी तो हम इस को क्षेपक संज्ञा प्रदान नहीं कर सकते ॥

१८७ पाठान्तर—परहुं । तें । क्यौंन । नांम । आगें । कांम ॥

१८८ पाठान्तर—नांम । सनांन ॥ बीसल दे शब्द में जो दे है वह देव शब्द का संक्षिप्त रूप है इसी तरह समरसो में सी सिंघ वा सिंह का संक्षिप्त है ॥

१८९ से १९१ पाठान्तर—क्षत्तीय । इह । धत्तीय । इहां । गापेसुर । थांन । प्रते । थांनक । च्यारन बर । च्यार नर । नांम । उपवास । टंक ॥ ए हैं । धेंनु । तें । आंनि । जैसें । तैसें ॥

बीसलदेवजी का तीन दिन निराहार उपवास कर गोदानादि करना और महादेव का अपछरा को उन्हें उठाने भेजना ॥

दूहा ॥ राजन मन चकित भयौ । सुनि थानक की सिद्धि ॥
जो तो अभि अंतर* बसत । कहि ते तौ सिध सिद्धि ॥
छं० ॥ ४०१ ॥ रू० ॥ १९२ ॥

अरिल्ल ॥ सहसं गौ मंगाइ सवच्छिय । देइ द्रव्य लै अच्छो अच्छिय ॥
सहस घट्ट सिव ऊपर कीनौ । तीन उपास नेम तब लीनौ ॥
छं० ॥ ४०२ ॥ रू० ॥ १९३ ॥

तीन दिवस रहै रात्र निराहर । जल फल तज्यौ पवन कौ आहर ॥
एक निसा इक अपछर आई । सब अपछरा न्रत्ति करि गाई ॥
छं० ॥ ४०३ ॥ रू० ॥ १९४ ॥

बहुत बेर पीछैं बोल्यौ हर । अपछर जाइ उठेउ वहै नर ॥
सो अपछर नर देषन आई । देषति न्रपति बसि नींद माही ॥
छं० ॥ ४०४ ॥ रू० ॥ १९५ ॥

अपछरा का बीसलदेवजी से महादेव के प्रसन्न होने और मन की कामना पूरण होने की बात कहना ॥

दूहा ॥ तुम कौं सिव सु प्रसन्न भय । कह्यौ मोहनि वर मोहि ॥
जाहु थान हरि थान तजि । तूठे संभर तोहि ॥
छं० ॥ ४०५ ॥ रू० ॥ १९६ ॥

तेरे मन की कामना । ऊपर शिव कौ पाइ ॥
इतनी कहि करि मोहनी । दियौ सु न्रपति उठाइ ॥
छं० ॥ ४०६ ॥ रू० ॥ १९७ ॥

---

* चंद की भाषा का व्याकरण तो हम कुछ समय में बनाकर प्रकाश करेंगे परन्तु एक सूत्र उस का यह स्मरण रखना चाहिये कि उस में षट-भाषा-वत् संधि विकल्प करके होती है, इस के होने के उदाहरण बहुत आवैंगे परन्तु न होने के उदाहरण यह अभि+अंतर और पंचा+अमृत हैं ॥

१९२ पाठान्तर-सिधि । जि । तौक । तो । सिद्ध । सिध ॥

१९३ से १९५ पाठान्तर-सहस । गऊ । मंगाय । सवच्छिय । देय । ले । अच्छीय । घट । शिव । तिन । उपास । रहे । निशा । एक । आईय । अपछर । नृतत । गाईय । पीछे । बोले । उठाउ । वहे । आवय । देषि नृपति बसि नीद अमारय ॥

१९६-९७ पाठान्तर-कों । सों । शिव । हुव । थांन । संभू । को । पाय । दीयो । नृपति । उठाय

बीसलदेवजी का अपने में पूर्ण पुरुषत्व प्राप्त होना देखकर वहां बीसलपुर बसा कर महादेव का मन्दिर बनाने का हुकम देना ॥

कवित्त ॥ पहुर रात पछिलो। राज आए डेरा मधि ॥
बढिय काम कामना। भई पुरिषातन की सिधि ॥
प्रातकाल करि न्हान। धेन विप्रन कौं दीनी ॥
पंचा अम्रत धूप। दीप सिव सेवा कीनी ॥
निछि बार हुकम * देवल करन। पुर †बसाइ बीसल † घरह ॥

* यह हिन्दी शब्द हुकम अथवा हुक्कम संस्कृत शब्द सूक्ष्म से बना है ॥

† चाहुआन वंश की ख्यातियों में बीसलदेवजी का उपनाम पुष्पक होना लिखा है और जो आज कल गुजरात में विशल नगर अथवा विसल नगर करके प्रख्यात है वही यह बीसलपुर बीसलदेवजी का बसाया हुआ है और उसी दिन से बडनगरे नागरों में से कुछ नागरों की विसलनगरा नामक संज्ञा पड़ी है। हमारे इस अनुमान की कविराज श्रीवलपतरामजी सी० आई० ई० अपने ज्ञाति–निबन्ध नामक ग्रंथ में नीचे लिखे प्रमाण से पुष्टि करते हैं–

जे रीते श्रीविद्याप्रकाश तथा श्रीमाली महात्म्य स्कंध पुराण मां छे, तेमज नागर ब्राह्मणोनी उत्पत्ति नो ग्रंथ "नागरखंड" नामे घणो मोटो छे, ते पण स्कन्ध पुराण मां छे। ते नागरो नी उत्पत्ति गुजरात मां बडनगर गाम मां थई। पण ते क्यारे थई, तेनो संवत कांई ए पुस्तक मां लख्यो नथी तेनूं कारण एज जाणवूं के संवत लखवा थी तथा बनावनार नूं नाम लखवा थी ग्रंथ जूनो केहेवाय नही पण नागर ब्राह्मणो नो प्रवराध्याय नामे ग्रंथ मां जोयो छे तेमां लखे छे के,

श्लोक ॥ श्रीमदानंदपुर महास्थानीय पंचदशशतगोत्राणां ।
संवत् २८३ पूर्वेतिष्ठमान गोत्राणां समानप्रवरस्य निबंध: ॥

अर्थ ॥ शोभायमान एवा आनंदपुर, मोटास्थानवाला पंदरसे गोत्रो मांथी संवत २८३ थी पेहेला रहेला गोत्रोना एकज प्रवरना नामोव नो निबंध लखूं छूं ॥

ए उपर थी आशरे मालम पडे छे के ए वखत मां नगरा नी नात बंधाई छे। अने त्यार पछी तेमां थी विसलनगरा नी नात जुदी पड़ी तेनूं कारण केहे छे के विसलदेव राजाए विसल नगर वसावीने त्यां जग्न कीधो हतो। त्यारे बडनगर थी केटलाएक नागरो त्यां तेडा गया हता। त्यारे राजाए तेओ ने दक्षणा आपवा मांडी। त्यारे ए नागर ब्राह्मणो ए कहूं के अमे कोई नी दक्षणा लेता नथी। त्यारे राजाएं कहूं के तमने पाननां बीड़ा आपी शूं। एम कहीने पानना बीड़ा मां गाम नां नाम लखी नें ए नागर ब्राह्मणों ने आप्यां। त्यारे ते ब्राह्मणो ए पानना बीड़ा लीधां। तेमां जोयूं त्यारे गामनां नाम लख्या हतां। तेथी पछीतो ए गाम लेवा कबूल कीधां। ए वात बड़नगरना नागरोए जाणी त्यारे तेओ ए कहूं के एणे राजा नूं दान लीधूं वास्ते एओ

मंगाइ हस्ति असवांर * हुइ । फिर्यौ राज घर आतुरह ॥

छं० ॥ ४०७ ॥ रू० ॥ १९८ ॥

आपणी नातथी बाहर छे । ते दिवस थी विसलनगरानी नात जुदी थई । कोई केहे छे के तेज राजाये तेज वखतमां साठोद्र गाम नूं नाम दान मां लखी ने जेने आप्यूं हतूं ते साठोदरा नागर थया । चित्रोड़ लखी ने जेने आप्यूं ते चित्रोडा नागर थया । तेमज प्रश्नोरा तथा कृष्णोरा पण थया । ६ प्रकार ना नगरो नां नाम । वडनगरा नागर १, विसल नगरा नागर २, सठोदरा नागर ३, चित्रोडा नागर ४, प्रश्नोरा नागर ५, कृष्णोरा नागर ६॥ हवे विचार करो के विसलदेवे विसल नगर सं० ९३६ नी साल मां वसाव्यूं ओ प्रथिराजरासा मां चंद कविये लखेलूं छे ॥ दोहा ॥ सो संवत नव मास अधिक । वर्ष तीस छह माग ॥ पुर प्रतिष्ट वीसल नृपति । राजत सकले जग ॥ १ ॥ त्यार पछी विसलनगरानी नात बंध थई छे । तेथी साफ जणाय छे के परमेश्वरे कांई नातो बांधी नथी । फकत माणसोओ जुदा जुदा वाडा बांध्या छे । त्यारे ते बंधारण थी हालमां जे हरकतो थती होय ते बंध करवा चहाय तो करी शके खरा । विसल नगराओ राज नूं दान लेवा थी जो वटल्या होय तो हाल मां वडनगराओ मुसलमाननी सेवा करे छे तेओ ओनाथी पण वटल्या कहेवाय । वास्ते ओवो जूठो वहेम कोइ हवे धारशे । अने जरूर समजवूं के तेओ ओक बीजा थी कांइ वटलाशे नहीं । इत्यादि ॥ ज्ञाति निबन्ध पृष्ठ ४३ से ४५ तक ॥

नागरखंडना अध्याय २३ पछी तेमां १०८ मा अध्याय थी ४था अध्याय मां लखे छे के आनर्त देशना राजाओ चमत्कारनामे शेहेर वसावी ते ७२ गोत्र ना ब्राह्मणो ने आपवा मांड्या तेम ८ गोत्र-नाओ लीधां नहीं ने ६४ गोत्रनाओ लीधां । पछी त्यां कांई कारण थी नागनी उत्पत्ति घणी थई तेओओ घणां माणसोने करडी खाधां तेथी केटला ब्राह्मणो नाशी छुट्या पछी ओक अपमान करेले ब्राह्मणे (त्रिजातके) मन्त्र नो उपाय कर्यो तथा ओ सङ्क ब्राह्मणो ओ मर्त ने लाकडो पथरा वगेरे थी हजारो नागने मारी नाख्या त्यारे ओ शेहेरनूं नाम नगर (अरे विनानुं) ठर्यूं ने ते ब्राह्मणो नागर कहेवाया । पछी १५८ मां अध्याय मां लखे छे के ओक पुष्पक नामने पुरुष पर स्त्रीनो संग घणां वर्ष कर्यो, ते पछी पस्तावो करीने तेनूं प्रायश्चित करवा वडनगर मा आव्यो त्यारे सङ्क नागरो ओ कहूं के ओ पाप मटवानो उपाय नथी । त्यारे ओक चंडशर्मा नामने नागरे कांई प्रायश्चित कराव्यूं, तेथी नागरोओ चंडशर्माने नात बाहर मुक्यो तेथी ब्राह्म नगरानी नात जुदी बन्धाई ॥

पृथ्वीराजरासा मां लख्यूं छेके वीसलनगर वसावनार वीसलदेव राजाओ पुष्कर क्षेत्रमां परस्त्रीनो सङ्ग कर्यो हतो, तेथी ते स्त्रीओ शाप दीधो हतो जे तूं असुर थईश । पछी ओ पाप मटवानो उपाय वीसलदेव शोधतो हतो । मा टे पुष्पक नामनो पुरुष नगर खण्ड मा लख्यो छे ते वीसलदेव सम्भवे छे । ने ब्राह्म नगरा जे लख्या छे ते वीसलनगरा, साठोदरा वगेरे सम्भवे छे इत्यादि० ज्ञाति निबंध पृष्ठ ७५-७६ ॥

* यह हिन्दी शब्द संस्कृत अश्ववार अथवा अश्व + अर अथवा अश्व + आर से बना है अरबी अथवा फारसी से अनुमान करना व्यर्थ है ॥

१९८ पाठान्तर—हुर । कामन । हुई । म्हांन । विप । कौ । वसाय । वीसल पुरह । मंगाय । होइ ॥

बीसलदेवजी का पीछे अजमेर आना और सब कथा प्रसंग पवांर जी राणी से कहना ॥

दूहा ॥ दो दिन के मग एक दिन । आए बीसल गेह ॥
किय प्रवेस नृप सहर * में । सुचित भये मन मेह ॥
छं० ॥ ४०८ ॥ रू० ॥ १९९ ॥

ऊंच धाम विसराम किय । रंग साल चतुरंग ॥
प्रौढा महल पवार सों । कहिय सु कथा प्रसंग ॥
छं० ॥ ४०९ ॥ रू० ॥ २०० ॥

सब काम-लुब्धाओं को सोच होना कि शंभू ने ऐसा क्या वर दिया ?

चौपाई ॥ काम लुबध बोली सब कामनि । च्यार जाम गई जागत जामिन ॥
सब नारिन कौं सोच उपन्नौ । औसौ कहा संभु वर दिन्नौ ॥
छं० ॥ ४१० ॥ रू० ॥ २०१ ॥

बीसलदेवजी का कामान्ध हो अकर्तव्य काम करना ॥

कवित्त ॥ राति दिवस एकसी । काम कामना सु बढ्ढिय ॥
प्रौढ मुगध वय हद्ध । सबैं थर हरि चिय गढ्ढिय ॥
पर घरनी लै बोलि । घरी नह विलँब लगावै ॥
जो विलंब करि रहै । ताहि हनिबे कौं आवै ॥
भै भीत काम बिसराम बिन । नाम सुनत औदिक परै ॥
अजमेर नैर बीसल नृपति । प्रमुदा देषत प्रज्जरै ॥
छं० ॥ ४११ ॥ रू० ॥ २०२ ॥

* हिन्दी सहर अथवा सहरि शब्द अरबी अथवा फारसी से नहीं है किन्तु संस्कृत स+हलि से ॥ SK. स+हलि=Agriculture, furrows.. Hence a place where agricul-turists reside. Dwelling &c Habitation &c The Hindi हर is also from the SK. हल A plough, the earth. In the same manner नगर a town is from नग a tree, a mountain & रु off

१९९—२०० पाठान्तर-कै । कैं । सेवा ॥ धांम । महिलए । वारि । कौ ।

२०१ पाठान्तर—कांम । याम गय । जांम । कों उपंनैा । औसों । सिंभु । दीनैा ॥

२०२ पाठान्तर-कांम । कामना । बढिय तम । सवैं । हरत नारी जस । कों । विलंब । ताहि के पहिले तो विशेष है । भय । कांम । बिसरांम । नहि । नाम उन्हकि मरै । नृपति । प्रजरै ॥

दूहा ॥ पट्टन धनकनि देष दुष । ग्रेह कटन ग्रष षघ्य ॥
धरैं धन्न निज कोस मधि ॥ हूवै वानि समरथ्य ॥

छं० ॥ ४१२ ॥ रू० २०३ ॥

कवित्त ॥ जिते जाइ इष मान । काम कामना सु वढ्ढिय ॥
अवर नाहि उप्परह । वयन न्नरष पर चढ्ढिय ॥
तिन दिष्षत वर वस्त । मंगि अप्पन मुष अष्षहि ॥
अवला संग उल्हास । काहु की कानि न रष्षहि ॥
दुज षचि वैस सूद्रह वरन । तजै न किह तक्कन नयन ॥
बीसल नरिंद इह भय अकलि । रहै न कहु निस दिन चयन ॥

छं० ॥ ४१३ ॥ रू० ॥ २०४ ॥

बीसलदेवजी के दुराचरणों से दुःखी होकर नगर के लोगों का प्रधान के पास पुकारने जाना ॥

दूहा ॥ दीरघ जन मिल नयर के । गए द्वार परधान ॥
वढि अचैन नर नारि सव । नहीं रहै रजधान ॥

छं० ॥ ४१४ ॥ रू० ॥ २०५ ॥

---

२०३ पाठान्तर–धनकन । मुष । यिह । कट्टन । हथ । निमि । वानि । समरथ ।

२०४ पाठान्तर–मांन । कांम । कांमना । बढ्ढय । उपहर । चढिय । दिषत । मुष्ष । संग काऊ कांणि । रषहि । चीय । वहस । किहि । रहै । लहैं । निमि ॥

हमारे पाठकों में से जो ऐसे हैं कि वे Political officers रहे हैं अथवा जिन्होंने बीसल देवजीकी जैसी अनीतियोंके वृत्त गोप्य Political Reports में पढ़े हैं अथवा जो Mysteries of the Native Courts के ज्ञाता हैं अथवा जिन्हों ने वाजिदअली शाह की सायवी का पूरा ज्ञान उपार्जन किया है वे चन्द के लिखे बीसलदेवजी के वृत्तान्त पर अविश्वास नहीं करेंगे और न उसे अत्युक्ताभाव का समझेंगे, किन्तु कवि के स्पष्ट वक्तृत्व की प्रशंसा करेंगे। इतिहास लिखनेवाले का यह मुख्य•काम है कि वह चालचलन के विषय में स्पष्ट वृत्त लिखे कि जिस से उस की भावी संतान शिक्षा ग्रहण करे। हमारे इस देश में हम लोग इस बात को फांसी लगने जैसा अपराध समझते हैं और रात्रि दिन ऐसी ही अनीतियों में लगे रहते हैं अतएव पुरुषार्थ का बड़ा टोटा हमारे यहां आ गया है ! ! !

२०५ पाठान्तर–मिलि । के । परधांन । वढिं । अचैंन । नही । रहवि । रजधांन । दिवांन ॥

सबका आपस में सलाह करके बीसलदेवजी को राजधर्म अरज करना ॥

कवित्त ॥ तिन मति तिहिं पुर होइ। तोइ मति समथ समंडव ॥
बहुत भूमि भूमियाँ। चढवि तिन धर पुर पंडव ॥
इह सु ध्रम्म राजेन्द्र। दुष्ट कंक्रट सिर कट्ट ॥
अनड अनड संहरै। धरा रष्षन धर अट्टै ॥
इह कह्यौ मंत तिन मंचियन। अरु सब सहर सु पंच जन ॥
इह कथिय बत्त न्रिप सम तिनह। दवरि विसेषक्र भूंमि यन ॥
छं० ॥ ४१५ ॥ रू० ॥ २०६ ॥

बीसलदेवजी ने उत्तर दे कहा कि यह सब मैं जानता हूं पर काम-ज्वाला के बढ़ने से मैं लाचार हूं; अब तुम जो कहोगे वह करूंगा ॥

कवित्त। दुज्जर काय सु कहन। राज मन मांहि समझ्झै ॥
काम ज्वाल मो वढिय। तुम हि तिन कै दुष दझ्झै ॥
हौं इह जानौं सबै। पै मुहि मन वसि न होई ॥
सदा पहर जिम छाह। रहै कूई की कूई ॥
तुम कहो सु हौं करि हौं अवसि। वोलि लेहि किरपाल हौं।
जहँ जहां दिसा तुम संचरौ। तहँ तहँ आऊं चढ़ि हौं ॥
छं० ॥ ४१६ ॥ रू० ॥ २०७ ॥

इस पर बीसलदेवजी का किरपाल को बुलाना और उसका आना

दूहा ॥ दै फुरमान* प्रधान तब। बुल्लाये किरपाल ॥

२०६ पाठान्तर—मतिह। समथ्थ। संडव। भूमीया। ध्रम। कहे। अनड अनह। रषन। कहिय। तिनहि। विशेषक। भुंमियन ॥

२०७ पाठान्तर—दुजर कत। समझे। कांम। वढीय। कै। दझें। हूं। जांनों। सबैं। पें। मोहि। छांह। हूं। कू। तहां तहां। चढि। हूं ॥

* यह हिन्दी शब्द संस्कृत स्फुर+मान से है जैसे कि स्फूर्तिमान्, स्फूर्त्तमता और स्फूर्तिमत् इत्यादि। इस फुरमान अथवा फुरमाना आदि शब्दों का प्रचार राजस्थानों अथवा बड़े प्रतिष्ठित लोगों की मंडली में आज भी बहुत है। वास्तव में यह शब्द कहने अथवा आज्ञा के अर्थ में

संभरि सौं आयौ सवर । लियै अनूप रसाल ॥

कं० ॥ ४१७ ॥ छ० ॥ २०८ ॥

बीसलदेवजी का किरपाल से कहना कि तरवारि की पृथ्वी है सो हम नव खंड की षड्ग खोसने को षड्ग बांधते हैं; तुम खजाना संग ले बीसल सरवर पर डेरा करो ॥

कवित्त ॥ आय तबै किरपाल । पाइ राजन कै लग्गौ ॥
मुष अग्गैं दुअ पग्ग । धरै नग जरित उनग्गौ ॥
बंधिय तेग विचार । सु गुन राजन इह कथ्थिय
जिम जिम विद्या दान । तिमह तिम षगको प्रथ्थिय ॥
इहै सगुन षम कौं भयौ । षग षोसौं नव षंड धर ॥
ब्रह्मांड मंड सब वसि करौं । मंडौ मेर सुमेर धर ॥

कं० ॥ ४१८ ॥ छ० ॥ २०९ ॥

दूहा ॥ सुनि किपाल मो मुष वचन । कढि षजीन सँग लेहु ॥
बीसल सरवर ऊपरै । ध्रुव दिसि डेरा देहु ॥

कं० ॥ ४१९ ॥ छ० ॥ २१० ॥

प्रयोग होता है जो किसी के द्वारा कहा जाय अथवा आदेश किया जाय । जैसे हमारे रज-वाड़ों में जहां अभी प्राचीन देशी रीति प्रचलित है वहां राजा स्वयम् नहीं बोलते । राजा जी तो किसी अन्य पुरुष को कहते जाते हैं और वह पुरुष उस दुष्ट मनुष्य को कहता जाता है । तथा किसी अपने से छोटे अथवा अधीन को कागद पत्र के द्वारा कहा अथवा आदेश किया जाय उसको फुरमान वा फुरमाना कहते हैं

२०८ पाठान्तर—फुरमांन । प्रधांन । बिल्लाये । बुलाये । सौं । अनूप ॥

२०९ पाठान्तर—पाय । आगे । दुय । धरे । उनग्गो । सगुन । कथ्थिय । दानं । तेम षग की इह पृथ्वीय । इह सगुन अवैं हमकों भए । सौं ब्रह्म मंड मंड । ब्रह्म मंड मंड । करौं । दंडौं ॥

• हिन्दी में खजाना और उस से बने शब्द आते हैं उनका खासकर यह प्राचीन हिन्दी शब्द सब के ध्यान में रहने योग्य है । यह संस्कृत खर्जूर रौप्य silver का अपभ्रंश है । इन शब्दों को अरबी और फ़ारसी के अपभ्रंश अनुमान करना व्यर्थ है । देखो, सं० खज शब्द भी युद्ध और स्वार्थ के अर्थों में प्रयोग होता है । और वह भी इतने प्राचीन समय से कि ऋग्वेद ८ । १ ० में "अलर्षि युध्म खजकृत पुरन्दर०" कहा है ॥

पाठान्तर— क्रिपाल । संग अपरैं । उपरैं । ध्रू । दिसि ॥

बीसल सरवर पर बीसलदेवजी के अधीन तथा सहायक इष्ट मित्र राजाओं का उनके दिग्विजयार्थ अटन के लिये एकत्र होना और गुजरात के चालुक्क राजा का वहां न आना अतएव बीसलदेवजी का उस पर चढ़ाई करना और वालुका राय का यह सुनकर सामाना करने को आना ॥

पद्धरी ॥ भरि चले सुतर*रथ एक राह । बीसल तडाग दिय वारि गाह ॥
फुरमान दए लिषि दस दिसान । सब आय मिले अजमेर थान ॥छं०॥४२०॥
परिहार मह्नसी मिल्यौ आय । मंडोवर के नर लगे पाय ॥
गहिलैात मिले सब सभा मैार । पावासर तोंवर राम गैार ॥ छं० ॥४२१॥
मेवात धनी आए महेस । मोहिल्ल दुनापुर दिह पेस ॥
बलोच मिले सब पाइ बंधि । वाभन्या नृपति तजि गए संधि ॥ छं० ॥४२२
भटनेर राय की आइ भेट । मुलतान नाल बँध थटा थेट ॥
फुरमान गए जैसल्लमेर । भेम्या सब भाटी भए जेर * ॥ छं० ॥ ४२३ ॥
जादौं रु बघेला मल्हवास । मोरी बड गूजर आइ पास ॥
अंतरवेध कूरंभ आइ । सब मेर जेर होय लगे पाइ ॥ छं० ॥ ४२४ ॥
आए सपाइ चढि जैतसीह । नच्छितपुर के नर संग लीह ॥
आये सु चढ्ढि उद्या पवार । निरवान डोड चढि चले लार ॥ छं० ॥४२५॥
चंदेल दाहिमा चरन लग्गि । वसि किये भूमिया धूलि पग्ग ॥
चालुक्क कोइ आयौ न पाइ । रहे मुक्करि जोर*नरवार*साहि ॥ छं० ॥४२६॥
सुनि बोल जैतसी गोलवास । घर बार नगर को रष्षपाल ॥
सैां पैां सु तुमहि अजमेर थान । वालुक्क कितक पावै न जान ॥ छं० ॥४२७॥
दर * कूच कूच * चढि चल्यौ बीर । गिरि मग्ग होइ सर सुक्कि नीर ॥

* इस रूपक के कई एक शब्द भाषा के शोधक विद्वानों के ध्यान में लेने योग्य हैं; जैसे—हि० सुतर (SK सु+तर or तरि तस), जेर (SK. जूर) or जूरी to reduce, to injure, to hurt, to decay, to grow old, to wound or kill) जोर (SK जुड to bind, to join, as in making or mending, to direct, to grind or pound &c., or जुड़ speed, velocity, motion in general). नरवार (SK. नरवारि) दर (SK. दृ to divide, cut or break, to preserve, &c., and aff अप्) कूंच or कूच (SK. कुञ्च to go, to go to or towards.)

इस के अतिरिक्त यह भी पाठकों को ज्ञात हो कि इस प्रसंग में कहीं चालुक्क और कहीं चालुक्क पाठ है सो जहां जैसा पुस्तकों में मिला वैसा रक्खा गया है, किन्तु जितनी पुस्तक प्रतियों

सोभति सोलंकी पच्छिलि चोट। सैं लोट किये घर पारि कोट ॥छं०॥४२८॥
जारैार भंजि गढ रैार पार। अरि भाजि गए गिर बन मझार ॥
आबू चढि भेव्या अचलेस। तत्काल लियौ गिरिनारि देस ॥ छं० ॥ ४२९ ॥
वागार सोरठ क रा सुद्ध। दंड मानि मिले नच मिले जुद्ध ॥
गुजरात देस छिन्तर हजार। बालुका राइ चालुक झुझार ॥ छं० ॥ ४३० ॥
सुनि बत्त चढ्यो अहंकार बंध। शिव सकति पूजि धरि कुम्भ कंध ॥
असवार लार हज्जार तीस। मद झरत नाग पंचास बीस ॥ छं० ॥ ४३१ ॥
जोजनह एक पर करि मिलान। आवाज सुनिय तब चाहुवान ॥
छं० ॥ ४३२ ॥ रू० ॥ २११ ॥

बालुकराव का आना सुनकर बीसलदेवजी का सेना ले चढ़ना ॥

दूहा ॥ सुनि अवाज बीसल्ल नृपति। आ ो बालुक राव ॥
राज मंगि है वर च ौ। दियौ निसान * निघाव ॥
छं० ॥ ४३३ ॥ रू० ॥ २१३ ॥

पद्धरी ॥ दल्ल च ौ साजि बीसल्ल सु राज। बड्डिय सु जंनि अरि पुर अवाज ॥
सित्तर हजार सेना सु वाज। झिंगरि सजूर पावस निगाज ॥ छं० ॥४३४॥

को लिखी हुई हैं उनमें च और ब में बहुत ही कम फरक देखने में आया है जिस से मैं अनुमान करता हूं कि लेखकों ने धोका खाकर चालुक का बालुक पाठ न लिख दिया हो ॥

* हिं० निशान अथवा निसान (S K नि+शाण i e. नि before and शाण coarse cloth, sack cloth, Canvas A Small tent or screen used especially as a retiring room for actors and tumblers, &c.) Hence a standard, an ensign, flag, banner & colours, &c. इस निशान शब्द का प्राचीन देशी राज्यों में अभी तक प्रचार है और troop और Company के अर्थ में भी प्रयोग होता है जैसे अमुक राजा ने अपने अमुक सरदार पर दो निशान चढ़ा दिये। अमुक अमुक निशानो में झगड़ा वा लड़ाई हो गई। मैं अमुक निशान का हूं और वह अमुक का ॥

२१ पाठान्तर दीय। फुरमांन। छिमांन। थांन। थाई। गहिलोत। पावांमर। तूवर। मोहिल। बलोच। बंभन्या। सिध। आय। बंध। फुरमान। जेसलमेर। छत्रो। मल्हनवास आय। अतरहवंध। आय। पाय। सपाय। जेतसिंह। तक्कितपु। साथ। सथ। सथ्या। लीय। थाठ। पवांर। निरवांन। भूमिया। मुसकरि। रववाल। सोपोम। थांन। कहांक। किसहु। जांन। कूच कुच। मगि। सोझन्ति। सोकति। सोलंक। सें। जालोर। पारि। मझारि। लियौ। छपंन। हंह। सतरि। राय। कूंत। पचास। जोजन। मिलान। चाहुवांन ॥

२१२ पाठान्तर—आवाज। मंग। हैवर। चढ्यौ। दीयो। निसान। न। घाव।

२१४ पाठान्तर—जान। सत्तरि। बाजी। झिंगर। छि गाज। ठलकंति कूंत। जुत। जुंतु। सिव। पष्षर। गहि। भूमिया। मंहि। सं० १६४८ और १७७० में "करि अगम गम्य दल चट्टल रक" है। अब। कअलो। कज्जलो पदक। मुकाम। मुक्कांम। गाम।

ढक्कंत ढाल भल्लंकंत कुंत । बिकसंत सूर सकसंत जंत ॥
छल छलत सिंधु वर चल अनूप । भल मलत सिष्प पष्षर सनूप ॥छं०॥४३५॥
वर विजय बढ्ढि चालुक्क देस । बहु मिलत भूमियां लेय पेस ॥*
अरि गहन गाढ तिन धरनि षंड । इहि रीत राज बसु विजय मंड ॥ छं०॥४३६॥
करि अग्ग मह गल सहस दुष्प । वर माघ मास उज्वलौ पष्प ॥
दस कोस जाय मुक्काम†कीन । बिच गाम नगर पुर लूट लीन ॥
छं० ॥ ४३७ ॥ रू० ॥ २१३ ॥

बीसलदेवजी की खबर सुन बालुका राव का जलभुन जाना ॥

दूहा ॥ सुनिय षबरि ‡ बालुक नबै । तमकि सु जग्यौ ताम ॥
मानों प्रजारिय अगिन । नर निरधूम बिराम ॥
छं० ॥ ४३८ ॥ रू० ॥ २१४ ॥

बालुका राव का नित्य नेम करके लड़ने को तयार होना ॥

पद्धरी ॥ बालुका राइ चालुक्क वीर । मंगाइ नीर मंज्यौ सरीर ॥
करि चरन अंब अंजुली कीन । परि कंठ विप्य धारिय कुलीन ॥छं०॥४३९॥
जुध आज करौं कहि कहा काम्नि । जो जाउं भज्जि तौ गोत गाल्नि ॥
इतनी भूमि षिची न कोइ । अट्टौ न फिर्यौ मिान लेय लोह ॥छं०॥४४०॥
पषरैत तुरिय पषरैत गज्ज । नर कस्से बगतर सिलह सज्जि ॥
अवसर भये तब षबरि दीय । बालुका राइ अयौ अबीह ॥ छं० ॥ ४४१ ॥

* हिं० पेस (SK प्रैष्य m. A servant, a slave in Service, servitude Hence a tribute or present such as is only presented to conquerors, princes, great men and superiors.)

हिं० पेश अथवा पेस+कशी अथवा कसी (SK प्रेष्य and कृष्=to draw to draw out or off to attract, to raise, to draw up, &c)

† हिं० मुक्काम or मुकाम (SK मुक्त+श्राम=परिश्रम labour) Hence a halt, a stop in a march &c. Some think it from the SK मक्रुष्ट info. going lazily, slowly, &c or SK. मक्क or मकि or मुक्क to go, to move &c & आमनि a road or SK मुक्त+याम to go.

‡ हिं० खबरि or खबर (SK ख्या to relate, to recount, to say or tell, celebrate, to make known &c.

२१४ पाठान्तर-षब्बरि । जमि । तांम । सं० १८५९ की में "मनों प्रजारिय अगनि बन" । विराम ॥

बालुका राव का बीसलदेवजी के पास श्रीकंठ भट्ट को भेज संदेसा कहना॥

श्रीकंठ भट्ट चहुवान पास। तुम जाय कहौ इहि विधि प्रकास॥
श्रीकंठ भट्ट गय अरि सु थान। बीसलदे भेट्यौ चाहुवान॥ छं० ॥ ४४२॥
आसीस दई उभ्भारि हथ्थ। बालुका राइ की कही कथ्थ॥
जितनैं न्रपति सौं मुदै काम। तितनैं रयति सौं कौंन काम॥छं०॥४४३॥
तुम बुरी करी करि रयति बंदि। औसो न करैं हिंदू नरिंद॥
अब छंडि रयति फिरि जाहु धाम। अजमेर सहर मंडौ विस्राम॥ छं०॥४४४॥
हौं वह्म राय जुध करन जोग। जुध भाजि जाउ तौ परै सोग॥
हम मरन दिवस है मंगलीक। सो पास जिते न्रप सुद्ध लीक॥छं०॥४४५॥
हम तुम्म नहीं कबहू विरुद्ध। इह जानि जाहु फिरि तजौ जुद्ध॥
हम तुम्म काम इहि षेत आज। को रहै षेत को जाइ भाजि॥छं०॥४४६॥

यह सुनते ही बीसलदेवजी का लड़ने को आज्ञा देना॥

इतनी जु सुनत ही चाहुवान। तिहि वार हु॰म करि द्यौ निसान॥
पषरैत किये है वर मतंग। संनाह पहरि सब नरनि अंग॥ छं० ॥ ४४७॥
दोउ फौज निजर दिटान मिल्लि। उपट्टै सिंधु जनु लहरि जल्लि॥
छं० ॥ ४४८ ॥ रू० ॥ २१५ ॥

बीसलदेवजी का चक्रव्यूह और बालुकराय का अहिव्यूह रचना॥

दूहा॥ चक्रव्यूह चहुवान किय। अहि मन बालुक राइ॥
कै भेदै कै भंधि रहै। दई करउ निरवाइ॥
छं० ॥ ४४९ ॥ रू०॥ २१६ ॥

---

२१५ पाठान्तर-राध। बालुक। मंगाय। भयौ। अजुंल। धारीय। जुद्ध। करो। कालिह। काल। जौं। जाउं। जाऊ। भजि। गोतमालि। काय। छडो। फिर। पहर। पषरैत। गज। कसे। स'जि। भए। जाहुं। कहो। थांन। सं १७७० में "भेट्यौ बीसलदे चाहुवान"। दीन। हर। उभारि। हथ। राय। कथ। जितनें। सों। कांम। तितनें। सों। कोंम। कांम। बुरीय। करी। करै। हिंदू। धांम। विस्रांम। हों। ब्रह्म बंध। भागि। जाऊं। पासि। शुद्ध। तुम। तुंम। नहो। बिरध। तुंम। कांम। जाय। चाहुवांन। निसांन। हुंकर। हैं बार। दोऊ।

२१६ पाठान्तर-चाहुवांन। बालुका। राय। दर।

बीसलदेवजी और बालुकराय की फौजों का परस्पर युद्ध करना ॥

भुजंगी ॥ मिले प्रात कालं दुऋं दिष्ट फौजं । मनों देषिऐ जानि सामुद्र मौजं ॥
गजं आय झूमे भले सात रोटं । षई षंड सुंडं करे अप्प चोटं ॥छं०॥४५०॥
भई तीरकारी छुटे नाल बानं । परी सोर की धुंध सुझ्झे न भानं ॥
भले सूर बीरं धरे कुंत कंद्धं । उपारैं तुरी दो दिसा फौज मद्धं ॥छं०॥४५१॥
निसंकं तुरी थप्पि पषरेत नष्षे । मनों बुंद सिंधं परै कौन दिष्षे ॥
भए एकमेकं परे भार भारे । तनं तेग तुट्टे बचै फूल झारै ॥ छं० ॥ ४५२ ॥
भई फौज चालुक्क की पच्छ पायं । तबै बालुका राइ कीनी सहायं ॥
जपै भाय भायं करै मार मारं । लरै दोय जोधा कटैं सार सारं ॥छं०॥४५३॥
उपट्टै घटें गावरं तुंड तुट्ट । बचै संग कुट्टी फिरी अंग फुट्टै ॥
चपे चक्रव्यूहं नृपं अप्प चल्लै । फिरै मुष्य परिहार गहिल्लोत मिल्लै ॥छं०॥४५४॥
चल्यौ भज्जि गहिल्लोत तूंवर दिसानं । फटे चक्रव्यूहं भए एक थानं ॥
तिनं बार स्याबासि पावासु रानं । सनं मुष्य धाए मनों सिंघ जानं ॥छं०॥४५५॥
परी भूमि लोथं मिले हथ्थ बथ्थं । करैं जोर जोधा अकथ्थं सु कथ्थं ॥
तिनं बार पंधार पेल्ले अलोचं । जुरे आय संमुष्य कोयौ न सोचं ॥ छं० ॥४५६॥
भभक्कं अकं हस्ति बोले भसुंडं । परे षंड षंडं रनं रुंड मुंडं ॥
बने लाल बागे भिले लोह मिल्लै । दुहू ओर जोधा मनौं फाग षिल्लै ॥छं०॥४५७॥
गजं श्रोन चल्ले रजं आस पासं । मनों माधुरी मास फूले पलासं ॥
मिल्यौ दिष्ट बालुक्क बीसल्ल नरिंदं । मनौ सूर दैषे भये चंद्र मंदं ॥छं०॥४५८॥
तुरी चढ्ढि चालुक्क हस्ती चुहानं । भयौ राज सौं जुद्ध भारी भयानं ॥
उनें बाजि नंष्यौ इनें गज्ज पेल्यौ । दिए दंत पायं दुऋं लोह मिल्यौ ॥छं०॥४५९॥
फिर्यौ गज्जराजं उनें बाजि फेर्यौ । दुऋं बीर बाचा भई षेत हेर्यौ ॥
छं० ॥ ४६० ॥ रू० ॥ २१७ ॥

२१७ पाठान्तर—दुयं । दिठ । देषियैं । श्रोन । जानि । झूमि । रोटं । रोट्टं । सर्ब । सोटं । सोट्टं । धुंधु । सुझै । भांन । शूर । धरं । कधं । उपारै । मंधं । पष्परे । कंध्र नषे । नष्षे । परं । कोन । भर । पक्क पाई । पक्क । राय । सहाई । जपे । भाई भाई जोद्धा । कटै । घटं । तुंब । करी । चंपे । अप । चलं । फिरैं । मुक्ख । मिलं । भजि । तोंवर । फटै । मुष । पुहवि । पहुमि । हथ बथं । करे । अकथं । कथं । पेल्यो । सनमुष । भभकंत हस्ती सु बोले भुसुंड । रुड । मुडं । मिले । दुहुं । मनों । षिले । चल्ले । रजे । मनैं । बालुक । मनो । दषे । हुवं । चंद । चढि । चालुक्कं । करी । चाहुवानं । चोहानं । सों । नष्यो । गज । दए । दुवं । गज्जराजं । दुहूं । भयं ॥

चालुक का कहना कि रात को युद्ध नहीं करना; प्रात होने पर युद्ध करेंगे ॥

दूहा ॥ राज सुनै चालुक कहै। है थप्परि हथ कंध ॥
रत्ति परी जुध नहि करैं। प्रात करैं फिर जुद्ध ॥

छं० ॥ ४६१ ॥ रू० ॥ २१८ ॥

दोनों योद्धाओं का अपने अपने डेरों पर आना और चालुक के मंत्रियों का एक झूठी पत्री बनाना ॥

अरिल्ल ॥ अपने अपने डेरा आए। सब घायल के घाव बँधाए ॥
मिले सकल चालुक के मंत्रिय। झूठी एक बनाई पत्रिय ॥

छं० ॥ ४६२ ॥ रू० ॥ २१९ ॥

चालुक के मंत्रियों का उसे एक झूठी पत्री देकर घर भेज देना ॥

अरिल्ल ॥ सो कर जाइ राज कै दिन्निय ॥ तुम घर जाहु कहा बक थन्निय ॥
डोली करि चालुक चलाए। सब मंत्री मिलबे कौं आए ॥

छं० ॥ ४६३ ॥ रू० ॥ २२० ॥

चालुक के मंत्रियों का बीसलदेवजी के मंत्रियों से मिल संधि कर लेना ॥

अरिल्ल ॥ सब मंत्री परधान थान पर। बोलि लए पावासर तोंअर ॥ *
हम सु तुम्हारैं पाहुन आए। कपट निपट करि राव चलाए ॥

छं० ॥ ४६४ ॥ रू० ॥ २२१ ॥

दूह सु बोल गज तोल चलावै। राज कहै सो माल मँगावै ॥

छं० ॥ ४६५ ॥ रू० ॥ २२२ ॥

---

२१८ पाठान्तर—करैं। करैं। भये। करैं।

२१९–२२ पाठान्तर—अपनें २। घाउं। बंधाए। मंत्री। पत्री ॥ २१९ ॥ जाय। दीनीय। थंनिय। चालुक। करी। कों। कूं। आये ॥ २२० ॥ परधांन। थांन। तुम्हारे। पायन ॥ २२१ ॥ दहां। तोल। चलायौ। मंगायौ। तहं ॥ २२२ ॥

* यह तुक सं० १६४० और १७७० की पुस्तकों में नहीं है।

पावासुर का बीसलदेवजी से संधि कर लेने के समाचार कहना ॥

अरिल्ल ॥ राजन पास गए पावासुर। तहाँ बोलि किरपाल लए नर ॥
चालुक के मंत्री आये मिल। मंगो माल धरै प्रभु पग तल ॥

छं० ॥ ४६६ ॥ रू० ॥ २२३

बीसलदेवजी का संधि स्वीकार कर वहां महल बनाने और नगर बसाने को कहना ॥

अरिल्ल ॥ फिर राजन कही तुम जानौ। मेरो इहाँ मवस्स हु थानौ ॥
एक मास में नगर बसावौ। इतनो कहि अह पाइल आवौ ॥

छं० ॥ ४६७ ॥ रू० २२४ ॥

माल मँगाकर बीसलपुर बसाना और वहां से पीछे फिरना ॥

दूहा ॥ पावासर तेंअर कहे। भरें कोरि कौ भाग ॥
जब ही माल मगाइ करि। नगर बसावन लाग ॥

छं० ॥ ४६८ ॥ रू० ॥ २२५ ॥

जीति येत चहुआन न्टप। चालुक धाय अघाय ॥
फिरि बाहुरि बीसल चल्यौ। बीसल नगर बसाय ॥

छं० ॥ ४६९ ॥ रू० ॥ २२६ ॥

सो संवत नव सत्त अध। बरस तीस कछ अग्ग ॥
पुर पट्टन बीसल न्टपति। राजत सयलह अग्ग ।*

छं० ॥ ४७० ॥ रू० ॥ २२७ ॥

२२३-२२४ पाठान्तर-कें। के। पाइन। साले। २२३ ॥ राजन। राजंच। जानौ। इहं। मेल्हिहू। हो। मैं। बसायौ। बसाउ। पायना आयौ ॥ २४ ॥

२२५-२२७ पाठान्तर-कहे। भरे। भरैं। मंगाय। बसाउन ॥ २२५ ॥ जीती। चहुवांन। चहुवान। न्टप। घाय। फिरि ॥ २२६ ॥ सत। अध। अग्गि। लग्गि ॥ २२७ ॥

* इस रूपक में कहे संवत् के विषय में हमारा टिप्पण १६८ पढ़ो और विचार करो। इस ग्रंथ के रूपक १६८ में बीसलदेवजी के पाट बैठने का संवत् ८२१ कहा है परंतु ख्यातियों में सं० ९३१ भी मिलता है। उन के राज्य करने के वर्ष ६४ कवि ने बताये दिए हैं अतएव यह रूपक पाट बैठने के रूपक १६८में **आठ सै** के स्थान में **नौ सै** अथवा **नव सै** का पाठ होना स्वयम् सिद्ध करता है, क्योंकि जो ऐसा न माने तो ११८ वर्ष का राज्य समय होगा। ख्याति में लिखे बीसलदेवजी के पाट बैठने के संवत् के अनुसार जो लेखा लगाकर हमने टिप्पण १६८ में संवत् १०८६ सिद्ध किया है वही कर्नेल टाड साहब भी नीचे लिखे प्रमाण से अनुमान करते हैं:—

एक दूती का बीसलदेवजी को एक बहुत सुन्दर बनिकसुता की खबर देना ॥

दूहा ॥ बनिक सुता कैामारिका । एक अनूप नरिंद ॥
कामलता दूती कहै । मनों सरद कैा चंद ॥
छं० ॥ ४७१ ॥ रू० ॥ २२८ ॥

बीसलदेवजी का बीसलपुर में प्रविष्ट होना ॥

कवित्त ॥ संवत नव सत अट्ठ । बरष दस तीय सत्त अग ॥
पुर प्रविष्ट बीसल नरिंद । राजंत सयल जग ॥
तिहि पट्टन इक बनिक । मंडि ग्रह राज विवाहति ॥
रषिव देव न्रप सबद । दिष्षि तिय देव इवाहति ॥
जै जै सबद बंदिन नवहि । मागध पुत्र पवित्र मति ॥
अन धन प्रवाह बहु पुहवि परि । बरष्यौ जेम पुरंद गति ॥
छं० ॥ ४७२ ॥ रू० ॥ २२९ ॥

"Mahmood's final retreat from India by Sindh to avoid the armies collected by Byramdeo and the prince of Ajmere," to oppose him, was in A H 417 A D 1026, or S 1082 nearly the same date as that assigned by Chund S. 1086," Vol II, Page 419

इस के सिवाय पाठकों को यह भी विचार करना होगा कि इस समय गुजरात देश के पट्टन का चालुक राजा कौन था कि जिससे बीसलदेवजी का युद्ध हुआ। अतएव हम जैन ग्रन्थ प्रबंध-चिन्तामणि और कुमारपाल-चरित्र आदिक के अनुसार शोध हुए संवत् मूलराजजी सोलंकी से लेकर करण तक के नीचे लिखते हैं:-

१ मूलराज	=	संवत् ९९८ से	५५	वर्ष	राज किया
२ चामुंडराय	=	,, १०५३ से	१३	वर्ष	,, ,,
३ बल्लभराज	=	,, १०६६ से	११॥	मास	६ दिन राज किया
४ दुर्लभराज	=	,, १०६६ से	११॥	वर्ष	राज किया
५ भीम	=	,, १०७८ से	५०	वर्ष	,, ,,
६ करण	=	,, ११२८ से	३२	वर्ष	,, ,,

२२८ पाठान्तर-कोमारिका। कहै। मनहुत॥

२२९ पाठान्तर सं० १६७० की पुस्तक में "सर संवत् नव सत्त। बरष दस पंच सत्त अग" पाठ है। बीसल्ल। नृपति। राज्यंत। तिन। पट्टन। गृह। बिधि। तीय। इवाहि। पुत्त। बहु। पुहमि। पद। पुरिंद॥

इस रूपक के सम्वत् के विषय में टिप्पण १६८ और २२५-२८ और बीसल नगर अथवा बीसलपुर के विषय में टिप्पण १८० और १८२ अवलोकन करो॥

बीसलदेवजी का पीछे अजमेर आना और वहां उन का हास होना ॥

दूहा ॥ इह विधि मंड्यौ राज वरि । जग्य वनिक अजमेर ॥
बरष चयोदस मद्धि वय । भयौ हास सब नैर ॥
छं० ॥ ४७३ ॥ छ० ॥ २३० ॥

वनिकसुता गौरी का पुष्कर में तप करना और बीसलदेवजी का उस पर मोहित होना ॥

पद्धरी ॥ आषाढ मास उज्जास पष्य । दिन तीय सोम बंदन सरुष्य ॥
मटिवाय गज्जि नीसांन गेन । अति उंचि मंडि व्रिप अवधि ऐन ॥ छं० ॥ ४७४ ॥
किलकंत उपल आकाल अभ्भ । विथुर्‌यौ मद्धि जल पहुमि गभ्भ ॥
बिलसंत राज तिय देव साय । निकसै बार कहु एक भाय ॥ छं० ॥ ४७५ ॥
चिहुं कोद घुंमि घन पुब्ब पूर । दिन पांच आनि दरसाइ सूर ॥
रस बार सोम वीरंम दिन्न । ते वंस सेव जन बंद किन्न ॥ छं० ॥ ४७६ ॥
सो षंड मास लगि [illegible] स काज । घर चरे धुंम जल मच्चिर आन ॥
छं० ॥ ४७७ ॥ छ० ॥ २३१ ॥

साटक ॥ स्यामंग रवरंग अंग रवनी । अन्नो सु रंगेसवे ॥
साहंसं सक पाइ राइ मुगता । जुगता सरित्तारए ॥
नीलं वास दनूर बंध विधना । हरि हार धारा तनं ॥
भूमिं संकि सधीन पुन्य तनयं । देवा रहस्यं मनं
छं० ॥ ४७८ ॥ छ० ॥ २३२ ॥

कवित्त ॥ धरतिय हरि उर वास । बास धर उर तिय धारिय ॥
दिग कज्जल लगि धार । धार कज्जल दिग धारिय ॥

---

२३० पाठान्तर—परि । मधि ॥

२३१ पाठान्तर-उजास । पष । रुहष्य । सरूष । मिटिंवाय । गज । नीसांन । गैंन । उंच । वैन । उवल । अभ । विथूर्‌यौ । मधि । पुहमि । गभ । निकसै । चिहुं । घुंमि । पुब । पंच । दरसाई । विरंम । दिन । तें । बंध । किन । स माभ । माभ ।

२३२ पाठान्तर-स्यामांगं । रवनी । पाय । जुगता । सरितारए । विधिना । हार । भूमि ॥

२३३ पाठान्तर-धरतिय उर । धारि । मधि । हिय । रंगिय । नूपर । सा । पुहुम । पहुप । रहस्सि ॥

रच्यौ चार चिय मद्धि । मद्धि चिय चार सु रंमिय ॥
नूपुर पय सो श्रवन । श्रवन नूपुर पय अंगिय ॥
अविसय न पुहुप धन बन रसिय । रसय बनी घन पुष्फ सम ॥
भू इंद रहसि रसि बसि रमिय । बीसल्ल रस भू इंद रम ॥
छं० ॥ ४७९ ॥ रू० ॥ २३३ ॥

पुष्कर की तपस्विनी की बीसलदेवजी के प्रति अरदासि ॥

दूहा ॥ हैां राजन मंगों यहै । सुह मेरी अरदासि ॥
पुहकर की कहै तपसनी । रूप रंग की रासि ॥
छं० ॥ ४८० ॥ रू० ॥ २३४ ॥

अरिल्ल ॥ पिच सनेह सपून सवानिय । देवनि भूमिन सब्ब समानिय ॥
सो रति मान थटे घन डंबर । असय मद्धि निज उज्जल अंबर ॥
छं० ॥ ४८१ ॥ रू० ॥ २३५ ॥

दूहा ॥ उज्जल पष दसमी दिवस । अरु दशरथ के नंद ॥
नयर बंध अरु कंध दस । रचिकें किए निकंद ॥
छं० ॥ ४८२ ॥ रू० ॥ २३६ ॥

दीप माल दीपै सुरग । ग्रह ग्रह मङ्गल अवास ॥
हरिपुर हर मानत मनह चिंतवन चिंतत वास ॥
छं० ॥ ४८३ ॥ रू० ॥ २३७ ॥

बीसलदेवजी का पुष्कर में बनिकसुता गौरी का सतीत्व भ्रष्ट करना और उसका उनको दानव होने का शाप देना ॥

कवित्त ॥ एकादसमी दिवस । देव नर नाग सब्ब मिल ॥
सुर सकव तजि वास । आनि पुहकर प्रसाद चिल ॥
तहां बनिक नंदिनी । पुच्चि गवरी तप मंड्यौ ॥
दिष्षि ताहि बीसल्ल नरिंद । वढि मार प्रचंड्यौ ॥

२३४—३७ पाठान्तर-हैां । इहै । अरदास । दै । तपसनी ॥ २३४ ॥ मुरिल्ल । सवानिय । सवांनीय । संवानीय । सब । समानिय । मांन । मधि । उज्जल ॥ २३५ ॥ नैर । बध । करि । निकंद ॥ २३६ ॥ सुरंग । चिंतवत्त ॥ २३७ ॥

२३८ पाठान्तर एकादशमी । दाव । मिलि । पास । आंनि । चिलि । देवि । द्वादशी । चमू । सब । तितहिं । दिषिति । तहु । मंन । कहुं ॥

द्वादसो दिवस दिन अस्त करि । असद सद्द कीनी न्रपति ॥
जिन निमच दिष्षि तिहि मन दुचित । न चिय राज कछु छिन चिपति ॥
छं० ॥ ४८४ ॥ रू० ॥ २३८ ॥

पद्धरी ॥ वर विमल लोक पुच्कर प्रकास । सुर नर सु नाग रिषि मुनि अवास ॥
धर धरम करम सुभ परम पाइ । जय सुर चवंत गुन अगम गाइ ॥ छं० ॥ ४८५ ॥
तिथि अगनवार दिन कर प्रकास । गय द्वार तपनि करि कपट पास ॥
तन रचित नीर उर ध्यान देव । न्रप मानि रहस करि वर अषेव ॥ छं० ॥ ४८६ ॥
बढि विकल ज्वाल तम धूम नैन । गहि कुस सकुथ्य दइ दुसिष बैंन ॥
धर हरति अंग जल धार भार । इथ पटकि गंग जट समुष पार ॥ छं० ॥ ४८७ ॥
धरि ध्यान ध्यान तिन अगनि ईस । षंडे सु जग्गि तंफे जगीस ॥
रवि पदम पाय सासन सहूढ । उर धरे देव तिन देव गूढ ॥ छं० ॥४८८॥
जुग पानि नाभि तालो लगाय । रमि द्रिष्टि द्रष्टि गिरि बंभ राय ॥
तिर पुटिय भाल शिल कमलमूर । इह भांति ताव तप तपनि जूर ॥ छं० ॥ ४८९ ॥
तप चवल मुक्कि किय विरय काम । कर मंझि राज मुझ आप नाम ॥
छं० ॥ ४९० ॥ रू० ॥ २३९ ॥

दूहा ॥ पुची बनिक सराप दिय । भए पुच्कर नर लोइ ॥
असुर होइ बीसल न्रपति । नरपलचारी सोइ ॥
छं० ॥ ४९१ ॥ रू० ॥ २४० ॥

गौरी का बीसलदेवजी को भयभीत देखकर कहना कि तुम्हारा पोता तुम्हारी सुकीर्त्ति करेगा ॥

दूहा ॥ दिष्षि राज भय भीत तन । तन मन धुजन कथ्य ॥
मो उद्धारन पय गहन । कथ कुसुमन वर कथ्य ॥
छं० ॥ ४९२ ॥ रू० ॥ २४१ ॥

२३९ पाठान्तर–घर । प्रकाश । दिष । करकम । पाय । गाय । अनग । दिन कर । ध्यान । ज्वाल । नैंन । कुश । सकुथ । दय । श्रैन । । बैंन । हरत । पिट्ट । ध्यांन ध्यांन जंगि । तंहे । तंभे । सुरूढ: । पांनि । नाभा । द्रष्टि । द्रष्टि । राइ । तरपटीय शील शिलकमल मूल । नांति । तप प्रबल मुनिं कियय विरय बंम । सराय । तांम ॥

२४०–४१ पाठान्तर–बर्णिक । त्रपति । नर भष्यन करे सोय ॥ २४० ॥ दिषि । तथ । कथ । कुसुम । चर । कथ ॥ २४१ ॥

दूहा ॥ तो सुष सुत उद्दार मति। मति तिन देव प्रकास ॥
घर मंडन डंडन भरन। सो तुम करहु सुवास ॥
छं० ॥ ४९३ ॥ रू० ॥ २४२ ॥

तपस्विनी के कोप से बीसलदेवजी का सांप के काटने से अलोप होना ॥

कवित्त ॥ सपत दिवस अनुसिष्य ॥ सुष्य मधि दिग्ग प्रजारिय ॥
असि विष वड्डन अंग। अगनि गन दनुज उद्घारिय ॥
सहस अह तन बड्ड। भार मुष चार विकारिनि।
सबे असन करि असम। सैब किन चैन निकारनि ॥
आहुट्ट दीह साहुट्ठ मधि। पलप पदम बिन कदम बिन ॥
गुर गवरि ग्यान गन गन्ध करि। रम्य राज्य आरम्भ किन ॥
छं० ॥ ४९४ ॥ रू० ॥ २४३ ॥

दूहा ॥ भय दिवाह आहुट्ठ दुति। तपसरनी कौ कोप ॥
जल बेनी बिहु बाग त्रिष। ते जिन भये अलोप ॥
छं० ॥ ४९५ ॥ रू० ॥ २४४ ॥

जिस तपस्विनी के शाप से बीसलदेवजी असुर हुए उसके तप का आना की मा सविस्तर वर्णन करती है ॥

दूहा ॥ सुनहु पुत्त तिन तपनि तप। भिन्न भिन्न परिमान ॥
जिहि दुसिष्य न्रप असुर हुअ। रच्या सवर बरमान ॥
छं० ॥ ४९६ ॥ रू० ॥ २४५ ॥

धनिक पुच मन भ्रम धरिय। मो पति ताप अपार ॥
जो तप्पह मंडी प्रबल। तौ छुट्टौ संसार ॥
छं० ॥ ४९७ ॥ रू० ॥ २४६ ॥

२४२ पाठान्तर—सुत सुत। उद्दार। मंड ॥

२४३ पाठान्तर—अनुसिष। सुष। दिग। उद भंज्जिय। वार। बिकारनि। सैंन। चैंन। आहुठ। साहुठ। ग्यांन। गन्ह। आरंभ ॥

२४४–४६ पाठान्तर—भये। भए। आहुठ। को कोपु। बिहुं। त्रृप। भए ॥ २४४ ॥ भिंन। भिंन। परिमांन। जिहिं। दुसिष। त्रृप। भय। बरमांन ॥ २४५ ॥ धरीय। मो तन पाप अपार। मो पित ताप अपार। जो तप मंडे निय प्रबल ॥ २४६ ॥

कवित्त ॥ धन अप्पिय सब ब्रह्म । उभ्भर तिय ध्यान सु धारिय ॥
चिंतवि पुब्बकार तिथ्थ । रित्तु ग्रीषम मति चारिय ॥
पंच अगनि वर सीस । मेघ धारा धर मंडिय ॥
बरषा काल्ल पचंड । सीम जल्ल मझ्झि सु बुझ्झिय ॥
छंडिय सु वास संसार सुष । जोति निरंजन उर सचिय ॥
इम कंक नाल्लि मंडिय गगन । पीयै वाम दक्खिन मुचिय ॥
छं० ॥ ४९८ ॥ रू० ॥ २४७ ॥

पद्धरी ॥ पहु समय तिथ्थ वर सजर किन्न । उर नयर धारि तिन भुवन चिन्न ॥
रुष च्यार देव पद भेटि ठौर । मन धरयौ ध्यान सब तिथ्थ मौर ॥ छं० ॥ ४९९ ॥
वढि बाल्ह मास तिन पान कीन । सिर अद्ध उद्ध दिग वरन दीन ॥
सचिवेद अर्धं ह्वि पंच मंडि । दहि दर्प्पं दर्पं मन मथन षंडि छं० ॥ ५०० ॥
विह्वसित्त रगर नन प्रसथ साध । सिर द्रवत उदक विष प्रातमाघ ॥
चब वरष अभ्भ घर धार भूमि । गिरि गुरनि गिरनि गन लूम भूमि ॥ छं० ॥ ५०१ ॥
परि मुद्दं उद्दं उषलंत बिन्द । गहराय वाय दह दिसनि इन्द ॥
घर ह्वरत अंग जल्ल धार धार । ह्वर थटिय गंग जट मुकट पार ॥ छं० ॥ ५०२ ॥
धरि ध्यांन ग्यांन तिन अग्र ईस । षंड्यौ स जग्य मंड जगीस ॥
उर धरे देव तिन अंग गूढ । रचि पदम पाय सासन सरूढ ॥ छं० ॥ ५०३ ॥
जुग पानि नाभि ताली बनाय । रमि दिष्ट सिष्ट गिरवान राय ॥
तरपटी साल्ल सिल्ल कमल्ल म्रूर । इहि भंति भाव तप तपनि जूर ॥
छं० ॥ ५०४ ॥ रू० ॥ २४८ ॥

२४७ पाठान्तर—ब्रंह्म । ताय । ध्यांन । तिथ । रितु । चारीय । शीस । मंडय । शीत । मधि । बुझय । साव । ज्योति । कंक । वांम । दषिन ॥

२४८ पाठान्तर—तिथ । किंन । धार । चिन्ह । ध्यांन । तिथ । थांन । कीन । षंडि । दर्प्पं दर्प्पं । मेन । विहसित । विहसीत । नगन । माघ । अभ्र । अभ । धर । मूम । लूंब्रि । भूंमि । मूट्टं । विंद । गहराव । वाम । दह । दिसा । इंद । भार । सुमुष । ध्यांन । ग्यांन । सरूढ । पानि । शिष्ट । गिरवरन । राइ । मूल । इहिं ॥

इस रूपक के अंत की पांच तुकों का काव्य पिछले रूपक २३९ में भी कह आया है यह चंद की संस्कृत—काव्य—सम शैली का एक उदाहरण है और ऐसे उदाहरण इस महाकाव्य में अनेक आवेंगे । कवियों की ऐसी निज शैलियों को देखकर भाषा के क्षुद्र और अपरिपक्क कवि भट्ट चंद जैसे हिन्दी भाषा के वास्तविक कविराज को दोष देने लग जाते हैं परन्तु संस्कृत भाषा के

कवित्त ॥ देव चरित रमि थांइ । इक्क कर चीय मद्धि धरि ॥
सु रचि तिथ्थ अठसट्ठि । मान पहुकर प्रकास करि ॥
दिग अंबर उर धारि । नारि तारी तप तारनि ॥
मन सुर भाग समान । लाइ राष्षै परि पारनि ॥
वर तप्पै चंद अन दर्प करि । तामस द्रिग विकराल मन ॥
सम गवरि अंग अंग सिष उसिष । न्रपति समंतन असुर बन ॥

छं० ॥ ५०५ ॥ रू० ॥ २४९ ॥

शाप से विमुक्त होने के विचार से बीसलदेवजी का गोकर्ण की यात्रा के लिये बीसल सरवर पर प्रस्थान करना ॥

दूहा ॥ तजि नरिंद अजमेर पुर । चित गोकन चर थान ॥
बीसल सरवर ऊपर । बीसल दिय प्रस्थान ॥

छं० ॥ ५०६ ॥ रू० ॥ २५० ॥

तपस्विनी के शाप से बीसलदेवजी की बुद्धि का चल विचल होना ॥

दूहा ॥ काम कुमत्तौ उप्पनौं । दीय तपसनी स्राप ॥
बीसल दे बुधि चल विचल । प्रगटि पुब्ब कौ पाप ॥

छं० ॥ ५०७ ॥ रू० ॥ २५१ ॥

महाकाव्यादि के पठित विद्वानों को चंद कवि पर तो नहीं किन्तु इन दोष देनेवालों की कुशाग्र बुद्धि पर बड़ा आश्चर्य्य होगा क्योंकि संस्कृत काव्यों तथा अन्य बड़े बड़े ग्रंथों में प्रायः ऐसे उदाहरण मिलते हैं। देखो माघ के चतुर्थ सर्ग के २१ वें श्लोक में सहरितानसमानवांशुकः। दो बार प्रयुक्त हुआ है और रघुवंश के दूसरे सर्ग के श्लोक ३१ की अंत की पंक्ति चित्रार्पितारम्भइवावतस्थे ॥ कुमारसंभव के तीसरे सर्ग के ४२ वें श्लोक में भी महाकवि कालिदासजी ने ऐसाही प्रयोग किया है ॥ तथा रघुवंश के सातवें सर्ग के ६ठे श्लोक से लेकर ग्यारहवें ११ तक के सब श्लोक जैसे के तैसे कुमारसंभव के सातवें सर्ग के सत्तावनवें श्लोक से बासठवें तक महाकवि कालिदासजी ने प्रयोग किये हैं ॥

२४९ पाठान्तर-द्वार । इक । रहिय । रहीय । मधि । तिथ । अठसठि । मांन । उधारि । समांन । रषे । पारन तप्पे । तप्पे । अंग अंग ॥

२५०—५१ पाठान्तर—तजिं । नरेंद्र । चिंत । गऊकन । थांन । उपरे । प्रस्थांन ॥ २५० ॥ कांम । कुमतो । ऊपनों । दिय । तपशिनी । सराप । कों ॥ २५१ ॥

बीसलदेवजी को सांप का काटना और उससे उनका मरना ॥

दूहा ॥ वार रवी तिथि सत्तमी। चल्लि रथ सुतर मतंग ॥
तिहि बेरां आयौ कहै। डेरा मॉहि पनंग ॥

छं० ॥ ५०८ ॥ रू० ॥ २५२ ॥

कवित्त ॥ देषि राज करि क्रोध। बान को दंड धरिय कर ॥
बेधि पनग फन जिक्कि। पर्यौ धर तरफत बेसिर ॥
कुट तिहि बेर मतंग। षेल देखन कौं धायौ ॥
एक मोजरी मद्धि। पनग फन आनि लुकायौ ॥
फिरि राय आय चेंवर चढ्यौ। पहरत मोजे पग डस्यौ ॥
भवितव्य वात आघात गति। इतनी कहि राजन षस्यौ ॥

छं० ॥ ५०९ ॥ रू० ॥ २५३ ॥

दूहा ॥ औषद मंच अनंत जप। कितने करे उपाय ॥
ज्यौं ज्यौं तन लहरत चढत। त्यौं त्यौं दुचितौ राय ॥

छं० ॥ ५१० ॥ रू० ॥ २५० ॥

कवित्त ॥ राज मरन उप्पनो। सब्ब जन सोच उपन्नौ ॥
पट रागिनि पावार। निकसि तब ही सत किन्नौ ॥
तिन मुष इम उच्चर्‌यौ। होइ जदवनि सपुत्तय ॥
मो असीस इह फुरो। तुम्म भोगवहु धरत्तिय ॥
जिन रथी मद्धि ऊठे असुर ॥ षषे ज्वाल तिन मुष विषय ॥
नर भषय जहां लसकर* सहर। मिलै मनिष ते ते भषय ॥

छं० ॥ ५११ ॥ रू० ॥ २५५ ॥

२५२ पाठान्तर—तिथ। सपतमी। तिथि। कहो। डेरां। मांहि। माहि। पवंग ॥

२५३ पाठान्तर—बांन। दंड। नाग। छिक। बेंसिर। कुट्यौ। सं० १७७० और १६४७ में "मिलि राजन मोजरीय"। को। आयौ। मधि। पनंग। आंनि। आय राय ॥

२५४ पाठान्तर—उषद। उपाइ। ज्यों ज्यों। लहरी त्यौ त्यौ। दुचितो ॥

२५५ पाठान्तर—ऊपनो। उपनो। उपंनो। निकसी। कीनो। इस। उचर्‌यौ। सपुतय। सपुतह। फुरैं। भोगवो। धरतय। इन। मधि उठे। भषे। शहर। मिले। मनुष भषे।

* हि० लसकर (SK. लश To be skilful or clever, to do anything skilfully and scientifically or लष To play or sport, to work and कर Who or that does, makes or causes.) Hence a camp or cantonment &c.

बीसलदेवजी के मरण और असुर हो नर-भक्षण करने की बात सुनकर सारंगदेवजी का अपनी रानी को रणथंभ भेजना और आप उन से युद्ध करने को तयार होना ॥

दूहा ॥ सुनिय बात तो तात तब । दों पठई रिनथंभ ॥
मंच वहि तिन तेग बल । जुद्ध जुरन आरंभ ॥
छं० ॥ ५१२ ॥ रू० ॥ २५६ ॥

सारंगदेवजी की रानी गवरी का चिंता करना ॥

दूहा ॥ उन गति मो गति हुक्क होइ । कै अवगत्ति मिलंत ॥
वास मिटै दुष को सबै । हुवय चित्त मो चिंत ॥
छं० ॥ ५१३ ॥ रू० ॥ २५७ ॥

सारंगदेवजी का सेना लेकर ढुंढा राक्षस से युद्ध करने को अजमेर पहुँचना ॥

दूहा ॥ एक सहस भरि सथ्थ करि । सबल सकर दिय फेरि ॥
दै निसान चहुवान चढि । पहुँचिय गढ अजमेर ॥
छं० ॥ ५१४ ॥ रू० ॥ २५८ ॥

सारंगदेवजी का तीन दिन कोट में रहना, वहां असुर का न मिलना और अजमेर की भ्रष्ट और भयानक दशा देखकर चिंता करना ॥

कवित्त ॥ अति उद्यान सब थान । भये मढ धाम भयानक ॥
दिष्ट देखि सारंग । देव चिंते तब बानिक ॥
ताकै कुल उपनीय । तपनि हम कौ कुल षोयौ ॥
तात पुकारे नीर । भरे नैनह घन रोयौ ॥
दिन तीन रहत हुअ कोट मधि । असुर नयन दिष्यौ नहिय ॥
तब सुचित भए सारंग दे । पुरी बसाऔं इह कहिय ॥
छं० ॥ ५१५ ॥ रू० ॥ २५९ ॥

५६–५८ पाठान्तर—वत्त । तों । मो । रन । वंद्रि । बर । जु ॥ १५६ ॥ हन । हुक । हुव । कें । अवगति । चित्त ॥ २५७ ॥ भर । सथ । निसांन । चहुआंन । चहुवांन । पहुंचिय ॥ २५८ ॥

२५९ पाठान्तर—उद्यांन । थांन । धांम । बांनिक । ताकै । नेंनन । रहेत । बसावौ । बसावौं । कहीय ॥

सारंगदेवजी और उनके पिता ढुंढा दानव का परस्पर युद्ध होकर सारंगदेवजी का मारा जाना ॥

कवित्त ॥ एका दसमी दिवस । प्रात दानव पुर आयौ ॥
सकल सेन लै सस्त्र । उठि लरिबे कौं धायौ ॥
वे बाहैं तरवारि । दुहैं मुष पकरि सु कट्टै ॥
ज्यों बेली द्रुम सघन । देषि मरकट फल चुट्टै ॥
किय पिता पुत्त जुध सम असम । गिर सौ जनु सारँग गियौ ॥
मन जानि असुर नर घुसि रह्यै । सब ढुंढा ढुंढत फिर्यौ ॥
छं० ॥ ५१६ ॥ रू० ॥ २६० ॥

२६० पाठान्तर—दशमी । सैन । शस्त्र । उठि । कों । बाहे । ज्या । चुट्टैं । किय पिता पुध सम अरु असम । सो सारं ॥

पाठक महाशयो ! चंद की वर्णन की हुई बीसलदेवजी की यह दानव कथा आपको अद्भुत मालूम होगी और इस में कुछ संदेह भी नहीं है कि मनुष्य मरकर फिर दानव नहीं हो सकता और न ऐसे चरित्र कर सकता है कि जैसे चंद ने वर्णन किए हैं। देखो अद्भुत वही पदार्थ है कि जो स्वयम् तो अद्भुत हो और दूसरों को अद्भुत ही प्रतीत हो परंतु जो आप किंचित् सूक्ष्म विचार करें तो आप को ज्ञात होगा कि चंद ने जो कुछ कहा है वह सत्य है अर्थात् जो आप को अद्भुत मालूम होकर असत्य निश्चय होता है वह वास्तविक सत्य ही है। जब तक मैं जो कुछ अंत में आप को कहना चाहता हूं वह नहीं कहूंगा तब तक मेरा यहां तक का कहना भी आप को अद्भुत ही प्रतीत होगा और यह वास्तव में है भी ऐसा ही क्योंकि जब तक कोई ताला कि जिस का खुलना विचार करने से भी कठिन दीखता हो और वह ऐसी सरलता से खुल न जाय कि जैसे कि "एक तिनके की ओट पहाड़" तो वह निःसंदेह अद्भुत ही प्रतीत होगा। खैर अब आप चंद की इस कठिनता के ताले को इस कुंजी से खोलकर अद्भुत वस्तु को देखिये, कि जो कुछ वृत्त चंद ने बीसलदेवजी की दानव कथा में लिखे हैं, वे सब उनके जीवन समय में बरते थे अर्थात् वे बाजीकरण की औषधियों के खाने, कुकर्मों के करने और सांप के काटने से बहुत ही पागल हो गये थे और उन्होंने इस पागलपने में अपने इकलौते पुत्र सारंगदेवजी तक को अपने हाथ से मारडाला था और राज्य को नष्ट भ्रष्ट कर दिया था। इस वृत्तान्त को चंद ने अपनी काव्य शास्त्र संबन्धी विद्वत्ता दिखाने के लिये अद्भुत रस में लिखा है। अब आप इस प्रसंग को ध्यान देकर पढ़के समझ लेंगे कि महाकवि चंद ने ठीक अद्भुत रस लिखा दिया है। यह आप के ध्यान में होगा कि ग्रंथकर्ता ने पृष्ठ ४३ छंद ८३ कलम ३९ में कि जो चंद की अनेक कठिनताओं के खोलने की कुंजियों के गुच्छों में से एक बड़ा भारी गुच्छा है उस में कवि ने इस महाकाव्य को "नवं रसं" से नव रसों में लिखा कहा है कि अब यह हमारा काम है कि इस हिन्दी भाषा के महाभारत में से नवों रसों के प्रसंग खोज कर निकालें। भला, जो हम इस अद्भुत

आना की मा का उसे कहना कि मनुष्यों को ढूंढ ढूंढ कर खाने से ढूंढा नाम पड़ा और उसने रम्य अजमेर को वेराम कर दिया

दूहा ॥ ढुंढि ढुंढि षाये नरनि । तातैं ढुंढा नाम ॥
देवपुरी अजमेर पुर । रम्य करी वेराम * ॥
छं० ॥ ५१७ ॥ रू० ॥ २६१ ॥

आना का माता से कहना कि अभी जाकर मैं उसे मार आऊं ॥

दूहा ॥ मात सुनौ तपसिन बचन । अह दिय असिस पवारि ॥
अबहि जाय अजमेर गढ । अरि कौं आऊं मारि ॥.
छं० ॥ ५१८ ॥ रू० ॥ २६२ ॥

गवरी का आना को अमंतन मंत कहकर शिक्षा करना ॥

दूहा ॥ गवरि अमंतन मंत कहि । रष्षसि तोहि कुमार ॥
अरि रष्षस भर नग्ग में । प्रजा राज संघार ॥
छं० ॥ ५१९ ॥ रू० ॥ २६३ ॥

कवित्त ॥ गवरि मात सिष्षवै । पुत्त आनल्ल इहि सिष्षिय ॥
मानव सौं मानवह । भिरंत दानव न पिष्षिय ॥
बहुत काल बहि गए । भरे जंगल्ल धर पूरन ॥
म्रग मयंद पंडियहि । छंडि पंषिय पति सूरन ॥
जं जीव हर्जि मानुल्ल धरह । भंजन घट भंगन करहि ॥
उर धरनि और रष्षस कहा । आनिन रष्षस उर भरहि ॥
छं० ॥ ५२० ॥ रू० ॥ २६४ ॥

ऐसी अन्य कथाओ को जो आगे आवेंगी अद्भुत रस में लिखी हुई न मानें तो फिर आप विचार करें कि अद्भुत रस क्या होता है और उसका लेख कैसा होता है। मेरी सम्मति में तो चंद ने जहां जहा जो जो रस लिखा है वह ऐसा ही उत्तम लिखा है कि यदि हम उसको न भी मानें तथापि हमको लाचार होकर उसे वहा संज्ञा देनी पड़ती है जैसे कि यहां हम अद्भुत रस में लिखी हुई यह दानव कथा न भी मानें तथापि हम को यही कहना पड़ेगा कि यह अद्भुत बात है कि मनुष्य मर कर दानव नहीं होता न ऐसे चरित्र कर सकता है ॥

* विराम से वेराम बना मालूम होता है ॥

२६१—६२ पाठान्तर—ढूंढ । षाए । तातें । नाम । वे रांम ॥ २६१ ॥ दीय । असीस । अबें । जाई । कूं । कों । आंऊं ॥ २६२ ॥ मत । कहि । रषसि । अहिर रकस भर नगंम ॥ २६३ ॥

२६४ पाठान्तर—सिषवै । पुत्र । सिषिय । सों । मानव । दांनव । नह । पिषिय । म्रग । पंषि । पंष जीवनहु तजि मानुस घरह । रषस । गहंत । आंनन । रष्यस । करहि ॥

दूहा ॥ उव्वरि मान समंत हुच । जीवन मरन न सिद्ध ॥
दुहुं बिधि घर बासन करौ । आराधन कि विरुद्ध ॥
छं० ॥ ५२१ ॥ रू० ॥ २६५ ॥

पुत्त अमंत जु सिष्यौ । सिष्यौ उरह दहंत ॥
ढुंढो नर ढुँढै भषन । तू सेवनह कहंत ॥
छं० ॥ ५२२ ॥ रू० ॥ २६६ ॥

आना का माता से कहना कि या तो मैं सिर समपूंगा या छत्र धारूंगा ॥

दूहा ॥ तब आनल ऐसी कहिय । सुहि सुभिक्षय यह बत्त ॥
कै सिर उनहि समप्पि हौं । कै सिर धरिहौं छत्त ॥*
छं० ॥ ५२३ ॥ रू० ॥ २६७ ॥

आना का माता से कहना कि सेवा ऐसी है कि जिस से सब कार्यसिद्धि होती है ॥

कवित्त ॥ सेव देव रंजियै । सेव रष्षस बसि सब्बह ॥
सेव सिंघ पत्तियै । सेव विष जरै न जल्लह ॥
सेव बैर भंजियै । सेव रज्ज पति पाहन ॥
सेव दहै नह दहन । सेव बहु द्रव्य उपावन ॥
जिहिं सेव देव रष्षस धरहि । जियन मात तन जाइ नन ॥
आम्हढ ढुंढ धावत भषन । नहि सु देव नहि दानवन ॥
छं० ॥ ५२४ ॥ रू० ॥ २६८ ॥

२६५-६६ उचरि । सु मंच । सिद्धि । दुहुं । बर । करौ । करो ॥ २६५ ॥ पुत । सिषियो । सिष्यौ । भखन ॥ २६६ ॥

* यह रूपक सं० १६४७ और १६६० की पुस्तकों में नहीं है और जब तक वह किसी और प्राचीन लिखित पुस्तक में न मिले तब तक हम उसे प्रसन्नतापूर्वक क्षेपक संज्ञा नहीं प्रदान कर सकते ॥

२६७ पाठान्तर-सुक्रिय । बत । कें । उतहि । हो ॥

२६८ पाठान्तर-रंजीजे । न सेव सिंध पत्तिये । जलह । भंजीये । रचे । सेवह नह दहन । द्रिव्य । जिहि । नह । सो नह ॥

आना की माता का तो उसे शत्रु न सेवने को कहना किन्तु उसका अजमेर जाना ॥

दूहा ॥ मात बरज्जत रत्त हुअ । सत्रु न सेव न सेव ॥
आइ अनल अजमेर बन । असुर निरष्षन भेव ॥
छं० ॥ ५२५ ॥ रू० ॥ २६९ ॥

ढूंढा दानव का अजमेर बन में बहुत दिनों तक मन्तु होकर रहना ॥

सो दानव अजमेर बन । रह्यौ दीह घन अंत ॥
सुन्न दिसानन जीव को । थिर थावर जग मंत * ॥
छं० ॥ ५२६ ॥ रू० ॥ २७० ॥

अजमेर की नष्ट भ्रष्ट दशा और आना का खड्ग लेकर प्रेत के पास जाना ॥

त्रोटक ॥ तहँ सिंघ न स्रग्ग न पंषि वनं । दिसि सून भई डर जीव घनं ॥
नह मानह मंत अमंत कियं । पिय की धरनी रह तंत लियं ॥ छं० ॥ ५२७ ॥
तहँ ठाम भयानक सोच तयं । तहँ ठाम कला कल सोधि वयं ॥
तिहँ ठाम भरं नर नारि ननं । तिहँ ठाम न पंथिय पंथ कनं ॥ छं० ॥ ५२८ ॥
तिह ठाम गजं वर बाजि ननं । तिहँ ठाम न सिद्धय साथ कनं ॥
तिहँ ठाम न दारिद द्रव्य गनं । हिय मात न तात न मोह मनं ॥ छं० ॥ ५२९ ॥
लय षग्ग रमक्किय प्रेत दिसं । बर बीर सु संडिय चित्त रसं ॥
अविलंघ करो सकरं विषमं । रिपु थान सपंत सु भै न मनं ॥ छं० ॥ ५३० ॥
नर दिष्ष अचंभ कियौ सु हियं । कहि आज बिधं भल भष्य दियं ॥
कुध प्यास रु निंद्य राज ननं । सु गयौ वर दानव ताप तनं ॥
छं० ॥ ५३१ ॥ रू० ॥ २७१ ॥

२६९—७० पाठान्तर-बरज्जत । रत । आय । अनल । निरषत ॥ २६९ ॥ सून । सुवा । इथिर ॥ २७० ॥

* हिं० मंत=सं० मन्तु=राजा से बना है । यहां यह मंत्र का अपभ्रंश नहीं है ॥

२७१ पाठान्तर-तहां । तहं । मृग । उर । वनं । मसु । पोयको । तत । तत्ति । लीयं । तहां । तिहां । ठांम । भयांनक । तहां । ठांम । तिहां । ठांम । तिहां । ठांम । नमं । तिहा रुक्क सु पंथि रु पंथि जनं । तिहां । ठांम । तिहां । ठांम । तिहां । ठांम । द्रव । लै । लग । रु । मुकिय । अविलंब । थांन । संपत । सपत्त । दिषि । कीयौ । कोई । कोई आज भलो इह अप दियं । वुध । न निद्रय । दानव ॥

आना का अपने मन में विचार कर कहना ॥

श्लोक ॥ मनसाधार्यं पुंसा स्याद् । विधिश्चिंतति नान्यथा ॥
ब्रह्माज्ञा लंघनेनापि । स्वयंपूरकमाधवः ॥ छं० ॥ ५३२ ॥ रू० ॥ २७२ ॥

कवित्त ॥ सो पूरक माधव्व । जगत जानन अधिकारिय ॥
थावर जंगम दैन । कठिन चिंता न विचारिय ॥
सरब भूत है जाम । मध्य हरि दैन भुगत्तिय ॥
किं कारन नर झुरे । देइ मन बंछित बत्तिय ॥
सा पुरस चित्त धरकै बची । धरक चित्त कायर करहि ॥
जिहि काज देषि हानव बलिय । बल बलिष्ट पुन उच्चरहि ॥
छं० ॥ ५३३ ॥ रू० ॥ २७३ ॥

२७२ पाठान्तर—स्यात् । विधिचिंतति । ब्रह्माज्ञा । माधव ॥

हमारे पाठकों को ज्ञात होगा कि इस ग्रंथ को कृत्रिम बना हुआ कहनेवालों ने ऐसा अत्यन्ताभाव का वचन भी कहा है कि इस महाकाव्य के बनानेवाले को अनुस्वार और विसर्ग तक का भी ज्ञान न था । परंतु हमने इसी ग्रंथ में और इसी आदि पर्व में इस रूपक के पहिले आए हुए संस्कृत भाषा के श्लोक आप की दृष्टि के आगे धरे हैं कि आप न्याय कर सकें और ऐसे श्लोक आगे इस ग्रंथ में बहुत आवेंगे क्योंकि हमने इस महाकाव्य को कई आवृत्ति करके पढ़ा है । वैसे ही इस श्लोक को भी आप पढ़कर देखें कि पढ़ने में तो यह कैसा सरल है और अभिप्राय में कैसा विद्वानों के विचारने योग्य है । साधारण संस्कृत जाननेवाले से यह श्लोक लगना कठिन है अतएव हम उसका अन्वय नीचे संस्कृत भाषा में भी लिखते हैं—

अन्वयः ॥ पुंसा मनसा आधार्यं यत् स्यात् तत् स्वयंपूरक—माधवः, विधिः ब्रह्माज्ञालंघने नापि चिन्तति अन्यथा न चिन्तति ॥

अर्थ । पुरुष करके मन से धार के जो काम हो सकता है उसको स्वयं पूरा करनेवाला परमेश्वर (विधि) दैव विधान वा कर्म ब्रह्मा की आज्ञा को उल्लंघन करके भी सोचता है अन्यथा अर्थात् उससे उलटा नहीं सोचता ॥

सारांश यह है कि उद्योग के अनुसार ही फल दैव भी देता है चाहे प्रारब्ध उससे उलटी भी हो । इससे केवल उद्योग की प्रधानता कही है ॥

हे पाठको ! क्या आप के अपक्षपात से विभूषित हृदय में यह दोष कुछ भी जच सकता है कि इस महाकाव्य का कर्त्ता चाहे कोई भी हो ऐसा निर्बोध था कि जिसको अनुस्वार और विसर्ग तक का बोध न था ?

२७३ पाठान्तर—सें । माधव । जांनन । अधिकारीय । देन । दैंन । विचारीय । सर्व । जांम । दैंन । देन । भुंगतिय । देव । नहीं । जिहिं । दानव । उचरहि ॥

आना का दानव को कंदरा में देखना और उसके खड्ग मारने पर दानव का गाजना ॥

पद्धरी ॥ दिष्यौ सु बीर कंदला गेह । सैं पच हथ्थ ता हथ्थ देह ॥
असि असो हथ्थ झारहि झनंक । मन सचत पाइ ता डर षनंक ॥ छं० ॥ ५३४ ॥
अग्रोष्ट उद्ध जठिय भनंक । उठतै सु रोमनि सनंक ॥
बुल्यौ सु बैन निय सत्त मान । देषंत चष्ष बालक विनान ॥ छं० ॥ ५३५ ॥
अति सुषम वचन मधु मधुर कंत । दिष्यौ सु अंस राजन सुभंत ॥
जंभाइ बीर दसनं लहक्क । उट्यौ सु रोम रोमह पहक्क ॥ छं० ॥ ५३६ ॥
उर चंपि षग्ग सिर नाइ राज । गहराय इंन्द्र दानव सु गाज ॥
छं० ॥ ५३७ ॥ रू० ॥ २७४ ॥

इस पर दानव का आना से उसके मा बाप आदि के नाम पूछना ॥

कवित्त ॥ भेद वचन तन पेद । सुतन पंडुर चढि आइय ॥
उष्ट धरहर कंपि । सुतन प्राक्रम जंभाइय ॥
चरन सु थिर मन लीन । जीव धर धर धर कांनिय ॥
कौन भाव कवि चंद । बन्निय सात्वक रस भांनिय ॥
पुच्छन सु बाल बुल्यौ बलिय । करि सु चिंत अतिंत चित ॥
को मात तात कहि नाम को । को सांईं साधक सु मति ॥
छं० ॥ ५३८ ॥ रू० ॥ २७५ ॥ *

ढुंढ दानव का आना के सिर पर हाथ धर गल्ह पूछना ॥

दूहा ॥ खरग हथेली वाम पर । ढुंढै मेलि अनल्ह ॥
करुना करि सिर हथ्थ धरि । पूछि विवर सब गल्ह ॥
छं० ५३९ ॥ रू० ॥ २७६ ॥ *

---

२७४ पाठान्तर—कंदरा । येह । हथ । हथ । हथ । पाय । टोइर । उठिय । रोमह । बैन । सत । भांनि । चपु । विनीन । सूषम । वाचन । कांति । राज राजन । जंभाय । हसनं । लहक । नांह । गहरा इन्द्र द्रा दानव कि माज ॥

२७५ पाठान्तर—दुर दुर । कंप । प्राकंप । प्राकंम । धरा धर । कांनीय । कोम । भाइ । भांनीय । पुछन । बुल्यो । चित । अत्यंत । चिंत । कुमति ॥

* इस के आगे के पर्यात रूपक २७६ से २७८ तक सं० १६४७ और १७७० की लिखित

गाथा ॥ असुर वयेसी चंदं। विसतारं कही यह यथा ईसं ॥
मुकता फल परिमानं। ता मध्ये सोषीयं आना ॥
छं० ॥ ५४० ॥ रू० ॥ २७७ ॥ *

आना का मन में चिंता करना कि जो ढुंढा मुझे निगलेगा तो मैं उसका पेट चीरकर निकलूंगा ॥

दूहा ॥ आनें चिंतिय राम। जो मुषि ढूंढा निगलिहै ॥
इंद्र ब्रतासुर जेम। निकसैां उदर बिदारि पग ॥
छं० ॥ ५४१ ॥ रू० ॥ २७८ ॥ *

आना का उत्तर देना कि जिससे बीसलदेवजी का मन मैन होगया ॥

दूहा ॥ गवरि मात उर उद्दर्यौ। पित बीसल मन मैंन ॥
इत आवन मन तरसयैा। सूत्र तन देषन नैंन ॥
छं० ॥ ५४२ ॥ रू० ॥ २७९ ॥

साटक ॥ किं दारिद्र सु दुष्ट कुष्ट तनयं। किं भूमि सचू षरं ॥
किं वनिता च विदोग दैव विपदा। निर्वासितं किं नरं ॥
किं जन मानस रुष्ट जुष्ट जुगता। किं आपितं सद्गुरं ॥
किं माता स्रित रंग भंग सरसां। आलंगता सुंदरो ॥
छं० ५४३ ॥ रू० ॥ २८० ॥

पुस्तकों में नहीं हैं किन्तु इधर की लिखी पुस्तकों में मिलते हैं। जब तक इन से भी पुरानी पुस्तकों में ये रूपक न मिलें तब तक उनको हम क्षेपक कहना योग्य नहीं समझते हैं।

२७६ पाठान्तर—करग। कर। गह। थैली। मोहू। अनल्ल। हुय॥

२७८ पाठान्तर—ढुंढा। निकसों। बिहारी॥

† यह आज कल सोरठा छंद कहलाता है किन्तु प्राचीन समय में हिन्दी भाषा के कवि इसको दोहा भी कहते थे क्योंकि दोहे के जितने भेद भाषा के छंद ग्रंथों में लिखे हैं उन में सोरठा भी है अतएव चंद का इसे दूहा संज्ञा देना कुछ आश्चर्यदायक नहीं है॥

२७९ पाठान्तर—प्रल। मैंन। आवनम। सुम। नैंन॥

२८० पाठान्तर—सचु। दैवविश्रपदा। निर्वासितं। मांनस। जुगता। जगता। सतगुरं। सरसा। आलिंगिता॥

यह भी ध्यान में रहने योग्य बात है कि पुरानी हिन्दी भाषा की लिखित पुस्तकों में सूत और नृप जैसे शब्द सित और निप लिखे देखने में आते हैं॥

साटक ॥ नो दारिद्र न कुष्ट दुष्ट मनं । लघू जरा नो परं ।
नो वनिता च वियोग दैव बिपदा । निर्वासितो नो नरं ॥
नो सन्मानस कष्ट भ्रष्ट जगता । नो आपिता सत् गुरं ॥
मातुर्नोम्रित रंग भंग सरसा । ना लिंगिगा सुंदरी ॥
कं० ॥ ५४४ ॥ रू० ॥ २८१ ॥

दूहा ॥ ना दारिद्र न कुष्ट तन । ना मुगधा रस भेव ॥
नानुरत्त संसार सुष । नो पग रत्तो सेव ॥ कं० ॥ ५४५ ॥ रू० ॥ २८२ ॥

साटक ॥ नैवां दुष्य न सुष्य साहस रने । नैवांन कालं क्षतं ॥
नैवां मात पिता न चैव धनयं । नैवांन किती रतं ॥
नैवांनं चित्त मित्त साजन रसं । नैवांन नं हृष्टयं ॥
त्वं देवं तुम सेव देव मरनं । तोयं जयं राजयं ॥
कं० ॥ ५४६ ॥ रू० ॥ २८३ ॥

दूहा ॥ जब लगि कुष्ट दरिद्र तन । तब लगिं लघु मुचि गात ॥
जब लगि चैां आयौ नहीं । तो पाइन सेवात ॥
कं० ॥ ५४७ ॥ रू० ॥ २८४ ॥

दानव का आना से पूछना कि तू क्यों राज अरत्त है ॥

दूहा ॥ आलिंगन दै हथ्य धरि । अरु पुच्छिय इह बत्त ॥
जा जोवन रत्तौ जगत । तू क्यौं राज अरत्त ॥
कं० ॥ ५४८ ॥ रू० ॥ २८५ ॥

आना का बीसलदेवजी दानव को उत्तर दे कहना ॥

दूहा ॥ जिय न रत्त नह एन दुष । भूमि न घर मुझ देव ॥
तिन उचाट निउं कै मरौं । तुम पय रत्तौ सेव ॥
कं० ॥ ५४९ ॥ रू० ॥ २८६ ॥

---

२८१ पाठान्तर—नां । धरा नं । ना । विनता । नां । ना । ता । सन्मांनस । आपिता । गुरुं । मातुर्नोम्रित ॥

२८२ पाठान्तर—न । न मुगद्ध । नांनुरत । नारतु । तुम पग रत्तो सेव ॥

२८३ पाठान्तर—दुष । सुष । रस । चितं । मित । सज्जन । तुं । तुय ॥

२८४—८५ पाठान्तर—जब । हूं । नहीं । तो ॥ २८४ ॥ दे । हथ । पुछिय । रत्तौ । सो तू केम अरत्त ॥ २८५ ॥

२८६ पाठान्तर—रत । नहि । भूमिम । लिहिं । ओकं । विउं । कि । मरौं । पै । रत्तौ ॥

दूहा ॥ राजा ज हिन बुल्लाइ कै । मुष सुझ्झै इह मत्त ॥
कै सिर मुम दि समप्पि चैां । कै सिर धरि चैां छत्त ॥
छं० ५५० ॥ रू० ॥ २८७ ॥

इह धरनी मुझ्झ पित्त प्रपित । आदि अनादि सु देव ॥
सो मंगन तुम पाय चैां । आयौ आतुर सेव ॥
छं० ॥ ५५१ ॥ रू० ॥ २८८ ॥

ढूंढा दानव का प्रसन्न होकर आना को अजमेर का राज देना ॥

चोटक ॥ सु प्रसन्नह देषित दैत तनं । नर रूप धरन्न कियौ सु मनं ॥
तुअ पुत्तह पौच बधू उरनं । जन मानस राज करौं धरनं ॥ छं० ॥५५२॥
असि हथ्थ लियै असमान गयौ । पग टोडर कंदन ही जु ठयौ ।
तब पुज्जन कौं रविवार कह्यौ । चहुआन सु आनल राज दयौ ॥
छं० ॥ ५५३ ॥ रू० ॥ २८९ ॥

ढूंढा का आना को राज देकर गंगा की ओर उड़कर जाना ॥

दूहा ॥ दयौ राज आनल्ल गढ । उडि ढुंढा षह मग्ग ॥
दिसि गंगा तब गमन किय । उत्तर चिषा अति लग्ग ॥
छं० ॥ ५५४ ॥ रू० ॥ २९० ॥

ढूंढा का नेम ऋषि के उपदेश से गंगा की ओर जाते हुए दिल्ली पहुंचना ॥

पद्धरी ॥ नव द्वार रुक्कि नप पवन जोर । आयौ सु नेम रिष तथ्थ ठौर ॥
दिषि रिष्ष लग्गि निरुषर सु पाय । कहि रिष्ष कवन तो काय ॥ छं० ॥५५५॥
बीसलह राज कथि पुब्ब कथ्थ । जरौं ताप उधरौ केम तथ्थ ॥
तुअ षिचि कौन इह ठांउ धारि । कासी सु जाइ लै तिथ्थ धार ॥ छं० ५५६॥
लैं पाय कोन आनन्द मर्म । तिहि ठौर स्रब्ब कुहै सु कर्म ॥
सुनि स्रवन उड्डौ राषिस अकास । आयौ सु पंथ जमि दिल्ली वास ॥ छं० ॥ ५५७ ॥

२८७-८८ पाठान्तर-जा । दिंन । मुहि । सूझै । मसि । कैं । हों । कें । हूं । हों । छत्र ॥
२८७ ॥ प्रमित । हों ॥ २८८ ॥

२८९ पाठान्तर-प्रसंनह । धरंन । कीयौ । मांनस । करौं । हथ । असमांन । कूं । पूजन ।
कों । चहुयांन । चहुआंन । आंनल ॥

२९० पाठान्तर-दीयौ । आनलहुं । कीय ॥

सुर थान निगम बोधष सुरंग । जल जमन आइ राषिस स्रमंग ।
कालिन्द्र दह सु अनि मधर वारि । पावन्न परम सीतल सु चारि ॥

छं० ॥ ५५८ ॥ रू० ॥ २९१ ॥

ढूंढा का हारिफ ऋषि से मिलना, अपनी पूर्व कथा कहना और तीन सौ अस्सी वर्ष महातप करके ऋषि उपदेश ग्रहण करना ॥

कवित्त ॥ सीतल वारि सु चंम । तहां गय चलि निसाचर ॥
लगि पिआस स्रम अंग । वारि पिन्नौ अंदोलि बर ॥
भैा सीतल सब अंग । करै अति वारि विहारह ॥
रिष हारिफ गुह बसै । होर सुनि आय निहारह ॥
दिषि प्रबल रिष्षि पूछ्यौ प्रसन । कवन रूप कीनै सु जल ॥
निसि मद्धि अद्ध राषिस वचहि । पाइ परस पुब्बह सकल ॥

छं० ॥ ५५९ ॥ रू० ॥ २९२ ॥

दूहा ॥ ढिंग जुग्गिनिपुर सरित तट । अचवन उदक सु आय ॥
तहं इक तापस तप तपत । बोली ब्रह्म लगाय ॥

छं० ॥ ५६० ॥ रू० ॥ २९३ ॥

कवित्त ॥ तासी पुछिय ब्रह्म । दिष्षि इक असुर अदभ्भुत ॥
दिग्घ देह चव सीस । मुष्ष करुना जस जप्पत ॥
तिन रिषि पूछिय ताहि । कवन कारन इत अंगम ॥
कवन थान तुम नाम । कवन दिसि करिव सु जंगम ॥

२९१ पाठान्तर नैंम । नथ । तथ । ठार । रिष । लागि । पाइ । रिषि । बीसलह कथ कथि राज कथ । जोरां । उहुरीं । नथ । तुव । कोंन । रहि । ठाउ । जाउं । ल्यौ । तिथ । आनंत । आनत । अधम्म । तिहिं । ठौरि । स्रव । ति । क्रम्म । उझो । बिलि । सुर सुर । थांन । आय । राषिस्रमंग कालिंद । पावन । परंम । सू सारि ॥

२९२ पाठान्तर-तिहां । चलि । सु निसाचर । स्रम । पीनो । अंदोलि । भय । सब्ब । बेह । करैं । रिषि । पुछ्यौ । कीनो । मद्धु । वचहि । पाय परसि गध अप्प सकल ॥

२९३ पाठान्तर तहां । आइ । लगाई । लगाइ ॥

२९४ पाठान्तर योसिय । ब्रंह्म । दिषि । अदभुत । दिग्घ । चषु । रस जंपत । पुछिय । थांन । नांम । करीय । नांम । नृपति । आप । लभीय दरस । तजन । भ्रम ॥

सो नाम ढुंढ बीसल्ल नृपति । पाप देह लभ्मिय द्दत ॥
कुट्टन सु तेह गंगा दरस । तजन देह जन मंत ह्नत ॥

छं० ॥ ५६१ ॥ रू० ॥ २९४ ॥

दूहा ॥ तजन देह जन मंत ह्नन । सजन अजैपुर राज ॥
निम तन ऋषि वर पंडि चैां ॥ मधि गंगा रिषराज ॥

छं० ॥ ५६२ ॥ रू० ॥ २९५ ॥

तन सु पाप तापह तपन । किम उधार मो होइ ॥
तुम रिषिराज वसिष्ट वर । द्यो उपदेसह मोइ ॥

छं० ॥ ५६३ ॥ रू० ॥ २९६ ॥

तब मुनि वर ऋषि यौं कहिय । बिन तप लहिय न राज ॥
अन धन सुत दारा मुदित । लहै सबै सुष साज ॥

छं० ॥ ५६४ ॥ रू० ॥ २९७ ॥

तब सु तहां उपदेस लिय । लगि धारन करि ध्यान ॥
तपत तप्प नित रिषि गुहा । अंग उपज्यौ ग्यान ॥

छं० ॥ ५६५ ॥ रू० ॥ २९८ ॥

रिष सु उट्ठि तीरथ गयौ । दरी सु दानव ढंढि ॥
जौ लौं आऊं तिथ्य करि । तौ लौं तू तप मंडि ॥

छं० ॥ ५६६ ॥ रू० ॥ २९९ ॥

गाथा ॥ तपत निसाचर तप्पं । बीते बरष तीन सै असीयं ॥
भय बाधा बिन अंगं । लग्गौ राम धारना ध्यानं ॥

छं० ॥ ५६७ ॥ रू० ॥ ३०० ॥

दूहा ॥ ढुंढा रिषि उपदेस लिय । तिहि दिग दरिय उघोर ॥
बरष तीन सत असिअ लगि । महा प्रबल्ल तप घोर ॥

छं० ॥ ५६८ ॥ रू० ॥ ३०१ ॥

२९४–९९ पाठान्तर–ह्नन । है । हों ॥ २९५ ॥ सोह । सोइ ॥ २९६ ॥ यो । लहैं । सबैं ॥ २९७ ॥ उहां ध्यांन । तप तप्पै । अंग अंग उपज्यो ग्यांन । अंग उपज्यो ग्यांन ॥ २९८ ॥ ऊठि । दांनव । लों । आऊं । मिय तूं ॥ ॥

३०० पाठान्तर–हनिचर । तापं । सें । भै । बादक सब अंगं । लागौं । ध्यान ॥

३०१ पाठान्तर–तिहिं । गहरीय । बरष तीन से असीय लगि । ऊस प्रबल ॥

अनंगपाल राजा का दिल्ली बसाना ॥

दूहा ॥ पंडव बंस अनंग न्रप । पति हथिनापुर ठाम ॥
एक समै जमुना तटह । वसिय राज तहं गाम ॥
छं० ॥ ५६९ ॥ रू० ॥ ३०२ ॥

अनँग पाल तुंअर तहां । दिल्ली बसाई आनि ॥
राज प्रजा नर नारि सब । बसे सकल मन मानि ॥
छं० ॥ ५७० ॥ रू० ॥ ३०३ ॥

अनंगपाल की सुता का निगमबोध कालिंदी तट पर गौरी पूजने जाना ॥

कवित्त ॥ अनंग पाल तूंअर । नरिंद धरमाधि राइ गुर ॥
सुता तास अति सुभग । बरष अठ्ठह सरूप बर ॥
सषी सु आनि समानि । सील गुन वर अठ्ठह नर ॥
सावन भावन मास । गविरि नित करै पुज्ज उर ॥
निगम-बोध कालिंदि तट । गई सकल पूजन गवरि ॥
तिहि काल मेघ ब्रष्षह प्रबल । * भई लग्गि भींजन कुँअरि ॥
छं० ॥ ५७१ ॥ रू० ॥ ३०४ ॥

अनंगपाल की सुता का ढूंढा को पूजना और उसका कारण पूछना ॥

कवित्त ॥ अनगपाल न्रप सुता । संग पुत्री नि पंच सित ॥
प्रोहित पुत्री एक । पुच्छि सा चंडि सेव चित ॥
सब मिलि जमना तीर । गई अस्नान सवारिय ॥
दिषि देवल स्नत पिंड । तेह ढुंढा नप धारिय ॥

३०२-३ पाठान्तर ठाम । यमुना । तहां । गांम । तोअर । दिल्लि । आनि । प्रजा । बसे सकल तहां आनि । मांनि ॥

* भई लग्गि भींजन=यह प्राचीन हिन्दी का वाग्रीति अर्थात् मुहावरा है ॥

३०४ पाठान्तर—तूअर । राय । अठह । सषी आनि समांग । आंनि । समांनि । सील । अठोतर । सावन । स पुज वर । निगमोध । कालिंद्रि । गइ । वरषि । लगि । भींजन । कुवरि ॥

३०५ पाठान्तर—अनगपाल पुत्री सु एक । सष साथिणी पंसच सत । पंच सत । ता मह । मंहि । जमुना । सपु स्नान । मृत । तिहि । ढुठा । धारीय । पूजा । करीव । दय । दैत । पूज्यो । तिनहि ॥

सब मिलि सु ताहि पुज्जा करिय । वरष पंच दुअ मास दिन ॥
दिन अवधि दइत पूछिय तिनह । को तुम कारन काम किन ॥
छं० ॥ ५७२ ॥ रू० ॥ ३०५ ॥

अनंगपाल की सुता का ढूंढा को वर चाहने को पूजने का कहना ॥

गाहा ॥ इह सुनि अनंग नरिंदं । पुत्री सित पंच अवर दुज राजं ॥
बर चाहत तुम पासं । ए वर बीर वास इक ठामं ॥
छं० ॥ ५७३ ॥ रू० ॥ ३०६ ॥

ढूंढा का राज-त्रियों की सेवा से संतुष्ट होना ॥

दूहा ॥ दिल्ली ढिग गह्वरिय गुफा । ढूंढा तहां बयट्ठ ॥
अट्ठोत्तर सौ राज त्रिय । सेवा करत सु तुट्ठ ॥ छं० ॥ ५७४ ॥ रू० ॥ ३०७ ॥

ढूंढा का वर देकर काशी को उड़ जाना ॥

पद्धरी ॥ दिय बाच बाल दानव सु राज । सउज्यौ सु अप्प वर बचन साज ॥
उडि चल्यौ अप्प कासी समग्ग । आयौ सु गंग तट कज्ज जग्ग ॥ ५७५ ॥
सत अट्ठ षंड करि अंग अप्पि । होमे सु अप्प वर मद्धि षप्पि ॥
मंग्यौ सु ईस पहि वर पसाय । सत अट्ठ पुत्र अवतरन काय ॥ ५७६ ॥
तन रच्यौ जोति मय देव थान । मिलि ताहि अच्छरिय करत गान ॥
छं० ॥ ५७७ ॥ रू० ॥ ३०८ ॥

ढूंढा का फिर जन्म लेना और उसका वृत्तान्त चंद का वर्णन करना ॥

दूहा ॥ इम आतम उद्धार करि । जनम लियो भुअ आइ ॥
सो हतंत कवि चंद कहि । बरन्यौ कवित बनाइ ॥ छं० ॥ ५७८ ॥ रू० ॥ ३०९ ॥

ढूंढा का वर देना और काशी में यज्ञकर तन त्यागना ॥

दूहा ॥ तब ढूंढा वर दान दिय । सुनि सत अट्ठ प्रसन्न ॥
कासी जाय रु जग्य किय । मित्त षंड किय तन्न ॥ छं० ॥ ५७९ ॥ रू० ॥ ३१० ॥

---

३०६ पाठान्तर—अनंग । पुत्ता सय । काम वास ॥

३०७ पाठान्तर—ढिल्ल । गुफ । ढुंढा । बयठ । अठोत्तर । सो । तुठ ॥

३०८ पाठान्तर—दीय । दानवह । स । अप । पवन । चल्यो मग । समग । अज्ज जग । अठ अप्पि । स । मधि । हवि । सब्ब । स । पसाई । पसाइ । अट्ठु । अठ । अवतार । कार । ज्योति । थांन । अच्छरीय । थांन ॥

३०९—१० पाठान्तर—उधार लीयो । भूय । आइ । वृतांत । चंदनं । बरन्यौ सकल बनाय ॥ ३०९ ॥ ढुंढै । बरदांन । अठ । कीय । सत्त । कीय ॥ ३१० ॥

ढूंढा के दानव शरीर का मान और स्वरूप वर्णन ॥

कवित्त ॥ अंगह मान प्रमान। पंच सैं हथ्थ उने कह ॥
हूह उंचौ उनमान। विनय लक्छिनह विवेकह ॥
हथ्थ षडग विकराल। मुष्य ज्वालघन सद्दह ॥
आनल दिन्नो राज। गयौ राषिस मन मद्दह ॥
जोगिनिय गुफा बोधह निगम। तप आदर किन्नो सु तन ॥
साधंत पवन तप उग्र करि। इम रष्यौ उद्दार मन ॥
छं० ॥ ५८० ॥ रू० ॥ ३११ ॥

ढूंढा का दिल्ली में पाषाण रूप हो जाना और स्त्रियों का उसे पूजना ॥

कवित्त ॥ असी बरस सत तीन। गुफा किन्नौ तप भारिय ॥
बैस वंस षिचित्र ध्रम। भरै जमुना जल नारिय ॥
सारंग वज्ज्यौ वाउ। घटा बंधे जल वुट्टौ ॥
दौरी सब गुह मभ्भ्क। रूप पाषान सु दिट्ठौ ॥
मिलि नारि सबन अचरिज्ज करि। जल धोए उज्जल कस्यौ ॥
साषंड धूप दीपह चरिच। सित मन सिद्धौ आचस्यौ ॥
छं० ॥ ५८१ ॥ रू० ॥ ३१२ ॥

ढूंढा का अनंगपाल की सुता को वीर पुत्र होने का वर देना ॥

कवित्त ॥ दिय बीसल बरदान। कुष्य उपजै माहा भर ॥
बीर रस उत्तान। जुद्ध मंडै न कोइ नर ॥
बीर जोति अवतार। भट्ट जिह्वा तन भारिय ॥
नयन जोति संजोगि। पत्ति कुल पिता संघारिय ॥

---

३११ पाठान्तर–कवि अग। मान। प्रमांन। हथ। उन। लछनह। हथ। मुष। आनल। दीनो। जो गिनीय। कीनो। पवन। रष्यौ॥

३१२ पाठान्तर–असी। बरष। शत। कीनै। भारीय। षत्री अधम। षित्रीय अधंम। षित्रिय अध्रम। भरे। जमना। भारीय। नारीय। सारंग। बज्यौ। वज्यौ। वाय। बधे। वुठै। दोरी। मझ। सुद्विठै। दीठै। आरज। धोय। उजल। तन मनि सुधि आचर्यौ। तन मन सुधि आचर्यौ॥

३१३ पाठान्तर–दीय। बीशल। बरदांनि। कुष। कुष्य। उपजे। महा। रस। उत्तांन।

दिष्ष सु नयन पुह करि प्रसिध । कियौ पाप हन भूव करि ॥
उप्पजै नारि अति रूप तिन । तेन त्रिम्न जायै सु घर ॥
छं० ॥ ५८२ ॥ रू० ॥ ३१३ ॥

ढूंढा का वर देकर काशी जाना, वहां दानव-योनि से मुक्त हो अवतार लेना-सोमेसर के परिग्रह के प्रबंध के लिये क्षत्रियों का उत्पन्न होना-जिन में से बीस अजमेर में और अन्य अन्यत्र हुए-सोमेस के पुत्र पृथ्वीराज हुए ॥

कवित्त ॥ वर दिनौ ढूंढा नरिन्द । जाय कासी तट सिद्धौ ॥
अस्त लियौ अवतार । भट्ट रसना रस पिद्धौ ॥
सोमेसर परिगह । प्रबंध सित उपने षिचि नर ॥
हुए बीस अजमेर । विए उप्पने अपर धर ॥
सोमेस बीर सुत पिथ्थ हुअ । ठौर ठौर ऊपजि वल्लिय ॥
बिधि विधि बिनान अवलोक गति । अवर सूर आए मिल्लिय ॥
छं० ॥ ५८३ ॥ रू० ॥ ३१४ ॥

पृथ्वीराजजी के परिग्रह के सामंतों के नाम और जन्म स्थानादि का वर्णन ॥

कवित्त ॥ हुअ निभ्भर कनवज्ज । जैत सलष अब्बूगढ ॥
मंडोवर परिहार । करषि कंगुर चाहुलि दिढ ॥
वलि भद्र सु नागौर । चंद उप्पजि लाहौरह ॥
दिल्लिय अत्ता ताइ । बिया घर सामत सोरह ॥

ज्योत । । जीट्ठा । भारीय । पति । संघारिय । संधारीय । देषे । प्रसिट्ठ । कीयो । दूब । उप्पजी नारी । उपनी । तेन लिन जाइ सुधिर । तेन लिंन जासै सुधर ॥ *

३१४ पाठान्तर-दीनो । दीधो । सिधो । सिधो । अस्ति । लीयो । रशना । रश । सोमेशर । परिग्रह । सित । सस्त । उप्पने । षित्र । हूए । भये । बीए । बीरा । ऊपने । अवर । पिथ उपजि । विनांन । आय मिलीय ॥

* पाठकों को इस रूपक को फिर सावधान होकर पढ़ना चाहिये क्योंकि कवि इस रूपक से पृथ्वीराजजी के जन्मादि की कथा की भूमिका बांधकर यह वर्णन करता है ॥

राम दे राव जालौर धर । गोइंद गहु धामनि ग्रसै ॥
दाहिम्म बयानै उप्पनौ । प्रिथिराज परिघह बसै ॥

छं० ॥ ५८४ ॥ रू० ३१५ ॥

३१५ पाठान्तर—निभर । चिभर । कनवज । जेन सल्लष अबुगढ । हाहुल्लि । उपज्जि । धता ताप । समता रांमदे शोरह । गढ । दाहिंम । बयाने । प्रिथीराज । परिगह ॥

इस रूपक से कवि ने पृथ्वीराजजी के सामंतों के नाम और उनकी उत्पत्ति के स्थानादि का वर्णन करना प्रारंभ किया है । यह विषय पुरातत्ववेत्ताओं के ऐतिहासिक शोधों में बहुत उपयोगी होने जैसा है, किन्तु इस ग्रंथ के अकृत्रिम होने में भी एक प्रमाण रूप हो सकता है और यह भी भले प्रकार ध्यान में रखने जैसी बात है कि यहां चंद अपनी उत्पत्ति लाहोर की अर्थात "चंद उप्पज्जि लाहोरह" कहता है । इस महाकाव्य में बहुत से पंजाबी भाषा के शब्द मिलने से पुरातत्ववेत्ता विद्वान चंद की जन्मभूमि के विषय में पंजाब देश का अनुमान किया करते थे और पंजाबी अति वृद्ध पुरुष भी अपने देश के महाकवि चंद का नाम वंशपरंपरा से आज तक सुनते चले आते हैं परंतु अब हमको इस बात का निश्चय हो गया और पंजाब देश हिन्दी भाषा के काव्यों की अनुक्रमणिका में पहिली संख्या पर जा स्थापित हुआ क्योंकि अब तक इस महाकाव्य से प्राचीन कोई अन्य काव्य नहीं उपलब्ध हुआ है । कोई कोई विद्वान जो यह कहते हैं कि चंद कवि का होना केवल इसी महाकाव्य से विदित होता है, उनको अजमेर नगर के कैसरगंज में **चांद बावड़ी** अपने नेत्रों से देखनी चाहिये और चंद के पुरुषाओं का बनाया हुआ **भाटाबाव** भी उसी नगर में तारागढ को जाते हुए दृष्टिगोचर करना उचित है जो अजमेर के भाटों के कबजे से निकलकर बहुत समय तक टोंक के नव्वाब साहब के अधिकार में रहे हैं । फिर उन्होंने एक मोची को **चांद बावड़ी** दे दी थी । अब म्युनिसीपैल कमेटी ने उस की चारों ओर की दीवार बना दी है और इस बावड़ी के चारों ओर एक बगीचा भी था जिसका हांसल कुछ थोड़े दिनों तक म्युनिसीपैलीटी में जमा होता रहा है और अब वह बगीचा काटकर वहां बस्ती बसा दी गई है । चांद बावड़ी में नीचे उतरते दहिने हाथ की दीवार में प्रशस्ति का स्थान बना है जिसके पाषाण लेख को एक ८३ वर्ष का मुसलमान फकीर कर्नैल टाड साहब का ले जाना कहता है । इस के महाबारदान द्वार के दोनो ओर एक एक पत्थर के फूल खुदे हुए हैं कि जिसको अंग्रेज़ी में lotus अर्थात् कमल की जाति का फूल कहते है । यह फूल शिल्पशास्त्र के सिद्धान्तों में विज्ञ विद्वानों को बावड़ी की अति प्राचीनता सूचन करनेवाला दृष्ट आवेगा । चंद के विषय में कुछ और भी प्रमाण हमारी रचित **पृथ्वीराज रासे की प्रथम संरक्षा** में पाठक देख लें । इस महाकाव्य में प्रायः फारसी शब्द भी प्रयुक्त हुए है उन के विषय में हमने अन्यत्र कई एक प्रमाण प्रकाशित किये हैं । परंतु यह भी विशेष करके हमारे पाठकों के ध्यान में रहने जैसी बात है कि चंद जिस समय लाहोर में उत्पन्न हुआ था उसके १०० सौ वर्ष पहिले से वहां **महमूदी सन्तान** का राज्य था । फिर क्या कोई यह अनुमान कर सकता है कि उस समय की हिन्दी में एक भी फारसी भाषा का शब्द नहीं मिल सकता था ? इन रूपकों में जिन जिन सामंतो के नाम आये हैं उनका पूरा पूरा वर्णन हम ग्रंथ के पूरे छप जाने पर लिखेंगे क्योंकि अभी हमारा काम केवल मूल पाठ शोधकर प्रकाशित करने का है ॥

पद्धरी ॥ उतपत्ति वास सामंत चंद। पाधरी छंद अन्नै सु बंद ॥
दस तीन हुए दिल्ली प्रमान। हरिसिंघ बसै गढ्ढे बयान ॥ छं० ५८५॥
जैसलह मेर अचलेस भान। पज्जून बसै चीतोर थान ॥
कलि कुंड हुआ जंघार भीम। चहुआन आन रष्षैत सीम ॥ ५८६ ॥
षड षान कोरि लग्गो सु पाइ। चहुवान सु वर सामंत राइ ॥
समियांन गढ्ढ नरसिंघ राइ। पित मात कोरि आए सु भाइ ॥छं०॥५८७॥
देवरा धीर रिनधीर सथ्थ। पल्हिवान देस प्रिथिराज तथ्थ ॥
जंघार भीम गढ जून वास। किन्नो सु जुद्ध भीमंग आस ॥ छं० ॥ ५८८ ॥
लग्गौ सु लेस लिन्नौ दिलेस। सारंग राइ मोरी नरेस ॥
बारडह राइ सहसी करन्न। अभिर बसै गढ आसमन्न ॥ छं० ॥५८९॥
जुध करै जित्त कन्हाति राइ। चहुआन सूर उप्पारि घाइ ॥
सेवक्क कीन अप्पै सु जोर। तेजल्ल जोड वासी जुनेर ॥ छं० ॥ ५९० ॥
कैमास सहि बलवंत बीर। लग्गो सु साइ चहुआन धीर ॥
नारन्न सूर भटनेर वास। प्रिथिराज पाइ कीनी सु आस ॥ छं० ॥ ५९१ ॥
भौंहा चंदेल गजनीय सेव। लग्गो सु घाव भूभंत तेव ॥
उप्पारि लियौ सामंत राव। कीनी सु सेव अप्पह सु भाव ॥ छं० ॥ ५९२ ॥
अरमी चदेल मार्यौ सकज्ज। भौ हा चंदेल दीनो सरज्ज ॥
पानीय पंथ उत्तन्न देस। दीनौ सु फेरि दिल्लि नरेस ॥ छं० ॥ ५९३ ॥
कनवज्ज राइ भूभंत नाम। रष्यौ सु अप्प कलि जुग्ग नाम ॥
चालुक्क पाट भोरा भुअंग। रष्यै सु कचरा पिथ्थ रंग ॥ छं० ॥ ५९४ ॥

३१६ पाठान्तर—उतपति। उत्तपत्ति। वाश। बानैत। चंद बानैति। बंध। दश। हुए। प्रमांन। गढह। बयांन। जेशलह। जेसल्लह। भान। पांजुन। पूजन। बसे। थान। कूंड। हूवे। हुवे। चहुवांन। चहुआंन। आंन। रषैति। आनर रषैति। आन्डे। लग्गा। सू। पाय। चहुवा न राई राय। समीयांन। गढ। राय। कारि। भाय। निरधीर। रनधीर। पल्हिवांन। देश। प्रिथीराज। पृथीराज। सथ। जूंन। वाश। कीनो। सू लिन्नौ। दिलेश। राय। नरेश। राय। सह। सो। करंन। आसमंन। करे। जित। कन्हांनराय। चहुंआन। उपार। उप्पार। सेवक। क्कोन। अपै। ते जल। जुनैार। सहु। लग्गा। पाय। चहुंआन। चहुंवांन। नरंन। वाश। प्रिथीराज। पाय। सू। भोहा। भोहा। गनीय। बूंदी राज्य के पुस्तकालय की पुस्तक लिखी सं० १९५४ में लग्गो—तेव के स्थान में "दस षप्प अप्पह सु भेव" कासी पाठ है। और छंद ५९१ पिछली तुक उस में है ही नहीं। लग्गा। भुभंत। उपारि। लीयौ। किन्नी। चंदेल। सकज। भोहा। भौंहा। चंदल। सूरज। सुरज्ज। पांनीय। उतन। उतंन। देश। सू। नरेश। कनवज राज भुभंत तांम।

जाषलो जल्ह दष्षिनी देस। प्रिथिराज राइ किन्नौ प्रवेस ॥
समनंज नागर दीनौ उतन्न। पूरन्न माल प्रिथिराज तन्न ॥छं०॥५९५॥
सुरत्ति वास चहुआन राइ। कन्नौ सु भ्रात रष्यौ सु दाइ ॥
बडगुज्जरबराम अन्नी नरेस। दिन प्रत्ति षान भंजै सदेस ।छं०॥५९६॥
मुक्कले दूत प्रिथिराज तथ्थ। सेवा सु पाइ उप्पर सु हथ्थ ॥
प्रिथिराज साहि दो देस दिद्ध। माहन षान अन्नी प्रसिद्ध ॥छं०॥५९७॥
करि वास तब्ब गुज्जर निसंक। मारयौ षान आलोल बंक ॥
हड्डा हमीर नैन बारिद्ध। लग्गे सु पाइ दष देस दिद्ध ॥छं०॥५९८॥
षेता षंगार है भ्रात राइ। परठौ दु कान्ह देसं सु भाइ ॥
दिल्लीय देस गुड्डा सु मंडि। रष्यै सु वास भट सुभट झुंड ॥छं०॥५९९॥
परमार कनक जैचंद वास। किन्नौ सु पूंन इक पाचि दास ॥
लिय पाच यच्छौ प्रिथिराज देस। लग्यौ सु पाइ आयौ नरेस ॥छं०॥६००॥
सांषुलौ सूरसमल मान पथ्थ। तप करन अनंगह गयौ रथ्थ ॥
लग्यौ सु पाइ प्रिथीरज आइ। दीनौ सु देस षटूय साइ ॥छं०॥६०१॥
अवतार लियो दिल्ली नरेस। तब हुए सत्त सामंत भेस ॥
छं०० ॥ ६०२ ॥ रू० ॥ ३१६ ॥

कवित्त ॥ ढुंढा नाम * दानव उतंग। दिषे फन्न अंब बिसालं ॥
बंदि लीन नृप राज। आय फिर गेह सु चालं ॥
सत्त भाग कह्ह अग्ग। बंटि दिय भ्रत्त समानं ॥
तिनह सूर सामंत। कित्ति रष्षन चहुवानं ॥

जुग। फगं। नांम। चालूक्क। रष्यं। पिथ। रष्ये सुकचराषिय रंग। जावल्ले जल्ल द्रिषिनीय।
देश। दषनीय। प्रिथीराज। राय। कीनो। दीचौ। उतंन। पूरन मान। प्रथीराज। तंन।
सूरति। त्रात। वडगुज्जर रांय। अली। नरेश। सुदेश। मुकले। पृथीराज। तब। पाय। सु।
प्रिथीराज। देश। दिध। षली। प्रसीद्ध। तब। गुजर। मारीयै। हाडा। हामा। हमीर।
नेन। लगे। पाय। षेतल षंगर। पाियौ। दैमां। भय। द्रिलिय। दलीय। देश। गूढा। भट्ट।
जैद। पाचदास षहो। प्रथीराज। देश। आये। मानि। पवि। करित। रिषि। प्रथीराज।
आय। कीनो। षटूच। लीयौ। दिली। सिस ॥

३१७ पाठान्तर–कुंढुं (नाम * विशेष है) उतग। बिसालं। गेहे। सु चालं। भय। भृत।
समानं। चहुंआंन। कलि प्रथम। अमिय प्रकास। सगह। रंक। सधंत। बयत। संतत ॥

रजमेल चंद फल अमिय प्रथु। सबर साषि मोषन सु गहु॥
इकदस समंत पंचह समै *। भए थान पंचम सु पहु॥
छं०॥ ६०३॥ रू० ३१७॥

आना राजा का उजड़ी हुई अजमेर को फिर बसाकर राज करना॥

दूहा॥ अनल आनि मानह मिल्यौ। कहि सब बत्त सुनाइ॥
लोग महाजन संग लै। भूमि बसाई जाइ॥ छं०॥ ६०४॥ रू०॥ ३१८॥

पद्धरी॥ आना नरिंद अजमेर वास। संभरीय कीन सोभन्न रास॥
नियनाम कह्यौ आना नरिंद। अरि धरनि बीर मंड्यौ सु दंद॥छं०॥६०५॥
ग्रामान ग्राम तोरन उतंग। बन बढ्ढि कढ्ढि निधि निधि पुरंग॥
पसु पंषि सद्द स्रुत मंडलेन। जल न्हान दान ब्रह्मन सु देस॥छं०॥६०६॥
धारम्य रम्य फिरि मंडि लोइ। दालिद्र दीन दीसै न कोइ॥
चौघहि ‡ सत्त बरषं प्रमानं। आना नरिंद नपि चाहुवान॥ छं०॥ ६०७॥

जैसिंह जी का गद्दी पर विराज राज करना॥

धग ध्रम्म देस दिय पुत्र हथ्य। जैसिंघदेव नपि राज तथ्य॥
छिति छत्र सीस जैसिंघदेव। निधि लई बीर बीसल्ल धनेव॥ छं०॥ ६०८॥
बिंटु लीय बीर आना नरिंद। बीसल्ल तडाग मधि द्रव्य कंद॥
पायौ न बीर तिन द्रव्य छेह। कंचनह काम मंडाय गेह॥ छं०॥ ६०९॥
सब द्रव्य दीन तिन विप्र हत्थ। भंडार भरिय धन ध्रम्म वत्थ॥
स्रुति सुनहि स्रवन जंपत पुरान। साधरम करम चलि चाहुवान॥छं०॥६१०॥
कलि नीति गहन्न गहि मुक्कि। कुल रीति चित्त रंचक न चुक्कि॥
सो बरस अठ्ठ नप राज कीन। आनंद देव सिर छत्र दीन॥छं०॥६११॥

---

* यह पाठ हमने सं० १८५९ की पुस्तक का रक्खा है किन्तु सं० १६४७, सं० १७७० और सं० १८४५ की में "इक दस संवत पंचह समै" है। इनमें से जिसे विद्वान ठीक समझें उसे ग्रहण करें॥

३१८ पाठान्तर—अनिल। अनि। सुनाय। लोग। बसाईय। बसाइय। जाय॥

३१९ पाठान्तर—आनां। नरिंद। नरंद। संभरीय। सोभंन। राशि। नांम। आनां। मंड्यौ तोरन। बढि। कढि। पुरंगं। पंष। सद्दस्तुत। मंडलेस। न्हान। दांन। धारंम्य। मंड। लोई। लोय। दारिद्र। हीन दीन। दीसे। कोई। चौ घड़ी। सत। प्रमांन। नरिंदं। चहुवांन। ध्रम हथ। हथ्य। तथ। छत्रसीस। जेसिंह। निध। बीर सल। धनेव। बंटुलीय। बिटलीय।

आनन्दमेवजी का राज करना ॥

नर्रा नष्पि तेज आनन्द मेव । बराह रूप दिष्षौ सु देव ॥
धरनी विचार आयास साद । मंड्यौ सु राज पहुकर प्रसाद ॥छं०॥६१२॥
सो * वरष राज नप अंत कीन । सिर छत्र सोम पुत्तह सु दीन ॥

सोमेश्वरजी का सिंहासन पर बिराज राज करना ॥

सोमेस सूर गुज्जर नरेस । मालवी राज सब षग्ग षेस ॥ छं० ॥ ६१३ ॥
माहू बजाइ महीम थान । षग सोमि लई बल चाहुवान ॥
डिल्लेस व्याह तोंवर घरेस । तिह प्रभ्भ भयौ पीथल नरेस ॥छं०॥६१४॥
आनन्द राज नंदन सु सोम । मोरिया हनि तिन कियौ होम ॥
निय पुर सु नयर सुर लग्गि षोम । आनन्द कोलि अजमेर भोम ॥
छं० ॥ ६१५ ॥ रू० ॥ ११९ ॥

सोमेश्वर जी की शूरता का संक्षिप्त वर्णन ॥

कवित्त ॥ जिहि सोमेसर सूर । सूर जित्त षुरसानी ॥
जिहि सोमेसर सूर । चढिवि गुज्जर धर मानी ॥
जिहि सोमेसर सूर । लियौ नाहर परिहारिय ॥
बल उप्पम कवि चंद । चंद राहा जिम मारिय ॥

नरिंद । छेह । देह । कांम । गेह । येह । दिन । भडार । श्रवन सुनहि । जपत । पुरान । चाहु-वांन । गहव । गहव मुकि । कलि । रीत । चित । रचक । चुकि सो । चढ । तिहो । नपि । रूप्प । देष्यौ । सहू । प्रसद । सो । सोम । सोमैय । श्र । गुजर । षग । षैन । माहू । बजाय । भट्टी । थांन । लर । कंठ । चाहुवांन । दिलेस । दिल्लेस । तुंवर । घरेश । गर्भ । यम । पित्थल । पीथ्थल । नरेश । मोरीयां । दल । दलह । कीयौ । नैर । लाग । कल ॥

* चौपट्टू मत्त—इस के सिवाय कोई दूसरा पाठ हमारे पास की पुस्तकों में नहीं मिलता किन्तु कोई कोई वृद्ध कवि चौसट्ठि मत्त करके मूल में पाठ होना कहते हैं और उससे ६४+७=७१ वर्ष की संख्या निकालते हैं और कोई १०० वर्ष और चार घड़ी और कोई ७ वर्ष और चार घड़ी का वाचक पाठ कहते हैं किन्तु ऐसे सब स्थल पक्षपातरहित विद्वानों के सूक्ष्म विचार करने योग्य हैं।

• इस सो शब्द का पाठ किसी किसी पुस्तक में सै भी है जिससे वर्ष की संख्या के समझने में बड़ी गड़बड़ हो जाती है। यह स्थल भी विद्वानों की बुद्धि को श्रम कर देने जैसा है। यदि कोई शुद्ध अंतःकरण से पूर्वापर का लेखा लगा देखेगा तो वह चंद कवि की संवत संबन्धी कठिनता के ज्ञान का बहुत प्रबल होगा ॥

१२० पाठान्तर—जिहिं । सोमेश्वर । जिने । षुरसांनी । चढे । चढे । मांनी । भांनी । लीयौ । परिहारी । परिहारीय । बलि । उपम । राहां । मारी । मारीय । बैरम । होरि । राठौर । बर । षां । मइ । गुजर । गूजर । गजयौ ॥

भर बीर धीर धारह धनी। संभरि वैरिन भंजयौ ॥
इक दौरि गौर राठौर भर। वा भड गुज्जर गंजयौ ॥
छं० ॥ ६१६ ॥ रू० ॥ ३२० ॥

दिल्ली के राजा अनंगपाल जी पर कमधज्ज का चढ़ना ॥

कवित्त ॥ ढिल्लीवै आनंग। राज राजंन अभंगं ॥
ता उप्पर कमधज्ज। सेन सज्जी चतुरंगं ॥
आज आलस आभून। पुट्ठि बंधे भज पत्तं ॥
ता पुट्ठे विजपाल *। सुभर सज्जै रन मत्तं ॥
गजगेज गाज नीसान ढल। मनु मसंत रंखिय सिपन ॥
करि कूच कूच उप्पर चल्यो। वेध अंतर सपन ॥
छं० ॥ ६१७ ॥ रू० ॥ ३२१ ॥

कमधज्ज की चढ़ाई सुन अनंग का कालिंदी उत्तर मुकाम करना ॥

कवित्त ॥ सुनो बत्त आनंग। अंग लग्गो रस बीरह ॥
भ्रकुटि वक्र रत्त द्रिग्ग। चित्त जुध रत्त सरीरह ॥
बोलि मित्त अप्पान। कहिय सू बात मन गुन ॥
चढत राइ दिल्लेस। करिय नीसान बीर धुन ॥
गज बाजि रथ्थ पइ भर गहर। सजिय सेन सनमुष चलिय ॥
उत्तरि कलिंद्रि मुक्काम किय। दस दिसान वत्ती सलिय ॥
छं० ॥ ६१८ ॥ रू० ॥ ३२२ ॥

---

* स्मरण में रखने की बात है कि सांप्रत शोधों के अनुसार भी कन्नौज के राजा विजयपाल जी, दिल्ली के राजा अनंगपालजी और अजमेर के राजा सोमेश्वर जी परस्पर समकालीन थे ॥

३२१ पाठान्तर–ढिली। ढिल्लावे। राजग। अभंगम। कनवज। सजा। चतुरंगम। अंग। भय। पुठिं। पुठि। बंधे। पंत। पंत। पुठे। पुठिं। विजेपाल। सजि। मसं। मंत। नीसांन। ढल्ल। मनो। वसंत। रखय। सिपन। कुच २। उपरि। धरहि। धरहिं। वाद। वेद्ध। संपन ॥

३२२ पाठान्तर–सुनिग। सूनिग। बत। लगौ। लग्गो। रस। भृगुटि। वक्र। द्रिग रत। चिंत। भूत। अप्पांन। सबांन। स बांन। ढिलेश। निसांन। धुनि। रथ। पय। सम मुष। संमुष। उतरि। कलिंद्रि। मुकांम। दस। दसांन। वती। सलीय ॥

कमधज्ज की चढ़ाई सुन सोमेस का अनंग की सहायता को दिल्ली जाना और वहां पहुँच अनंगपालजो से एकान्त में मंत्रणा करना ॥

पद्धरी ॥ संभरिय बत्त संभरि नरेस । आभासि चित्त अप्पां असेस ॥
कमधज्ज राज तोंवर नरिंद । मत्तौ सु दुनै आवद्द दंद ॥ छं० ॥ ६१९ ॥
अप्पन सहाय सज्जां सपूर । बैठक ग्रेस नष्ट धम्म सूर ॥
करिकैं सु जीति आवें अपान । कै सजैं बास कैलास थान ॥ छं० ६२० ॥
मब्बेव सूर भर मंत्र वाम । घुम्मरे नद्द नीसान ताम ॥
चढ़ि चल्या सेन सजि चाहुवान । उप्पटे जानि सत सिंधु पान ॥ छं० ॥ ६२१ ॥
आगे सु सोम दिल्ली सहाय । आगेव विष्य हर कंठ छाय ॥
आगेव मनी लछ्भी फुनिंद । आगेव सरद निसि उग्गि चंद ॥ छं० ॥ ६२२ ॥
आगे सु चक्र लिन्नौ गुविंद । आगै सु वज्र कर चढ़ी इंद ॥
बिहु बाह सूर सज्जे समंत । बेनै बिरद्द बंधे अनंत ॥ छं० ॥ ६२३ ॥ *

---

* यह छंद सं० १६४० । १७०० और १८४५ की पुस्तकों में नहीं है किन्तु स० १८५९ की लिखी में है ॥

इस छंद की अंत की तुक में "बेनै बिरद्द बंधे अनंत" है जिसका अर्थ यह होता है कि बेन ने अनेक बिरद बांधे अर्थात् कहे । यह बेन कवि इस महाकाव्य के रचनेवाले चंद का पिता था और वह सोमेश्वरजी के इस समय साथ था । अब तक चंद से पहिले का कोई काव्य किसी भी कवि का किसी के जानने में नहीं है किन्तु हमने जो एक चंद छंद वर्णन की महिमा नामक पुस्तक सं० १६२९ की लिखी शोध की है उस के पीछे मेवाड़ राज के महाराणाजी श्री उदयसिंहजी के महाराज कुमार श्रीजगतसिंहजी के पंडित विष्णुदासजी ने अकबर बादशाह के भाट गंगजी से अजमेर में पटोलाबाव के मुकाम पर चंद के बाप कवि राव बेन का नीचे लिखा छिप्पय अर्थात् कवित्त लिखा था वह हम प्रकाश करते हैं । छप्पय मे बेन ने पृथ्वीराजजी के पिता सोमेश्वरीजी को आसीस दी थी—

छप्पय ॥ अटल ठाट महि पाट । अटल तारागढ़ थानं ॥
अटल नग्र अजमेर । अटल हिंदव अस्थानं ॥
अटल तेज परताप । अटल लंका गढ़ डंडिव ॥
अटल आप चहुवान । अटल भूमि जस मंडिव ॥
संभरी भूप सोमेस नृप । अटल छत्र ओपै सु सर ॥
कवि राव बेन आसीस दें । अटल जुगां रजेस कर ॥ १ ॥

आग्गैं सुदंति पंतिय विहर । घनकांत चंदु मद झरन भूर ॥
भजनेज चमर बंमर बिनान । मन हू कि पब्ब पल्लव किसान ॥छं०॥१२४॥
थमकंत घरनि अहि सिर निहाय । चल चखिय द्रिग्ग उद्रिग्ग थाय ॥
धुर धूरि पूरि जुट्टिन भमिन्ति । दिसि व दिसि राज पसरंत कित्ति॥छं०॥१२५॥
रह परहि सोम पर चाउ कज्जि । मन हू कि दुलह बर व्याह रज्जि ॥
संपत्त जाय दिल्लिय पुरेस । आनंग राज मिल्ल असेस ॥ छं० ॥ १२६ ॥
ग्रह बत्त कुसल पूछिय असेन । रस हास पेम बढ्ढे सु हेत ॥
विधि विद्धि भोज भोजंत राय । रुचि सु चित षट रस्स भाइ ॥छं०॥१२७॥
आहार पान घन सार पूर । बैठे सु आइ एकंत सूर ॥
सब कहिग बिद्धि कमधज्ज दिसान । सुद्दरै बत्त सो करहु पान ॥
छं० ॥ १२८ ॥ रू० ॥ १२३ ॥

अनंग की बात सुन सोमेस का रोस में आकर लड़ने को तैयार होना ॥

कवित्त ॥ सुनिय बत्त जपि सोम । रोस उब्भार झार असि ॥
रसन दसन दब्बंत । रत्त द्रिग जुच्छ हथ्थ कसि ॥

इसी के साथ उसी पुस्तक में चंद के नागापवकरणा का कहा हुआ यह नीचे लिखा दोहा भी लिखा है—

दोहा ॥ ले कूंआ नृप पीथुला, सामंत चमूं समंद ॥
बेन नँदनैं कनवज गमन, चंद करन कह दंद ॥

१२३ पाठान्तर-संभरीय । मरेसा । सभाधि विस चापां । चपा । चपेस । कमधज्ज । राव । तूंवर । नरिद्र । तुन्हें । चावद्दू । हुंद । सज्जो । बेवस । येह । ध्रम । केहर जोत घाना नारेंद्र । चानिग । चपांन । थांन । कैं सजैं थांन कैलास इंद्र । मंनेव मंवेत्र मंत भर सूर ठांव । घुघुमरेद्दू नीपांन तांम । मनेत्र । घुमरे । चाहुआंन । उपटे । थांनि । सिंधू । पांनि । पानि । चग्गैं चग्गें । चवैं । चगेंव । चंगेव । चवंत । त्रिव । लार । चगेंत्र । चवेत्र । चवेंत्र । मंनि । मंच । लभी । फूंनिंद्र । चवेंन । चगेंत्र । रत चग्गें । चगैं । बेन । चानैं । चवैं पटंत । पंभूर । पंडूर । झरन । बनांन । मत हूं । पत्र । कसांन । सर । हलोय । दुग । चद्दुग । तुग । चद्दुग । घुर धूरि रिपुरि सुद्दिन भमित्त धुरि पूरि धूरि मुद्दिन नमित्त । वि । पसरंति । बहर । बहह । कज्ज । मांन हूं । मानहु । रज्ज । संपत्त । दिल्लियपुरेश । राय । मिले । ग्रह । कुशल । पुछिय । चषेत । रश हास । बढे । विधि विधि । चित । रश । पांन । चाय । सब्ब । विधि । कमद्धज्ज । दिसांन । सुद्दरहि । बत । हूं । पांन ॥

१२४ पाठान्तर-जत । बत । जप । रोश । उभार । झारि । दुसिवंत । मुक । हथ । सिचारिय । चष्यांन । चपनीय । चखि । भारीय । चाहुवान । चहुवान । कंपो । हलां । मांनहुं ॥

इच कमंध आमंध। राज बल जंग विचारिय ॥
सजौ सेन अप्पनी। मिरौ भंजौ अरि भारिय ॥
चहुआन राय आनन्द सुत्र। अति उमाह भारथ मनह ॥
चाह मग्ग लग्गि भंपी हनह। आन चक्क मानहु तिनह ॥
छं० ॥ १२९ ॥ रू० ॥ १२४ ॥

दोनों राजाओं का डेरों पर जाना और पिछली रात को युद्धारंभ होना।

दूहा ॥ इच परिट्ठि * राजन उठे। गय अप्पाने ठाव ॥
निसा जाम रहि पाछली। भयौ निसान निघाव ॥
छं० ॥ १३० ॥ रू० ॥ १२५ ॥

सोमेस की सहायता से अनंग की विजयपालजी के साथ लड़ाई।

भुजंगी ॥ रही जाम एकं निसा पच्छि यानं। बजे नद्द नीसान बोसान जानं ॥
चल्यौ राज आनंग सोमं समेतं। चढे चाल रातं चितं प्रीति हेतं ॥ छं० ॥ १३१ ॥
सुभै सेन रूपं धजा मेज माली। मनों बद्दलं मध्य रंजै सु राली ॥
सजे पष्परं बाज दंती सुभेसं। सनाहंन थीनं चितं जुद्ध जेनं ॥ छं० ॥ १३२ ॥
हुतै आनि दूतं कही बत्त साजं। सजे सेन आयौ विजैपाल राजं ॥
रूपं व्यूह आकार सज्जे सभारं। दई फन पुंछं रचे धित्त सारं ॥ छं० ॥ १३३ ॥
सुने बत्त आनंग चित्तं विचारी। कही सोम सोपी बंधी बंध भारी ॥
सचो सेन अप्पान व्यूहं गरूरं। गिलै सप्पनामं हु है जित्त सूरं ॥ छं० ॥ १३४ ॥

* हिं० परिट्ठि (सं० स्त्री० परीष्टि = Inquiry, research, &c) से है ॥

१२५ पाठान्तर परिट्ठ। परठि। अप्पाने। ठाह। जाम। पछली। निसान। निघाव ॥

१२६ पाठान्तर-जाम। एक्कं। रक्कं। पच्छिमं। बजै। नीसान। बरसान। चढे। सोमि। सोम। समित। चढि। राग। रत्त। रातं। चित। सुभे। छेव। सेन। मंडी। मनौ। बद्दल। बदल्ल। मध्य। रचे। रच्यो। पषरं। समेतं। सनाहन्नि छित। चितं। जुद्ध। जैन रसे। दूतै। आनि। आय। कहे। आयौ। विजियपाल विजेपाल। रूपं। रूप। सजे। सु भारं। देठं। फन फन। पुछं। धुत्ति। धित। सुने आनंग चितं चतं विचारी। सिरकं। सिवं। बंधे। सजो। अपान। गरूरं। गिले। सप। सिर्पि। मंजु। राय। सिव। राजं। रिछ। चोरंग। सयं सुहु। सव। उधीर। पिछ। धरा धार उधार वीरं सु मेवं। मह पिह। बंड बंड। लग। सेजे। सजे। पुछ। पछ। कुरंभ। सिने। सिलीयर। सिरिछा। अनेक। बाग। कंगं। सिम। बाय। चालन। भारे। हुपं। मेनं। उड्डे। कंपे। भडे। भंडा। दिग्गजं। कसे। चक्कहु। सामंतु। संधहु। गजे। निसानं।

सज्यौ पंच पीवा सु सोमेस रायं । तिनं संभरी आज राजे सचायं ॥
दिसा दाहिनी पक्ख चौरंग वीरं । कुलं चाहुआनं जयं युद्ध भीरं॥छं०१३५॥
लियें पक्ख वीरंम वीरंग देवं । धरा धार उद्धार धारं सु मेवं ॥
पगं पेड आनंम राजंग पालं । पंड पंडं भुजं लज्ज भालं ॥ छं० ॥ १३६ ॥
सजे पुक्ख कोरंभ जैसिंघ भामं । जिनैं जित्तिया जुद्ध अनेक ठामं ॥
सजे अग्ग रंती मर्द मैंपजग्गं । तिनं अग्ग आतस्स भारं उतंगं छं०॥१३७॥
दुवे सेन मिल्ली उडी रेन पूरं । कंपे कायरं सूर बज्जे सनूरं ॥
धजा नेज ढालं पताषी दिषानं । बजे सिंधु आनद्द गज्जे निसानं ॥
छं० ॥ १३८ ॥ रू० ॥ ५० ॥ २२६ ॥

कवित्त॥ बज्जि गहर नीसान । अग्गि अग बान विछुट्टिय ॥
* दरिया दधि किय मथन । † भोम फट्टिय षंच तुट्टिय ॥
करषि मुट्ठि कम्मान । तानि कन बान क्रर्न किय ॥
मनहु पिल्ह दिसि सदल । ‡ भोरं बासं नमनं किय ॥
रुधि मग्ग मिच षद्द मद्दयौ । सुभर सोम मच्यौ गहन ॥
सर सार सार उप्पर सिलह । मनु मेघ बुंद मघौ मघन ॥
छं० ॥ १३९ ॥ रू० ॥ ६० ॥ २२७ ॥

विराज ॥ चुरंगी सु वीरं । जुटे जुद्ध भीरं ॥
छुटे मोष बानं । मुटे आसमानं छं० ॥ १४० ॥
परे बप्प धायं । करै कूह कायं ।
उभारंत सेलं । हुवं मेल भेलं छं० ॥ १४१ ॥
नर्म छिद्र कालं । रुधिंजा प्रनालं ॥
बहै धार षग्गं । निनारंभ रग्गं ॥ छं० ॥ १४२ ॥

---

१२७ पाठान्तर नीसान । आगि अगिबान विछुटीय । * कि । दरिया । कीय । मथन । † कि । फट्टीय । तुट्टीय । मुंछ । क्रमांन । कम्मांन । क्रन । क्रिन । बान । क्रनंकिय । मनहुं । षिलि । ‡ कि । भोर । भोर । भोर । बास । नमनं । मग । मुदयो । सुभर भोम । मनो मेघ बुंदह मघन । मनौं मेघ बुंद मघ मघन । मचि ॥

१२८ पाठान्तर-चोरंगीय । जुटें । जुटे । भारं । छुंटे । छूटे । बानं । मुटे । बप । धायं । करे । कहु । हुव । सेल । तिनं । छद्र । रुधिज्जा । रुधिजा । बहै । षग्गं । डग्गं । रंगं । जुटे । जुटें । बल । करतो । करंगो । विहारो ॥परै । परें । धानं । कल कोट जांटी । कोट । धय । परें । बह । तुलं तीख मत्त । कटे बंधन भयलं । कटे । भंतं । चे रंगी । बरसिष । बरसिष बष । दुव । मक्क । बम । कुहं । कहं । बरसिह । बदसिष । पितं । परै । बषि । नैसं । पष । भीर । कटै । भगे । बढि । किते ॥

तुटे दंत भारी। करै गै विचारी ॥
परे भूमि थानं। कलं कूट जानं॥ छं० ॥ १४३ ॥
चयं चंड चंडं। धरं रुंड मुंडं ॥
लुथं लुथ्य मत्तं। कटं बंन भत्तं ॥ छं० ॥ १४४ ॥
चुरंगी सु तत्तं। बरं सिंघ उत्तं ॥
मिल्यौ वथ्थ आनं। दुअं मल्ल जानं ॥ छं० ॥ १४५ ॥
भिरी जंम दढ्ढं। गलं लग्गि चढ्ढं ॥
बरं सिंघ षेतं। परे बंध नेतं ॥ छं० ॥ १४६ ॥
मयं पंच भीरं। कटे पास बीरं ॥
भगे ढढ्ढ थानं। जिते चाहुवांन ॥ छं० ॥ १४७ ॥ रू० ॥ ३२८ ॥

गाथा ॥ भग्गो दल नर सिंघं। जंगं जित्ताइ राइ चौरंगी ॥
चाई दिसि बर बीरं। लग्गो जुद्धाइं षग्ग मग्गायं ॥
छं० ॥ १४८ ॥ रू० ॥ ३२९ ॥

रसावला ॥ * षग्ग साहिं नगा। सेन सेनं अगा ॥
सार धारं मगा। कूह कूहं बगा ॥ छं० ॥ १४९ ॥
घाय यों ठंनकी आहिरं घंनकी ॥
कंठ गोरं मता। वारुनी पी मता ॥ छं० ॥ १५० ॥
बीर लुथ्थं लुथं। मिल्ल बथ्थं बथं ॥
तुट्टि तंतं अती। गज्जनीयं दंती ॥ छं० ॥ १५१ ॥
नालि ज्यों कठ्ठती। सूर यों बिठ्ठती ॥
उड्डि लोहं लुहं। मिल्ल जोहं जुहं ॥ छं० ॥ १५२ ॥ रू० ॥ ३३० ॥

---

३२९ पाठान्तर-भगो। बरसिंघ। बरासह। जंग। जिताइ। राय। चउरंगो। चाइ। दीसि। लगे। मगाइ। मगाइ ॥

* इस छंद का नामान्तर विमोह अर्थात् विमोहा भी है और यह दो दो रगण का होता है ॥

३३० पाठान्तर-षगं। षंग। साहि। साहं। नंगा। सुजे सेन अंगा। सजे सेन अंगा। सारं धार। कूंह कूह बगा। कुहं कूह बगा। विघायं ठनकी। अहीरन घनंकी। अहिर्व घनकी। कठंगो रमता। कठंगी रमता। वारुणी पिमत्ता। वारुणि पिमंता। परी लुथ लुथं। परी लुथा लुथ्य। मिले बथ बथ्य। रथं। तुटीतंत पती। तुटी तंति अंती। गरजंत दंती। नालि ज्यों कठंती। सूरज्यों बठंती। सूर ज्यों बठती। उड्डे लोह लोहं। उडे लोह लोहं। मिलें लोह लोहं। मिले लोह लोहं ॥

इस रूपक के पाठान्तरों को विचारने से पाठकों को ज्ञात होगा कि वे कैसे कैसे अद्भुत और विद्वानों को भी भुला देनेवाले हैं ॥

कवित्त ॥ बढन बीर बीरम्म। बीर कमधज्ज सौं जुझ्यौ ॥
ता उप्पर गजराज। आइ मद मोष उपझ्यौ ॥
हथित संग उभ्भरिं। बिरचि बाथी गज मध्यह ॥
जाइ ठनंकिय घंट। कंठ सोभा सुभि तध्यह ॥
गहि संग सूर लीनो षबकि। जै जै सुर आकास कहि ॥
रुधि धार छुट्टि संमुह चली। मनों मेर सरसत्ति बहि* ॥
छं० ॥ ६५३ ॥ रू० ॥ ३३१ ॥

भंजि मुष्य गजराज। अप्प सेना उर धारिय† ॥
ता मध्ये से तीन। फिरग संमुष ह्वै हारिय†
ता मध्ये वाघेल। राइ रिपु सल्ल मल्ला भर ॥
घरी एक रन रंग। तुट्टि धर धार गयौ धर ॥
जितौ सु जंग धारह धनिय। बिभक्क बीर बित्तौ जहां ॥
भजि और भत्त छंडे रिनह। गे राज बिजपाल तहां ॥
छं० ॥ ६५४ ॥ रू० ॥ ३३२ ॥

दूहा ॥ बीर देव सम बीर न्रिप। भग्गि सेन कमधज्ज ॥
ता पच्छैं सोमेस पर। उट्ठि सार बज रज्ज ॥ छं० ॥ ६५५ ॥ रू० ॥ ३३३ ॥

---

* ये तुके बूंदी राज के पुस्तकालय की पुस्तक म० १८४५ की में नहीं हैं ॥

३३१ पाठान्तर बीरंम। कमधज्ज। सो। सु। उपर। गजराज। आय। हस्त। उभ्भरि। बाहि। मथह। जाय। कति। तथह। सांग। समुह। समुह हडा रिय। चलिय। मनहु। धति। बिहि ॥

† पाठको! हम बीसलदेवजी की श्रावक कथा को अद्भुत रस में कवि का लिखाना टिप्पण २६० में कह आये। उसी तरह इस दिल्ली के अनंगपाल जी और कनौज के राजा कमधज्ज बिजैपालजी की लड़ाई का वर्णन बीभत्स और वीर रसों में कवि ने लिखा है इस बात को वह इस को युक्ति से सूचना अपने "बिभक्क बीर बित्तौ जहां" वाक्य में करता है। यह महाकाव्य कवि ने नव रसों में लिखा है अतएव जहां हम आप का सचेत न भी करें वहां आप बिचार कर रस को समझ लीजिएगा ॥

३३२ पाठान्तर-मुष। सेनह। धारीय। मध्य। संमुंह हे। संमुह हवै हारिय। मधे। बघेल। बघ्येल। राय। सल। तुट्टि। गइ। गई। जितो। स। धनीय। जहां। बीर। और। भत्त। भित्त। छंडे। रनह। गाइय। गये। बिजैपाल तिहां ॥

३३३ पाठान्तर-दोहा बीर। बीर। भग। कमधज्ज। पिछै। पछे। सोमेष उट्ठी। रज ॥

कवित्त ॥ परी भीर सोमेंस। सोम बंसी सपाय भय ॥
मार मार उच्चरंत। सेन चतुरंग चयग्गय ॥
गजदंता बिकुरंत। बीर भेरी भननंकत ॥
टोप टूक बिकुरंत। पग्ग भागत रननं कत ॥
रस रास बीर कमधज्ज भय। संमुख बीर निघाइया ॥
संभरी राव संभारि कल। लग्गौ लोह उचाइया ॥
छं० ॥ ६५६ ॥ रू० ॥ १३४ ॥

पद्धरी ॥ उचाय लोह लगि व्योम थान। मानों कि चरिय बन ज्वलन थान ॥
जुट्टौ सु अरिन दल मभ्भ जाइ। मांनों कि सिंघ गज जूथ पाइ ॥ छं० ६५७ ॥
इन बिद्ध सोम मिल लोह पूर। आवद्ध रीठ मत्ती करूर ॥
छन नंकि बान बजि गोम धंक। कायर पुलंत सूरा निसंक ॥ छं० ॥ ६५८ ॥
चल मिल्लग सेन बे बाह बीर। बरसें अनंग अज्जंत धीर ॥
माचंत कूह बजि लोह सार। जुट्टंत सूर रिन करि पचार ॥ छं० ६५९ ॥
राजंत राग सिंधू*कराल। बाजंत बज्ज जनु मेघ काल ॥
चलकंत घाव बाहंत धीर। किलकंत नद्द नारद्द बीर ॥ छं० ॥ ६६० ॥
उच्चकंत डक्क डाकन बरान। गच्चकंत गिद्धि सिवनिय थान ॥
नाचंत देव मच्चकंत फून। लच्चकंत दुष्ष मन रुष्ष ऋलि ॥ छं० ॥ ६६१ ॥
उररीय सेन सजि अनगपाल। भर परी भीर कमधज विसाल ॥
सत पैंड आइ फिर लग्गि घाय। आनार रीठ मत्तौ उराय ॥ छं० ॥ ६६२ ॥

१३४ पाठान्तर-परी। सै.मेस। बसी। हय गय। गजादंता भननंकत। टौप। बिकूरंत। पग। भगंत। रननंकित। रननंकत। रस सुर। बीर। समुह बीर। विहाइया। निहाइया। संभरी। लागे। लग्गों। उचाईया उचारिया ॥

* संगीत शास्त्रवेत्ता और अन्य सब को स्मरण में रखने की बात है कि संगीत के आचार्य भरत जो सिंधू राग को वीर रस में मानते हैं उसका प्रचार इस समय तक पाया जाता है अर्थात् लड़ाई में सिन्धु राग गाया और बजाया जाता था और व्यूह रच के लड़ना भी पृथ्वीराजजी के समय तक प्रचलित रहा है ॥

१३५ पाठान्तर उचाय। लोह। व्यौम। योम। थांन। मांने। मनों। हरि। हरी बलि बलन बानं। हरीय। थांन। जुंटौ। जुटौ। जुटो। मभ्क। जाय। मानौं। मांनौ। जुथ। पाय। इनि। बिध। विधि। सोम। मिलि। लोह। पुर। रीठु। मती। बांन। सूरा। हलि। मिलिग। बे बाह। बरसै। यजंठ। मांवत। जुटंत। रिठुं। मैघ। घालय। घायु। बहंत। नद। नारद्र। इक।

तिन मुष्ष सोम मिल चाहुवान । मानों कि रिष्षि दरिया प्रवान ॥
तिन सीस बज्जि धारा निघाय । घरियार बज्जि मनुं बज्र घाय ॥छं०॥६६३॥
परि सोभ सूर अरि बधिय जंग । चौसट्ठि घाय बेध्यौ सु अंग ॥
तिन अग्ग परिग पहु मान बीर । छिन भिन्न होय धारा सरीर ॥छं०॥६६४॥
सत पंच परिग है गै कहूर । सें पंच दून परि षित्त सूर ॥
सहसं च पंच कमधज्ज सेन । जीतौ अनंद सुत बीर सेन ॥छं० ॥ ६६५ ॥
भाजंत सेन बर विजैराज । है गै बीर रिन छोरि लाज ॥
पलकंत स्रोन धर चलिग षाल । कौतिग्ग देव चर रुंड माल ॥छं०॥६६६॥
षल चरन चार बर रंभ कीन । जै जया सद्द बंदीन दीन॥ ६६७ ॥ रू० ॥ २२५ ॥

सोमेश्वरजी का दिल्ली में बड़ा साहस करना ॥

कवित्त ॥ दिल्ली वै सोमेस । कियौ साहस चहुवानं ॥
सो कमधज्ज नरिंद । बीर विजपाल भगानं ।
अजरां परि अजमेर । मान बंधव परि चड्डुं ॥
अस्त्र बस्त्र अरु चर्म । टंक लभ्भ नन षड्डुं ॥
रघुबंस बीर दिष्षौ निजरि । पहु पंषिनिय रुडाइयां * ॥
आप मंस अप्प कर कट्टि कै । चील्हां हंकि उडाइयां * ॥
छं० ॥ ६६८ ॥ रू० ॥ २२६ ॥

इरान । मिट्टनीय । थांन । फून । तुन्य । मथ । फून । सैन । अनंगपाल । हरथ । हरिय । पेह । पैड
जाय । फिरि । मतें । मुष । सोम । मिलि । चाहुवान । मांनो । रिषि । दरयायसांन । घरीयार
मनु । मनो । घरीयार मनों । बज्जि । बज्जे । सोम । जग । चौसठि । बेध्यो । अग । परिम ।
पहु मांन । होइ । शरीर । गें । गहूर । से । सुर । सहसच । परिकमध जंतो सु जंग सुत बीर
सैन । जीतो सु जंम सुत बीर सेन । हय । गय । कौतिग । चाह । वरं । जे जे जु सद्द । जै जै जु सद्द ॥

* ऐसे प्रयोगों को देखकर के राजपूताने के कवियों को भ्रम के वश न हो जाना चाहिये क्योंकि ये कवि की मातृभाषा पंजाबी होने के कारण प्रयुक्त हुए हैं और राजपूताने की भाषा में बहुत से पंजाबी शब्द भी मिले हुए हैं तथा राजपूताने की भाषा कोई स्वतंत्र भाषा नहीं है किन्तु भील और मेर आदि और जो जो क्षत्री और कवि आदि जिस जिस प्रान्त से इस देश में आकर बसे हैं उन सब की भाषाओं से मिलकर बनी हुई एक खिचड़ी है ॥

६३६ पाठान्तर दिली । ढिल्ली । वे । सोमेष । चहुवानं । कंमधिज्ज । नरेंद्र । विजैपाल । मांन । परचंडुं । परचड्डुं । षस्त्र । षस्त्र । अह-चर्म्मः । चर्म्म । बिर । पंषीनिय । पंषिनि । अप्प । मस । कठि । कै । कें । विल्हां हंक्कि । हकि ॥

कमधज्ज का पराजित हो घर जाना और सोमेस का अजमेर को चलना ॥

दूहा ॥ जित्ति भत्ति भारथ्थ भौ । गौ फिरि ग्रह कमधज्ज ॥
उप्पारे अजमेर पहु । डोला पंच सुरज्ज ॥ छं० ॥ ६६९ ॥ रू० ॥ ३२७ ॥

अनंगपाल जी का सोमेश्वर जी को कन्यादान करना ॥

कवित्त ॥ अनग तुंअर नरिंद । ध्रम्म मंड्यो उछंग बर ॥
सुभ सोमेस नरिंद । ग्रहन पानिग मंडि कर ॥
हेम हय गय भार । दासि दीनि जु पंच सय ॥
सत हस्ती दै सहस । अथ्थ अप्पौ सु देस लय ॥
हिंसार को पव्वर विहर । मुत्ती माल सुरंग घन ॥
चल्यौ नरिंद अजमेर दिसि । बलि नरिंद इक बंध मन ॥
छं० ॥ ६७० ॥ रू० ॥ ३२८ ॥

सोमेश्वरजी का अजमेर आना और वहां बड़ा उत्सव होना ॥

कवित्त ॥ स्रृंगारिय गजराज । आय ग्रिह जीतिव जानय ॥
पहिरावन परिवार । जानि रिति माधव मानिय ॥
बाल वृद्ध जुव्वनह । मुष गावत अति मंगल ॥
रुचि रुचि विविध बचन्न । परसपर जानि सुष्प गल ॥
तह अंब गौष ताहन चिविध । सपिय गौष उभ्भिय सरस ॥
प्रतिबिंब मुष्प राका दरस । मुष गावत चहुआन जस ॥
छं० ॥ ६७१ ॥ रू० ॥ ३२९ ॥

---

३२७ पाठान्तर-जिति । भिति । भारथ । भय । गय । ग्रिह । कम धज्ज । डोला सुरज्ज ॥

३२८ पाठान्तर अनंगपाल । तुंअर । स्रुभ । सोमेस । पांनिग । महि । हेम हय गय । ज । सित । हथी । हय । हय । सुं । देससलय । कै ट । प्पवर । पवर विहार । मुत्ति । मुत्तिय । छिशि । बल ॥

३२९ पाठान्तर-स्रगारीय । ग्रिह । गृह । जीतिव । पारिवार । जांनि । मांनिय । वृद्धि । जुंवनह । मुष गावत । मुष्षि गावत । विविधि बचन्नं । जांनि । सु पिंगल । ताहनि । त्रिविधि । सषीय । गौषि । उभीय । प्रति बिंब मुष्ष राका दरसन । प्रतिव्यंब । मुष चहुंआंन । चहुवान । चहुआंन ॥

पृथ्वीराजजी की कथा का आरम्भ करना ॥

पद्धरी ॥ अब कहौं कथ्य चहुआन राइ । जिम लई भूमि षल षग्ग धाई ॥
जिम अनग राज दिल्ली दान । षयनैंत षत्रिय कुल चाहुवान ॥ छं० ॥ १७२ ॥
जिम अगम द्रुग्ग गढ लए कूटि । जिहि किति जित्ति संसार लूटि ॥
जिम मेछ्छ सेन षग धार षंडि । कै बार साहि जिन बंधि छंडि ॥छं०॥१७३॥
जिम कमध सेन षर षरिय कोन । विध्वंसि जग्ग संयोगि लीन ॥
अब्बुआ राव रष्यौ बलेस । चालुक्क भंजि पट्टन नरेस ॥ छं० ॥ १७४ ॥
परिहार सिंघ जिम जेर कीन । बरनी विवाहि रस बसि अधीन ॥
देवगिरद्रुग्ग है पुरनि गाहि । बालुका जीति दे जग्य षाहि ॥छं० ॥ १७५ ॥
निरथंभ द्रुग्ग जद्दव नरेस । कंन्या विवाहि तिन रष्षि देस ॥
भंजे मै वास बहु भीख कंक । भर नीर ग्रेह तिन कढ्ढि बंक ॥ छं० ॥ १७६ ॥
अनमी मसंद तिन नाम वारि । जुगवंत जीव म्रष गवार ॥
अवतार अप्प करतार होइ । हूऔ न और ह्वैहै न कोइ ॥ छं० ॥ १७७ ॥
अजमेर द्रुग्ग न्रप सोम राइ । अद्भूत तेज अरि धरन लाइ ॥
दिल्लिय अनंग तोअर नरिंद । अनसंक कंक पहुमीस इंद ॥ छं० ॥ १७८ ॥
तिह सुत्त नांहि ग्रह पुत्ति दोय । किय व्याह कमध चहुआन सोई ॥
छं० ॥ १७९ ॥ रू० ॥ ३४० ॥

सोमेश्वरजी का तेजबल से तपना ॥

कवित्त ॥ तपै तेज चहुआन । सूर सोमेस अप्प बल ॥
तिन सु तेज तरवारि । मुक्क अरु सुक्क मुष्ष जल ॥

३४० पाठान्तर-कहों । कहो । कथ । चहुआंन राय । लइ । षगा । षय । धाय । अनंग । दिलि दां दांन । षपतैत । षपनैात । चाहुआन । द्रुगां । द्रुंगा । जुट्ठ । जिहि । किति । जिति । लुट्टि । लुंठ । जिन । मेछ । मे छ । षिड । के । जिन । कमंध । सैन । धर धरीय । किवं । धाधरी । धीर । कोंध । जिग्य । ज्ञिग्य । सजैागि । लिष । लीष । अबुंआ । आंबूआ । जिन । जैर । किंन । देवगिरि । हे । गाहि । दे । धाह । थाम । द्रुग । द्रुंग । जदैव । कन्यां । रषि । भजे । मेवास । मिवास । भरैं । ग्रेह । कढि । नांम । जुंगवत । किरतार । सोइ । हूंओ । हूउन । हुहे । हु है । कीय । द्रुग । द्रुंग । नृप । सोंम । धरन । द्रिलिय । दिल्लीय । तुंवर । पहुवीस । पुहवीस । तिहिं । सुत । यिह । ग्रह । पुत्ती । चहुवांन । चहुआंन । सोय ॥

सुभट भाट सँग थान। चित्त चारन चतुरंगम ॥
जहँ तहँ लच्छि निवास। सु बसि विश्रसंत सुरंगम ॥
सुनिये न पर अबल चक्र भय। सुजस सकल जंपै जगत ॥
मानिक्क राइ कुल उद्धरन। सीस चलनि जहँ तहँ पगत ॥

छं० ॥ ६८० ॥ रू० ॥ ३४१ ॥

अनंगपालजी का अपनी दे। पुत्रियों में से सुन्दरी विजैपालजी के। और कमला सोमेश्वर जी के। प्रदान करना ॥

दूहा ॥ अनग पाल पुत्री उभय। इक दीनी विजपाल ॥
इक दीनो सोमेस कैां। बीज बवन कलि काल * ॥

छं० ॥ ६८१ ॥ रू० ॥ ३४२ ॥

एक नाम सुर सुंदरी। अनि वर कमला नाम ॥
दरसन सुर नर दुल्लही। मनों सु कलिका काम ॥

छं० ॥ ६८२ ॥ रू० ॥ ३४३ ॥

जिस दिन सोमेस का विवाह हुआ उस दिन क्या क्या हुआ ॥

कवित्त ॥ ज दिन व्याहि सोमेस। त दिन अमरन मन उहित ॥
त दिन बीर बेताल। काल कलहागम कुहित ॥
त दिन अग्नि उमचीय। पुत्र इहि भार उतारै ॥
छच तेज छित छज्जि। देव दानव पुंतारै ॥

३४१ पाठान्तर—तपे। चहुयान। चहुवान। मुक्क। मुंक्क। चक्क। मुष। सुभट घाट संग। भाट चित्त चारन चतुरंगम। जहां तहां। जिहां तिहां। जह। तह। लछि। बसि। सुनीये। जंपे। मांनिक्क। कुंन। चलन। जिहां। जह। तह ॥

३४२–३ पाठान्तर—अनगपाल। दिनी। बिजैपाल। विजैचंद। सोमेस। चिप वपुन। चाल। दंद ॥ ३४२ ॥ नांम। सूर सुंदरी। सुदरी। बीअ कहेला वर नाम। वै। अनि वर मलया नांम। दुल। मनैां। सुं कांम ॥ ३४३ ॥

* चंद कवि का यह वाक्य "बीज बवन कलि काल" हमारे पाठकों के ध्यान देकर समझने योग्य है कि यद्यपि चंद सोमेश्वर जी के घर का कविराज था परन्तु वह कैसा यथार्थ वक्ता था। क्या आज भी कोई कवि अथवा कविराज ऐसा स्पष्ट कह अथवा लिख सकता है ?

ता दिन सु सार सज्या समच । सम अंतर कायर कंपे ॥
मानिक्क राइ अनगेस घर । पानि ग्रहन ज दिन थपे ॥

छं० ॥ ६८३ ॥ ३४४ ॥

सोमेश्वरजी की रानी के गर्भ रहना और उसका प्रतिदिन बढ़ना ॥

कवित्त ॥ किनिक दिवस अंतरह । रहिय आधान रानि उर ॥
दिन दिन कला बढंत । मेघ ज्यों बढत भद्द धुर ॥
चंद्र कला सित पष्य । जेम बाढंत दिन दिन ॥
मुगधा जोवन चढत । मिलत भरतार षिनंषिन
उद्दित अधान सुभ गातनह । जेम जलधि पुन्निम बढहि ॥
कुलसंत चीय जे प्रोय चिय ॥ जिम सु जोति जमिता चढहि ॥

छं० ॥ ६८४ ॥ रू० ॥ ३४५ ॥

सोमेश्वरजी की तुँअरि रानी का पृथ्वीराजजी के जनना ॥

दूहा ॥ सोमेसर तोंअर घरनि । अनगपाल पुत्तीय ॥
तिन सु पिथ्थ गर्भ धरिय । दानव कुल छत्तीय ॥

छं० ॥ ६८५ ॥ रू० ॥ ३४६ ॥

सोमेसजी के प्रथम पुत्र का ढुंढा के वर से होना स्मरण कर गंधर्वादि का प्रसन्न होना और उत्सव मानना ॥

कवित्त ॥ प्रथम पुत्त सोमेस । गंधपुर ढुंढा गढ्ढिय ॥
भई सुद्धि गंध्रवन । पुहप मंगल दुज पढ्ढिय ॥
अद्ध रैनि अनु आनि । थियी बालुक सिर सढ्ढिय ॥
गयन बयन घन सद्द । युद्ध जीवन जय दिढ्ढिय ॥

३४४ पाठान्तर—व्याह । सोमेस । ता । अमरत । अमरन । उद्दित । काम । कलहागम कुदित । उंमहिय । उमहिय । नाथ मोहि भार उत्तारै । सैज । छिति । छुजि विश्व ब्रांनव्वि पुं तारै । पो । दीन कहुं दवि पुतारै । कपीय । कंपीय । मानिक । राय । अनगेस । ज दिन । थपिय । थपीय । थपि ॥

३४५ पाठान्तर—किनक । आधांन । रांनि । ज्यों मेघ वढंत भद्रु धुर । ज्यैा । ज्यों मेघ वढुंत भद्रु धुर । पष । पषि । जैम । योव्रन । षिन षिनं । षिनि षन । गदित अधान सुभगतनह । जैम । पूनिम । पूंनिम । कुंलसंत । जै । चीय । ज्यैाति ॥

३४६ पाठान्तर—सोमेसर । तुंअर । गर्भ पिथं । पिथ्थ छित्तीय ॥

सित सुभट सूर छच सध्य चलि । चंद भट्ट कीरति कारन ॥
संजोगि जोगि तप राषि सतर । वरष तीस दस च बरन ॥

छं० ॥ १८६ ॥ रू० ॥ १४७ ॥

कवित्त ॥ बल तापस तप तपिय । आप बीसल सिर धारिय ॥
बरस असी तीन सै । गुहा ढिल्ली ढिग तारिय ॥ †
सित अंजर रजनीय । पुरनि गंध्रव पग धारिय ॥ †

*   *   *   *   *   *

अवतार लियौ प्रिथिराज पहु । ता दिन दान अनंत दिय ॥
कनवज्ज देस गज्जन पटन । किलकिलंत कालंकनिय ॥

छं० ॥ १८७ ॥ रू० १४८ ॥

जिस दिन पृथ्वीराजजी का जन्म हुआ उस दिन देशान्तरों में क्या क्या हुआ ॥

कवित्त ॥ ज दिन जनम प्रिथिराज । परिग बत्तह कनवज्जह ॥
ज दिन जनम प्रिथिराज । त दिन गज्जन पुर भज्जह ॥
ज दिन जनम प्रिथिराज । त दिन पट्टन वै सड्डिय ॥
ज दिन जनम प्रिथिराज । त दिन मन कालन षड्डिय ॥
ज दिन जनम प्रथिराज भौ । त दिन भार धर उत्तरिय ॥
वतरीय अंस असन ब्रह्म । रची जुगें जुग वत्तरिय ॥

छं० ॥ १८८ ॥ रू० ॥ १४९ ॥

---

१४७ पाठान्तर—सोमेस । गणपुर । ठुंकां धारीय । भर मुद्रि गंध्रवन । गंध्रुत्रन । पठिय । रैन । रैनि । जांनि । लयौ । लीयौ । वालिक । वालक । सुर । मद्रिय । गैन बैंन । घसद । गैन । वैन घन सद । सुद्ध जंपीन जय द्विद्वीय । सतं । सुर । जोति । सन ॥

† ये दोनों तुक सं० १८४५ की पुस्तक में नहीं हैं ॥

* यह तुक हमारे पास की किसी भी पुस्तक में नहीं है ॥

१४८ पाठान्तर—बलि । सित । धारीय । रंजनिय । गंध्रुव । धारीय । लीयौ । प्रिथीराज । दांन । कनवज । देसं । गजन । पटन । पट्टन । किलकंलं । कालक नीय ॥

१४९ पाठान्तर—दिनि । जनमि । प्रिथीराज । परिग बत्तह कनवजह । जनमी] [गंजन पुर भंजन । गजन पुर भजह । था । ता । वे । सद्वीय । जनमी । ता । जनिमि । भय । जद्दिन जनंम प्रथिराज भुय । भुय । ता । उतरिय । अवतरिय । अवतरीय । जुगे । जुग । वतरीव ॥

अनंगपालजी का अपनी पुत्री के पुत्र को देखना और उत्सव करना ॥

कवित्त ॥ अनग पुच्छै नरेस । व्यास जग जोत बुलाइय ॥
लगन लिखि अनुजा सुत । नाम चिहु चक्क चलाइय ॥
पुप्फ पानि धरि धूप । पिथ्य पाइन दो अंसह ॥
कलि अवतार कुलाह । अंसपति पारन कंसह ॥
बहु जुद्ध रुद्द कलि जुग्ग बर । थित सित्त दैतन भिरन ॥
कवि चंद दिली यह कारने । हुच अपुब्ब अवतार लिन ॥
छं० ॥ ६८९ ॥ रू० ॥ ३५० ॥

पुची पुच उछाह । दान मानह घन दिद्धिय ॥
धाम २ * गावत धमारि । मनहु अच्छि वन मनि लिद्धिय ॥
कनवज जैचँद मात । भयौ संभरि बद्दनी सुत ॥
तिन पर्वत दुज पठिय । थार जर चीर थपिय थुत ॥
पचिराइ परीघह दान दुज । किय समाप सब्बन विथरि ॥
दस दिवस रध्धि अप्पन अवर । अति उछाह आनंद करि ॥
छं० ॥ ६९० ॥ रू० ॥ ३५१ ॥

* इस को कोई नई बात नहीं समझना चाहिये किन्तु बहुत पुरानी रीति है कि काव्य में जहां शब्द का दो बार प्रयोग होता है और दो बार उस का पृथक् २ प्रयोग करने से छंद टूटता हो तो उस को एक बार लिख कर उसके आगे २ का अंक कर देते हैं और उस से अभिप्राय यह रहता है कि उसको गद्य में करने के समय अथवा उसका अर्थ करते समय उस शब्द का दो बार प्रयोग कर लेना कि उसके गौरव का नाश न हो जाय । ऐसे प्रयोग प्राचीन कवियों के काव्यों में आते हैं परंतु अब लोगों ने उनके स्थानों में नये पाठ धर दिये हैं और इस सूक्ष्म कारण पर ध्यान नहीं दिया है । किन्तु गद्य में तो अब तक यह रीति भले प्रकार प्रचलित है ॥

३५०—५१ पाठान्तर—अनंगपाल । पुच्छी । योति । बुलाईय । लिहु । लिहु । सु । नाम चिहुं चक्क चलाइय चलाईय । पुष्फ पांनि । पिथ । पायन । दो । असह । कुलांह । असपति बहुं जुद्ध । जुंगा । जुग । थ्यत । थिन सित । दैतन । भिरिय । कवि इह अपूरब अवतार लीय । अपुब: ॥ ३५० ॥ दान । मांन दिद्धीय । धांम धांम । धमारि । मनहुं चांद वंत मनि लद्धीय । कनवज्जह । कनवज्जह । जैचंद । जेचंद । पिता बद्दिनी सुतनी सुत । तिम । पवग । दुजि । पठीय । थपीय । थुति । श्रुति । परिहराय । परिगाह । परिगह । दांन । कीय । ज्येमाय । समाप । सबन । विथर । दिस । रिधि । अपन ॥

पृथ्वीराजजी का जन्म होना सुन कर सोमेसजी का उत्सव करना ॥

दूहा ॥ सुनि सोमेस बधाइ दिय । द्वै गै चीर गुराव ॥
अति उछाह अनंद भरि । न्रप मुष चढ्ढिय आव ॥
छं० ॥ ६८१ ॥ रू० ॥ ३५२ ॥

सोमेसजी का पृथ्वीराजजी को अपने घर लाने को कहना ॥

दूहा । तब बुलाय सोमेस बर । लौहानौ अरु चंद ॥
लै आवहुं अजमेर घर । पचैनैं घरह सु वृंद ॥
छं० ॥ ६८२ ॥ रू० ॥ ३५३ ॥

सोमेसजी का पृथ्वीराजजी को अजमेर ले आना ॥

दूहा ॥ करि आनौ * उछ्छाह किय । चलिय राज अजमेर ॥
सहस बाजि द्वै सुभर बर । सत्त सघो मनि मेर ॥
छं० ॥ ६८३ ॥ रू० ॥ ३५४ ॥

पृथ्वीराजजी का जन्म संवत् और उनके प्राकट्य का हेतु ॥

दूहा ॥ एकादस सै पंच दह । विक्रम साक अनंद ॥
तिहि रिपु जय पुर हरन कौं । भय प्रिथिराज नरिंद ॥
छं० ॥ ६८४ ॥ रू० ॥ ३५५ ॥

पृथ्वीराजजी के शक की संज्ञा का सूत्ररूप कवि का वाक्य ॥

दूहा ॥ एकादस सै पंच दह † । विक्रम जिम ध्रमसुत्त ॥
त्रतिय साक प्रथिराज कौ । लिष्यौ विप्र गुन गुप्त ॥
छं० ॥ ६८५ ॥ रू० ॥ ३५६ ॥

---

३५२ पाठान्तर—दीय । हे । गे । वीर । भर । मुंष । चढिय । आव ॥

३५३ पाठान्तर—चलाय । सोमेम । लोहनौ । पुर गजब ग्रति आमनह । महन तथ कवि चंद्र पुर गज्जन अति हरि आपनह । पुहन तथ कवि चंद । आवहु । घर ।

* स्त्री को उसका पति अथवा पति के सगे संबन्धी आदि उसके पिता के घर से अपने घर लाते हैं वह आना अथवा आनो कहलाता है ॥

३५४ पाठान्तर—उछाह । कीय । चलीय । हे । वर सत । मति । मेर ॥

३५५ पाठान्तर—एकादस । से । सं । शाक । तिह रिपु पुर जय हरन कों । हुंव । हुय । भे । पृथ्व राज । बूंदीवाली सं० १८४५ की पुस्तक में इसके स्थान में ३५६ रूपक है और उस के स्थान में यह है ॥

† इसकी पहिली आधी तुक का पाठ हमारे पास की सब पुस्तकों में "एकदस समयै सु कृत" करके है किन्तु जो हमने रक्खा है वह बूंदी राज की पुस्तक से उद्धृत किया है ।

३५६—पाठान्तर—एकादस । समचै । समये । ध्रम । सुत । त्रीयथि । त्रीयनि । शाक । पृथीराज । प्रिथीराज । कों ॥

इन रूपक ३५५ और ३५६ पर हम यह टिप्पण अत्यन्त आनन्द के साथ लिखकर हिन्दी भाषा के महा कवि चंद्र बरदाई की संवत् संबन्धी बड़ी कठिनता के इस शोध को पुरातत्व-वेत्ताओं की सेवा में भले प्रकार विचार करने को उपस्थित करते हैं। यद्यपि हमारे ज्योतिष शास्त्रादि के अच्छे अच्छे विद्वान इष्ट मित्रों में से कितनेक महाशय जिनको यह शोध विदित हो गया, है हमको First discovery प्रथम शोध करने का मान देते हैं किन्तु हम उनकी परम प्रीति और न्याय बुद्धि के साथ गुणग्राहकता के लिये अत्यन्त आभारी होकर यह कहते हैं कि जब अन्य पुरातत्ववेत्ता विद्वान् भी हमारे इस शोध को उसके गुण दोषों का अन्वेषण करके स्वीकार करेंगे तब हम अपने को सर्वरीत्या कृत कृत्य समझेंगे।

अब आप चंद की संवत् सम्बन्धी कठिनता को इस प्रकार से समझने का प्रयत्न करें कि प्रथम तो रूपक ३५५ को बहुत ध्यान देकर पढ़ें। तदनन्तर उसका अन्वय करके यह अर्थ करें कि [एकादस से पंचदह] ग्यारह से पंद्रह [अनन्द विक्रम साक अथवा विक्रम अनन्द साक] अनन्द विक्रम का साक अथवा विक्रम का अनन्द साक [तिहि] कि जिसमें [रिपुजय] शत्रुओं को विजय करने [पुरहरन] और नगर अथवा देश देशान्तरों को हरन करने [को] को [प्रिथिराज नरिंद] पृथ्वीराज नामक नरेंद्र [भय] उत्पन्न हुए ॥

तदनन्तर इसके प्रत्येक शब्द और वाक्यखंड पर सूक्ष्म दृष्टि देकर अन्वेषण करें कि उसमें चंद की (Archaic style) प्राचीन गूढ़ भाषा होने के कारण संवत् संबन्धी कठिनता कहां और क्या घुसी हुई है। कवि के प्रतिकूल नहीं किन्तु अनुकूल विचार करने पर आपकी न्याय-बुद्धि झट खोज कर पकड़ लावेगी कि विक्रम साक अनन्द वाक्यखंड में—और उसमें भी अनन्द शब्द में हम लोगों को इतने वर्षों से गड़बड़ा कर भ्रम रखनेवाली चंद की लाघवता भरी हुई है। इतनी जड़ हाथ में आ जाने पर अनन्द शब्द के अर्थ की गहराई को ध्यान में लेकर पक्षपातरहित विचार से निश्चय कीजिये कि यहां चंद ने उसका क्या अर्थ माना है। निदान आपको समझ पड़ेगा कि अनन्द शब्द का अर्थ यहां चंद ने केवल नव—संख्या—रहित का रक्खा है अर्थात् अ=रहित और नन्द=नव ९। अब विक्रम साक अनन्द को क्रम से अनन्द विक्रम साक अथवा विक्रम अनन्द साक करके उसका अर्थ करो कि नव—रहित विक्रम का शक अथवा विक्रम का नव—रहित शक अर्थात् १००—९= ९०। ९१ अर्थात् विक्रम का वह शक कि जो उसके राज्य के वर्ष ९०। ९१ से प्रारंभ हुआ है। यहीं थोड़ी सी और उत्पत्ता करके यह भी समझ लीजिये कि हमारे देशके ज्योतिषी लोग जो सैकड़ों वर्षों से यह कहते चले आते हैं और आज भी वृद्ध लोग कहते हैं कि विक्रम के दो संवत् थे जिनमें से एक तो अब तक प्रचलित है और दूसरा कुछ समय तक प्रचलित रहकर अब अप्रचलित हो गया है। और हमने भी जो कुछ इस के विषय की विशेष दंतकथा कोटा राज्य के विद्वान कविराज श्रीचंडीदानजी से सुनी थी वह इस महाकाव्य की संरक्षा में जैसी की तैसी लिख दी है। अतएव विदित हो कि विक्रम के दो संवत् हैं। एक तो सनन्द जो आज कल प्रचलित है और दूसरा अनन्द जो इस महाकाव्य में प्रयोग में आया है। इसी के साथ इतना यहां वा यहां और भी अन्वेषण कर लीजिये कि हमारे शोध के अनुसार जो ९०। ९१ वर्ष का अंतर उक्त दोनों संवतों का प्रत्यक्ष हुआ है उसके अनुसार इस महाकाव्य के संवत् मिलते हैं कि नहीं। पाठकों को विशेष श्रम न पड़े अतएव हम स्वयम् नीचे के कोष्टक में कुछ संवतों को सिद्ध कर दिखाते हैं—

पृथ्वीराजरासो के अनन्द संवतों का कोष्टक।

पृथ्वीराजजी का	रासो में लिखे अनन्द संवत् में	अनन्द और आनन्द संवतों का अंतर जोड़ो	यह सनन्द संवत् हुआ उस में	पृथ्वीराजजी की शेष वय जोड़ो	परीक्षा के लिये अंतिम लड़ाई का सिद्ध संवत्
जन्म	११९५	९० । ९१	१२०५ । ६	४३	१२४८ । ९
दिल्ली गोद जाना	११२२ *	९० । ९१	१२१२ । ३	३६	१२४८ । ९
कैमास जुद्ध	११४०	९० । ९१	१२३० । १	१८	१२४८ । ९
कन्नोज जाना	११५१	९० । ९१	१२४१ । २	७	१२४८ । ९
अंतिम लड़ाई	११५८	९० । ९१	१२४८ । ९	०	१२४८ । ९

– जो कुछ हमने यहां तक कहा है उससे और सब बातें तो हमारे पाठकों के मन में बैठ गई होंगी किन्तु ४५५ रूपक में जो अनन्द शब्द का प्रयोग हुआ है उसमें किसी किसी को कुछ संदेह रहेगा, अतएव हम फिर उसके विषय में कुछ अधिक कहते हैं। देखो संशय करना कोई बुरी बात नहीं है किन्तु वह सिद्धान्त का मूल है। हमारे गैातम ऋषि ने अपने न्यायदर्शन में प्रमाण और प्रमेय के पीछे संशय को एक पदार्थ माना है और उसके दूर करने के लिये ही माने सब न्यायशास्त्र रचा गया है। यदि अानन्द का नव-संख्या-रहित का अर्थ किसी की सम्मति में ठीक नहीं जंचता हो तो उससे इस स्थल में बहुत अच्छी तरह घटता हुआ कोई दूसरा अर्थ बतलाना चाहिये। परंतु बात सच है कि वह सर्वतंत्र सिद्धान्त(universally true)से उसी तरह सिद्ध हो सकता है कि जैसे हमने यहां अपना विचार सिद्ध कर दिखाया है। सब लोग जानते हैं कि हमारे इस शोध के पहिले तक युवा और मध्य वय के कोई कोई कवि इस अनन्द संज्ञा वाचक शब्द का गुण अर्थ शुभ (auspicious) का करते रहे हैं और चारण जाति के महामहोपाध्याय कविराज श्रीश्यामलदासजी ने भी अपने इस महाकाव्य के खंडन-ग्रंथ में यही अर्थ माना है। परंतु विद्वानों के विचारने और न्याय करने का स्थल है कि इस दोहे में आनन्द पाठ नहीं है और न छंद के लक्षण के अनुसार वह बन सकता है किन्तु स्पष्ट अनन्द पाठ है। यदि वहां संज्ञा वाचक आनन्द पाठ भी होता तो भी उसका गुण वाचक शुभ का अर्थ नहीं हो सकता था। परंतु संस्कृत भाषा का थोड़ासा ज्ञान रखनेवाला भी यह जान सकता है अथवा जिनके पास संस्कृत भाषा के कोशों की पुस्तकें हैं वे उनके बल से भी जान सकते हैं कि वाचस्पत्य वृहत् संस्कृताभिधान के पृष्ठ १४९ और शब्दार्थचिंतामणि के पृष्ठ ६९ में स्पष्ट अनन्द के यह अर्थ लिखे हैं "त्रि० न नन्दयति नन्द, आनन्दयितृभिन्ने, अनानन्दे असुखे" इत्यादि। देखो जब अनन्द शब्द का मुख्य अर्थ दुःख का है तो फिर क्या सुख और शुभ का अर्थ करना अयोग्य नहीं है। यदि कवि लोग जैसे अलंकार और नायका भेद की सूक्ष्मता जान लेने के लिये परिश्रम करते हैं वैसे ही जो सूक्ष्म दृष्टि देकर देखते तो झट जान लेते कि यहां कवि गूढार्थ में संवत् का भेद बता रहा

* यह संवत् हमने पृथ्वीराजजी के जो पटवारे हमको मिले हैं उनकी छाप में लिखा हुआ है उससे ग्रहण किया है किन्तु रासो की अब तक प्राप्त हुई पुस्तकों में तो किसी में ११३८ और किसी में ११२८ लिखा मिलता है॥

है और सुख अथवा दुःख और शुभ अथवा अशुभ के सूचक अर्थों को प्रयोग में नहीं लेता है। व्याकरण शास्त्र की रीति से भी **आनन्द** और **अनन्द** शब्दों की प्रयोग सिद्धि में अन्तर है। अब हमारे अर्थ की पुष्टि में विचार कीजिये—

१ प्रथम तो विचार करने के पहिले ऐसे ऐसे दुराग्रहों से अपने अपने हृदय को अपवित्र नहीं कर रखना चाहिये कि चन्द ऐसा मूर्ख था कि उसे अनुस्वार और विसर्ग तक का ज्ञान न था और न वह संस्कृतादि किसी भाषा में व्युत्पन्न पंडित था और जितनी भूलें इस महाकाव्य में मिलती हैं वह सब उसने ही की हैं॥

२ दूसरे, देखो कि कवि यहां विक्रम के शक की संख्या के विशेषण में **अनन्द** शब्द का प्रयोग करता है और तहां संख्या-वाचक अर्थ का ही प्रसंग है। और इस बात की भी कुछ अत्याव-श्यकता नहीं है कि हम यहां **अनन्द** को **आनन्द** का अपभ्रंश आदि समझकर **शुभ** का ही अर्थ करें क्योंकि कवि इसके साथही रूपक ३५८ में स्पष्ट **"तृतीय साक पृथिराज कौं लिक्यौ"** कहता है। और संज्ञावाचक **आनन्द** का अपभ्रंश रूप **अनन्द** कि जो तथापि संज्ञावाचक ही होगा, उसका गुणवाचक अर्थ **शुभ** (auspicious) कदापि नहीं बन सकता॥

३ तीसरे, इस स्थल के प्रसंग से **अनन्द** शब्द को अ+**नन्द** से बना मानना चाहिये। और अ का यहां **रहित** अर्थ करने के लिये इस श्लोक को प्रमाण में लेना चाहिये:—**तत्सादृश्यमभावश्च, तदन्यत्वं तदल्पता। अप्राशस्त्यं विरोधश्च नञर्थाःषट प्रकीर्त्तिताः"**॥ और **नन्द** के नव संख्यावाचक अर्थ के ग्रहण करने को वैसे ही समझें तो ऋषि शब्द ७ सात के वाचक की भांति **"नव नन्दाभविष्यन्ति चाणक्योयान् हनिष्यति'** स्कं॰ पु॰। तथा श्रीधरस्वामी-कृत भागवत की टीका में **तेषां सपुत्राणां नवसंख्यत्वेन तत्तुल्य संख्या"** के अर्थ स्पष्ट ही हैं अतएव अधिक प्रमाण नहीं लिखते हैं॥

४ चौथे, चन्द का अनन्द शब्द प्रयोग करने से उस का यह आन्तरीय अभिप्राय होना ज्ञात होता है कि विक्रम का जो प्रचलित संवत् है उसकी मूल संख्या में संकर राजा नन्द का कुछ समय मिला हुआ है अर्थात् वह संवत् जिस गणित के अनुसार है वह उक्त नन्द के समय सहित था और चन्द ने जिस प्रकार से काल निरूपण किया है वह नन्द के समय रहित है अर्थात् चन्द का लिखा विक्रमी संवत् शुद्ध विक्रमी है। इसी लिये हमने इन दोनों संवतों को **अनन्द** और **सनन्द** नामों से इस टिप्पण भर में ग्रहण किया है। यदि कोई मनुष्य यह हठ कर बैठे कि हमको चन्द का अनन्द संवत् केवल प्रत्यक्ष प्रमाणों से ही सिद्ध कर दिखाओ तो क्या यह हमारा उसको उत्तर देना अन्यथा होगा कि जिस प्रमाण रूप प्रचलित विक्रमी संवत् की अपेक्षा से तुम चन्द के लिखे **अनन्द** संवत् रूपी प्रमेय को सिद्ध करना चाहते हो तो प्रथम तुम अपने प्रमाण को वैसे ही प्रत्यक्ष प्रमाणों से निर्दोष सिद्ध कर दिखाओ तो फिर हम उसको प्रमाण रूप मानकर चन्द के **अनन्द** संवत् रूपी प्रमेय को सिद्ध कर उसकी अशुद्धता समझ लें, क्योंकि यह दावा तुम्हारा है कि चन्द का लिखा संवत् अशुद्ध है। अतएव वादी के करने का काम हम ही करके प्रचलित विक्रमी संवत् की सत्यता की परीक्षा करते हैं। परीक्षा करने के पहिले एक यह सिद्ध हुई बात स्मरण कर लेनी चाहिये कि आज तक सर विलियम् जोन्स, मिस्टर सेमूएल डेविस, कोलब्रुक, बेंटली, हाल, लैसन, डाक्टर भाऊ दाजी, बुलर, व्हिटनी, अलबीरूनी, डाक्टर हंटर और डाक्टर कर्न आदि ने जो जो शोध बड़े बड़े परिश्रम से विक्रमादित्यजी का ठीक समय निश्चय करने के लिये कई एक प्रकारों से अर्थात् विक्रमादित्यजी के समकालीन राजा और ग्रंथकर्ता आदि ने समयादि का भी विवरण करके किये हैं उनके सिवाय इस प्रकार से सिद्धान्त

कर लेने के कि वर्तमान विक्रमी में से १३५ वर्ष घटाने से शालिवाहन का शक और ५६ वा ५७ घटाने से ईस्वी सन् और इसी प्रकार से अन्य संवत् भी और इसी हिसाब से ईसा मसीह के ५६ वा ५७ वर्ष पहिले कोई विक्रम नाम का राजा हुआ था कि जिसका यह संवत् प्रचलित है, न तो कोई और फल निकला है और न कोई वैसा प्रामाणिक प्रत्यक्ष प्रमाण किसी को मिला है और न कोई आज दे सकता है कि जैसा विचारे स्वर्गवासी चंद कवि के लिखे संवतों को सिद्ध करने के लिये बड़ी धूमधाम से हम चाहते हैं । क्या यह न्याय है कि विक्रम के प्रचलित संवत् को सिद्ध करने के समय तो हम गोलमाल कर जावें और चंद के संवत् को सिद्ध करने के लिये दूसरे से प्रत्यक्ष प्रमाण मांगे ? फिर विचार कीजिये कि संस्कृत भाषा के कोषादि में जो यह "तत्र शककारकस्य विक्रमादित्यस्य हननात् शालिवाहनस्य शककर्तृत्वम्" लिखा प्राप्त होता है और आईन अकबरी के ग्रन्थकर्ता ने भी यही आशय ग्रहण किया है । इस से विक्रमादित्यजी का मरण तो १३५ में होना निश्चित ही है तथा १३५ वर्ष तक राज्य करना भी स्वतः सिद्ध है । अब रहा यह कि विक्रम के संवत् का प्रारंभ उनके जन्म से अथवा गद्दी पर बैठने के दिन से अथवा गद्दी पर बैठने पीछे किसी बड़े कार्य के करनेके दिन से हुआ है । यदि ज्योतिर्विदाभरण को कदाचित सत्य होने की अपेक्षा असत्य ही मानें और उसें किसी भी समय में बना क्यों न ग्रहण करें तथापि उसके अतिरिक्त कोई अन्य प्रमाण दृष्टि में नहीं आता कि जिसके इस "निहन्ति यो भूमिमण्डले शकान् । सपंचकोट्यक्षदशप्रमान् कलौ ॥ स राजपुत्रः शककारको भवेत् । नृपाधिराज्ये ह्यनुशाकक(र्त्ता) ॥" वाक्य के अनुसार पचपन करोड़ शकों को अथवा किसी शक कर्त्ता को मारने से विक्रमी संवत का प्रारंभ होना ही अति संभवित प्रतीत होता है । तदनन्तर यह अनुमान करना भी अनुचित नहीं है कि विक्रम ने कुछ अपने बालकपन में तो ऐसा बड़ा साका किया ही न होगा किन्तु उस समय उसकी कम से कम २५ वर्ष की वय तो भी होगी कि जिससे १३५+२५=१६० एक सो साठ वर्ष की एक वय सिद्ध होती है । निदान उसको हम पृथ्वीराजजी और समरसीजी के ९२ वर्ष तक न जी सकने के अनुमान की अपेक्षा से बहुत ही असंभव समझ सकते हैं । सारांश यही है कि चंद ने विक्रम की १६० वर्ष की वय की असम्भाव्यता से जो अपने लिखे संवतों का अनन्द संवत बता दी है वह अन्यथा नहीं है और प्रचलित विक्रमी संवत कि जिसको हम सनन्द कहते हैं उसमें अवश्यमेव कुछ नन्द का समय मिला हुआ है और वह चंद के संवत् को दोष देने जैसा स्वयम् निर्दोष प्रमाण रूप नहीं है । जब कि प्रचलित विक्रमी संवत् अपने को भले प्रकार सिद्ध कर प्रमाण नहीं दे सकता तो वह जिस प्रकार से आज माना जाता है उसी प्रकार पृथ्वीराजरासो के संवत् ९० । ९१ वर्ष के अन्तर के माने जाने में भी कुछ हानि दृष्टि नहीं आती । हमको एक बड़ा शोक इस बात का है कि यदि विद्वानों ने रूपक ४५५ और ३५६ को एक दूसरे की संगति लगाकर विचारा होता और रूपक ३५६ को बिलकुल ही न छोड़ दिया होता तो रासो के संवतों के विषय में संदेह ही नहीं हुआ होता क्योंकि वे दोनों रूपक मानों खड़े हुए पुकार पुकार कर कह रहे हैं कि हमारे आशय ये हैं ॥

५ पांचवें, चंद के नवें नन्द के समय को नहीं ग्रहण करने का एक यह भी प्रबल कारण सब के ध्यान में आ सकने जैसा है कि महानन्द को नौ पुत्र थे, आठ तो विवाहिता रानियों से और एक चंद्रगुप्त नामक मुरा नाम की नाइन उपस्त्री से । हमारी इस बात को भी स्मरण में रखना चाहिये कि मुरा नाम की नाइन से उत्पन्न होने के कारण चंद्रगुप्त और उस के वंशज मौर्य्य कहलाये हैं । अन्य देश देशान्तर के मनुष्यों की अपेक्षा हमारे स्वदेशीय बन्धुओं के

समीप कुलीन और अकुलीनों में परस्पर डाह वैर का होना कोई आश्चर्यदायक बात नहीं है क्योंकि यह व्यवहार सदा से चला आया है और आज भी सब छोटे बड़ों में विद्यमान है अर्थात् कोई अकुलीन चाहे जितनी उन्नति की दशा को क्यों न प्राप्त हो जाय और कोई कुलीन चाहे कैसा दरिद्र भी क्यों न हो जाय किन्तु वह कुलीन उस अकुलीन को संकर ही समझेगा। और इससे सदा दोनों में परस्पर द्वेष रह कर जो जब प्रबल होगा तब वह उस निर्बल को अवश्य नाश कर देगा और वे दोनों अपनी अपनी वंशावली में अपने अपने वैरी का नाम तक नहीं गिनेंगे। इसी कारण से हमारे आर्य-काल-निरूपकों (The Arya Chronologists) की भी यह शैली हो गई है कि जो स्वयम् कुलीन हैं अथवा कुलीनों के पक्षपाती हैं वे उस अकुलीन राजा के नाम और समय को अपनी संपादित ख्यात में नहीं लिखते हैं और उसके समय आदिक को या तो उसके आगे पीछे के किसी कुलीन राजा में मिला देते हैं अथवा ऐसे स्थलों में यह लिख देते हैं कि इतने समय तक "कटार अथवा तरवारि ने राज किया इत्यादि"। इसके अनेक उदाहरण राजपूतों की वंशावलियों में मिल सकते हैं परन्तु एक ऐसा आधुनिक उदाहरण है कि जिस को सर्व साधारण जानते हैं वह मेवाड़ राज की वंशावली में **बनवीर** का है उससे ही विचार देखिये। क्या मेवाड़ देश के परम कुलीन महाराणाजी साहब और क्या और कुलीन उमराव सरदार और पासवानादि लोग और क्या हम जो कदाचित् मेवाड़ की ख्यात (Chronicles) लिखें तो बनवीर का नाम और उस का समय अपनी कुलीन अवली में न तो किसी ने मिलाया है और न हम मिलावेंगे किन्तु उसका वृत्त सब के जानने के लिये हम एक पृथक टिप्पण में लिख देंगे कि जिससे हम को पुरातत्ववेत्ता वृत्त का चोर न ठहरावें और जो कोई कदाचित् हम को ऐसा करने के कारण सुतअस्सिब अर्थात् दुराग्रही भी कहेंगे तो हम उसको अपनी एक अति प्रिय पदवी समझकर उस पर अभिमान करेंगे। इसी लिये कुलीन क्षत्रियों के अभिमानी चंद बरदाई ने विक्रमादित्यजी के समय में से अकुलीन मौर्य्य समय ९० । ९१ वर्ष का ह्रास करके शुद्ध क्षत्रिय समय ग्रहण किया है और उसका नाम विक्रम का **अनन्द्** संवत् अर्थात् पृथ्वीराजजी का तृतीय शक रक्खा है। हम यह यहां तक भी मान कर कह सकते हैं कि यदि आज इस विषय को समर्थन करने को कोई भी प्रमाण न मिले तथापि चंद की निज-काल-निरूपण शैली तो स्वयम् सिद्ध ही है।

६ छठे, चंद के प्रयोग किये हुए विक्रम के **अनन्द्** संवत् का प्रचार बारहवें शतक तक की राजकीय व्यवहार की लिखावटों में भी हमको प्राप्त हुआ है अर्थात् हम को शोध करते करते अपने स्वदेशी अंतिम बादशाह पृथ्वीराजजी और रावल समरसीजी और महाराणी पृथाबाईजी के कुछ पट्टे परवाने मिले हैं कि उनके संवत भी इस महाकाव्य में लिखे सवतों से ठीक ठीक मिलते हैं और पृथ्वीराजजी के परवानों में जो मुहर अर्थात् छाप है उसमें उनके राज्याभिषेक का स० ११२२ लिखा है। इन परवानों के प्रतिरूप अर्थात् Photo हमने अपनी ओर से एशियाटिक सोसाइटी बंगाल को भेट करने के लिये अपने स्वदेशी परम प्रसिद्ध पुरातत्ववेत्ता डाक्टर राय बहादुर राजा राजेन्द्रलाल जी मित्र एलएल० डी०, सी० आई० ई० के पास भेजे हैं और उनके अकृत्रिम होने के विषय में उनसे बहुत कुछ पत्रव्यवहार हुआ है। यदि हमारे राजा साहब अकस्मात् रोगग्रस्त न हो गये होते तो उन्होंने हमारे इस बड़े परिश्रम से प्राप्त किये हुए प्राचीन लेखों को अपने विचारसहित पुरातत्ववेत्ताओं की मंडली में उपस्थित किया होता इन परवानों के अतिरिक्त हम को और भी कई एक प्रमाण प्राप्त होने की दृढाशा है कि जिनको

हम उस समय विद्वन मंडली में उपस्थित करेंगे कि जब कोई विद्वान् उनको कृत्रिम होने का दोष देगा। देखिए जोधपुर राज्य के काल-निरूपक राजा जयचंदजी को सं० ११३२ में और शिवजी और सेतारामजी को सं० ११६८ में और जयपुर राज्यवाले पजूनजी को स० ११२७ में होना आज तक निःसंदेह मानते हैं और ये संवत् भी हमारे अन्वेषण किये हुए ९१ वर्ष के अंतर के जोड़ने से अनन्द विक्रमी होकर संयत जातों के शोध हुए समय से मिल जाते हैं। इसके अतिरिक्त रावल समरसीजी की जिन प्रशस्तियों को हमारे मित्र महामहोपाध्याय कविराज श्यामलदासजी ने अपने अनुमान को सिद्ध करने को प्रमाण में माना है वे भी एक अन्तरीय क्रिया से (indirectly) हमारे शोध किये इस अनन्द संवत् को और उस के प्रचार को पुष्ट और सिद्ध करती हैं। देखिए और इन दो ध्रुवों को अपने ध्यान में रख लीजिए कि प्रथम तो रावल बापाजी के नाम पर सब ख्यात की पुस्तकों में सदैव से सं० १९१ लिखा चला आता है जिसको कर्नैल टाड साहब ने तो बल्लभी के नाश से चीतोड़ प्राप्त होने तक का समय माना है और मेवाड़ के छोटे छोटे लड़के तक इतना अवश्य जानते हैं कि बापाजी सं० १९१ में हुए और उन्होंने १०१ वर्ष राज्य किया अथवा उनकी वय १०१ वर्ष की हुई और ऐसे आज तक के इस बड़े निश्चय के साथ सर्वसाधारण के मानने को महामहोपाध्याय कविराजजी भी कदापि अस्वीकार नहीं कर सकते हैं। दूसरे, रावल समरसीजी के नाम पर भी उसी तरह सर्व साधारण के दृढ़ निश्चय के साथ ११०६ का संवत् ख्यातियों में लिखा हुआ बराबर चला आता है। अब हमारे पाठक उक्त सब प्रशस्तियों के सब संवत् अर्थात् १३३२, १३३५, १३४२, और १३४४ में से बापा जी के पूर्व का समय १९१ घटाकर देखें तो ११४१, ११४४, ११५१ और ११५३ पावेंगे जो हमारे अनन्द विक्रमी से मिल जाते हैं। क्या ये प्रशस्तियां भी हमारे अनन्द विक्रमी संवतों से आंतरीय हिसाब से नहीं मिल जाती हैं? ये क्यों मिल जाती हैं इस बात के भेद को हम अपनी समझ के अनुसार जानते हुए भी अभी प्रकाश नहीं करते हैं किन्तु किसी उचित समय पर उसे शास्त्रार्थ के साथ प्रकाश करके अपने मेवाड़ राज की वंशावली को शुद्ध और प्रतिपादन कर मेवाड़ देश की एक अमूल्य सेवा करेंगे॥

बाटवें यदि कोई यह तर्क करें कि **राजा नन्द** के विक्रमादित्यजी से पहिले अथवा पीछे होने का मतान्तर प्राचीन समय के विद्वानों में होना कुछ भी सिद्ध हो जाय तब हम यह अनुमान कर सकते हैं कि अनन्द और सनन्द संवतों के भेद अवश्य हो सकते हैं। अतएव हमारा कहना यह है कि जिस किसी को इस विषय का कुछ मतान्तर हो वह एशियाटिक सोसाइटी बंगाल के स्थापन-करनेवाले सर विलियम् जोन्स साहिब (Sir William Jones) लिखित (The Chronology of the Hindus) **हिन्दुओं का काल निरूपण** नामक विषय के अंतिम दो तीन लेख-खंड अर्थात् फिकरे पढ़कर समझ लें (देखो एशियाटिक रिसर्चेज़ पुस्तक २) परन्तु स्मरण रहे कि हम राजा नन्द का विक्रम से पहिले होना अपने देशी शास्त्रों के अनुसार मानते हैं॥

पाठको! रूपक ३५६ भी पुरातत्व विद्या में बड़ा उपयोगी है। उस में आपको मालूम होगा कि चंद यह तात्पर्य्य वर्णन करता है कि जिस ११०० अथवा **१११५ में पृथ्वीराजजी उत्पन्न** हुए हैं वह संख्या कैसी है कि उसी ११०० अर्थात् १११५ में धनञ्जय हुए थे तथा उसी ११०० अथवा १११५ में विक्रमादित्यजी भी हुए थे और उसी में अर्थात् विक्रम से ११०० अथवा १११५ वर्ष पीछे पृथ्वीराज जी हुए हैं कि जिनका यह तृतीय शक में ने विषगुप्त [ब्रह्मगुप्त]

सोमेश्वरजी के अपूर्व तप से पृथ्वीराजजी उत्पन्न हुए ॥

श्लोक ॥ सोमेश्वर महाबाहो । तस्यापूर्वे तपो गुणैः ॥
तेने पुण्यं जगज्जेता । गर्भान्ते पृथुराडथम् ॥ छं० ॥ ६८६ रू० ॥ ३५७ ॥

सोमेश्वरजी का राव (वेन) को बधाई देना ॥

पद्धरी ॥ अनगेस पुत्ति हुअ पुत्र जन्म । बिज्जल चमंकि जनु मेघ घम्म ॥
वद्धाइ राव * सोमेस दीन । इक सहस हेम हय हुकम कीन ॥ छं० ६८७ ॥

को गुन कर लिखा है (ज्यो विप्र गुन गुप्त) क्या चंद यह अमूल्य पुरातत्व इस रूपक में नहीं कहता है ? नहीं, वह हमको निःसंदेह यही कहता हुआ दृष्टि आता है !! यदि यहां धर्मसुत का अर्थ युधिष्ठिर का ग्रहण हो सकता है तो हमारे देशी महाकवि का विक्रम से युधिष्ठिर तक का ११०० अथवा १११५ वर्ष का अंतर मानना मिस्टर बेन्टली साहब के अनुमान ११२३ के से बहुत मिलता हुआ है अर्थात् उस में केवल २३ अथवा ८ वर्ष का ही अंतर है । और यह हमारे स्वदेशी कालनिरूपकों की गणना से भी मिलता हुआ है, क्योंकि ११०० अथवा १११५ युधिष्ठिर से सेमक तक तथा उससे विक्रम तक ११०० अथवा १११५ और विक्रम से पृथ्वीराजजी तक ११०० अथवा १११५ और इस गणना के अनुसार ८१४ कलिगत में युधिष्ठिर हुए । तथा चंद के कहे विप्रगुप्त कि जिसको हम ब्रह्मगुप्त होना अनुमान करते हैं उसके विषय में मिस्टर बेन्टली साहब यह कहते हैं कि वह विक्रमी ५८३ तदनुसार ५२० ई० में हुआ था । उसने ब्रह्म-कल्प की गणना का प्रकार स्थापन और प्रकाश किया था कि जिस पर आधुनिक ज्योतिष का आधार है और ऐतिहासिक संवत् भी उसी के अनुसार परिवर्तन हुए हैं (देखो एशियाटिक रिसर्चेज़ पुस्तक ८ पृष्ठ २३६-७) इस ब्रह्मगुप्त की गणित में और अन्य ज्योतिषाचार्यों के सिद्धान्तों में कुछ अंतर है जिसके लिये अन्य कोई कोई इस ब्रह्मगुप्त को दोष देते हैं । इस का कुछ विवरण Mr. Samuel Davis लिखित हिन्दुओं की ज्योतिष विद्या The Astronomical Computations of the Hindus नामक लेख के पढ़ने से ज्ञात हो सकता है (देखो एशियाटिक रिसर्चेज़ पुस्तक २)

इस संवत् संबन्धी झगड़े में हमारा अंतिम निवेदन यह है कि यह पुरातत्वविद्या ऐसी बड़ी सूक्ष्म और अथाह गहरी है कि जो विद्वान उसमें कदाचित् थोड़ा सा भी चूक जाय तो वह उसमें डूब जाता है और उसके खारे पानी के समुद्र में तिरना बहुत कठिन है और उस में पड़ी हुई किसी वस्तु को वही गोताखोर अर्थात् शोधक निकाल सकता है कि जिसे धर्म्मरूपी प्राण को शुद्ध अंतःकरण में स्थित करके गोता मारने का अभ्यास होता है ॥

३५७ पाठान्तर—सोमेसर । सोमेस्वर । तस्या । पूर्वे । तयं । गुनं । गुणे । पुन्य । जगंज्जाता गर्भानं । गर्भान । प्रथिराजयं । प्रिथीराजयो ॥

इस रूपक के शुद्ध और अशुद्ध पाठों को सूक्ष्म दृष्टि से देखने से ज्ञात हो सकता है कि कुछ लेखकों ने उनको कैसे कैसे भ्रष्ट कर दिया है कि जिनके लिये स्वर्गवासी बिचारे चंद को हम लोगों के दिये अनेक दोष सहने पड़ते हैं ॥

* देखो, मालूम होता है कि चंद यहां अपने बाप का स्पष्ट नाम नहीं लेकर मुहावरे से राव शब्द प्रयोग कर राव बेन का निर्देश करता है ॥

छिब ग्राम एक षष्ठ पुक्कक षष्ठ्य। परिग्रह प्रसाद्द सब कीन तथ्य॥
नीसांन वाजि दरबार जोर। घन गर्ज्ज जान दरिया हिलोर॥ छं०॥ ६९८॥
पधराइ राइ मुष दरस कीन। क्रित कम्म पुब्ब फल मान लीन॥
करि जात कम्म मति ग्रंथ सोधि। वेदोक्त विप्प वर बुद्धि बोधि॥ छं०॥ ६९९॥
मंगल उच्चार करि नृत्य गान। अच्छरि अलाप सुर भुवन जान॥
छं०॥ ७००॥ रू०॥ ३५८॥

पृथ्वीराजजी के जन्मोत्तर गुणों का वर्णन॥

साटक॥ जन्मोत्तरि गुन जन्म राजन वरं, चालीस वर्षं घती॥
सा भोगं धर लच्छि टिल्लति वरं, पंजाब पंचौ पथं॥
इन्द्रंप्रस्थय संभरी ववरयं, सोमेसजा जोतयं॥
भुक्तं भुक्तय बंधि गज्जन वरं, जन्मं करं सुक्तयं॥ छं०॥ ७०१॥ रू०॥ ३५९॥

सोमेसजी को पृथ्वीराजजी के जन्मोत्तर गुण सुन कर हर्ष और शोक होना॥

कवित्त॥ सोम वत्त सुनि श्रवन। हर्ष अरु सोक उपन्नो॥
दैव काल संजोग। तपै ढिल्ली घर थन्नो॥
कहै व्यास संभरी। कन्न इह वत्त प्रमानं॥
किं जानै किं होइ। घरी इक घट्टन जानं॥
निम्मान मान सभर धनी। सुनी कित्ति अनगेस बर॥
मंत्री प्रमान सब इष्ट गुरु। कहै राज पृथिराज बर॥ छं०॥ ७०२॥ रू० ३६०॥ †

३५८ पाठान्तर–घनगैस। हुव। विजर्ल। बिजुंलि। चमंक। जुंनु। मैघ। जन्म। बहुाव। रथक। सोमेस। दीय। ग्रांम। इक। इक। हय:। हय। परिगह। परीयह। कौंन। तथ। बज्जि। गर्ज्जै। जांनि। पधराय। राय। मुंष। मरसन। हरष। कर्म। पुब। मांनि। क्रंम्म। मंन॥ वेदोक्त। विप्र। बुधि। प्रमोधि। गाम। ग्यांन। अछिर। अच्छर। सुरं। भूवन। जांनि।

३५९ पाठान्तर–जन्मोत्तरि। राजन्म। वर। च्यालीस। वर्षे। घटी। सोभागं। सोभाग्यं। लछि। ढिलिल। ढिल्लित। बर। पंचं। पंच। इंद्रप्रस्थ। ववरय। जोतियं। भुक्त। बर। जन्यं॥

३६० पाठान्तर–सोम। वती। उपनो। उप्पनो। देव। संजोग। ढिली। धर। थंनो। कन। वत। जाने। होय। यक। घटिन। जांन नमांन। संभरि। सुतिकिती। प्रमान। प्रिथीराज। पृथीराज॥

† यह छप्पय हमारे पास की और सब पुस्तकों में तो है किन्तु सं० १६४० वाली में नहीं है॥

विक्रम के सदृश पृथ्वीराजजी हुए कि जिन की बुद्धि का वर्णन चंद करता है ॥

दूहा ॥ विक्रम राज सरीस भो । बुधि ब्रंनन कवि चंद ॥
भूत भविष्यत व्रत्तमन । कहत अनूपम छंद ॥ छं० ॥ ७०३ ॥ रू० ॥ १९१ ॥

पृथ्वीराजजी के जन्मसमय के ग्रहों की स्थिति ॥

दूहा ॥ ग्रह स पंच चव हंस हय । लगन सु अष्टम मंद ॥
दुतिया गुरु मेषह तरनि । चिचह जनम नरिंद ॥ छं० ॥ ७०४ ॥ रू० ॥ १९२ ॥

सोमेश्वरजी का दरबार में बैठ ज्योतिषियों से पृथ्वीराजजी की जन्मपत्री का फल पूछना और पंडितों का फल वर्णन करना ॥

पद्धरी ॥ दरबार बैठि सोमेस राइ । लीने हजूर जोतिग बुलाइ ॥
कहो जन्म कर्म बालक विनोद । सुभ लगन महूरत सुनत मोद ॥ छं० ॥ ७०५ ॥
संवत्त इक्क दस पंच अग्ग । वैसाष मास पष क्रष्ण लग्ग ॥
गुर सिद्धि जोग चिचा निषच । गर नाम करन सिसु परम चित्त ॥ छं० ॥ ७०६ ॥
ऊषा प्रकास इक घरिय रात । पल तीस अंस चय बाल जाति ॥
गुरु बुद्ध सुक परि दसै थान । अष्टमै थार ग्रनि फल विनान ॥ छं० ॥ ७०७ ॥
पंच दुश्र थान परि सोम भोम । ग्यारमै राहु पल करन होम ॥ छं० ॥ ७०८ ॥
बारमै सूर सो करन रंग । अनभी नमाइ तिन करै भंग ॥
बिन पेस सेव रचि है न कोइ । भंजै भिवास सुष न दिन होइ ॥ छं० ॥ ७०९ ॥
प्रथिराज नाम बल हरै रूच । दिल्लीय तषत मंडै सु रूच ॥
च्यालीस तीन तिन वर्ष साज । कलि पुच्छमि इंद्र उद्धार काज ॥ छं० ॥ ७१० ॥
पर लहै द्रव्य पर हरै भूमि । सुष लहै अंग जष होइ भूमि ॥
बरनीय अट्ट दुय लेय व्याह । दुर्ग्ग तात थपि अप्प वाहि ॥ छं० ॥ ७११ ॥

---

१९१ पाठान्तर—सरीर । बुद्धि । ब्रनन । वर्त्तमन ॥

१९२ पाठान्तर—हंस चह । लेग्न । थले । गुर । तसवि जन्म । नरिंद । नरिंद्रः । नरिंद ।

१९३ पाठान्तर—सोमेस राय । हजुर । पंडित । बुलाय । कर्म्म । बालिक । महूंरत । संवत् । संवतह । ईस दस । दह इक । दश पंच षष । पंच षष । वैशाष । वैसाष सितीय । [illegible] । [illegible] [illegible] । सिद्धि । सिधि । जोग । योग । निछच । नछच । गुर । गुरु । सिसुं । घरी । जाति । सुक्र । दसम । दषम । थांन । अष्टमि थांन । जलि । विनांन । दूष । थांन । सोम भोम । होम । बारमे । [illegible] । करैं । सेव । हैं कोई । कोय । भंजे । भिवास । भिवास । सुषं । तं । होइ । भाम ॥

संषेप विरद् उचार कीन । क्यों सकौं जंपि मो बुद्धि छीन ॥
सुनि रद्द दान मंग्यौ अपार । दै गै सु वस्त्र द्रव्या न पार ॥ छं० ॥७१२॥
सब सहर नारि श्रृंगार कीन । अप अप्प झुंड मिलि चलि नवीन ॥
थपि कनक थार भरि द्रव्य दूव । पट कूल जरफ जर कसी ऊब ॥ छं० ॥ ७१३ ॥
अछ्छित अनूप रोचन सुरंग । मृदु कमल हास लोहन कुरंग ॥
इक जात मद्धि इक फिरत गेह । पहिराइ परस पर बढत नेह ॥ छं० ॥ ७१४ ॥
दरबार भी बरनी न जाइ । सुगंध वास नासा अघाइ ॥
बिगसंत बदन छत्तीस बंस । जदुनाथ जन्म जनु जदुन वंस ॥
छं० ॥ ७१५ ॥ रू० ॥ ३६३ ॥

हरें । सूच । शच । विलिय । दिल्लिय । मंडे । बूंदीवाली में—चालीस वर्ष तिम मांम माज । चालिस । पुहवि । हरे । भूंम । सुंष । भूंम । वरणीय । मानीअ । रूष्ट बल । लेइ । ल्याहि । तुंनग । तुंग । थैपि । चाहि । विरद । उचार । सकें । जंपि । मैं । सुनि । राय । दान । हय । गाय । द्रव्यान । नव्याम । श्रृंगार । झूड । नवान । कुल । कल । उब्ब । अछित । रोचन । लोहन । कुरंग । जाय । मधि । येह । नेह । जाय । सुगंध । नाशा । अघाय । बिगसत । छत्तीस । जदुनाथ । यदुन ।

जैसे कवि चंद रूपक ३५५ और ३५६ में अपनी प्राचीन गूढ भाषा के गूढार्थ में पृथ्वीराजजी का जन्म संवत् वर्णन कर आया है; वैसे ही यहां भी वह इन रूपक ३६२ और ३६३ में उन की जन्मपत्री तथा उस के ग्रहों का फलादेश वर्णन करता है । इन दोनो रूपकों के पाठ जहां तक हमारे पास की पुस्तकों से शुद्ध हो सके वहां तक हमने शोध दिये हैं, उनके इतने ही शुधने पर जो कई एक शंका अब तक लोग करते थे वह दूर हो गई । और जो इसी तरह और भी कुछ प्राचीन पुस्तकें मिल जावें और उन से यह रूपक फिर शोध दिये जावे तो आशा है कि इन रूपकों में लिखी ज्योतिषशास्त्र संबन्धी सब बात मिल जावें और विद्वानों की जो जो शंकाएं अब भी बाकी रहती हैं उनका भी निवारण हो जाय । इसके अतिरिक्त हमारे पाठक यह अच्छी तरह जानते हैं कि इस रासो जैसी भ्रष्ट लिखित प्राचीन पुस्तकों में अथवा वैसे ही कोई कोई बड़े प्रतापी मनुष्यों की जन्मपत्री अथवा ज्योतिष शास्त्र के अनुसार जिसका कुछ अन्वेषण किया जावे ऐसा कुछ विषय हम को वर्त्तमान समय में कहीं लिखा हुआ प्राप्त होता है उसको यथायोग्य रीति शोध लेना कैसा कठिन है । उसमें भी चंद की जैसी गूढार्थ की कठिनता और ज्योतिष शास्त्र के सिद्धान्तियों के मतान्तर पर दृष्टि दी जावे तो प्रत्येक सज्जन मनुष्य सुखपूर्वक कह सकता है कि यह कार्य बहुतही कठिन है और जो कदाचित् ऐसी कठिनता का कुछ पता लगा सकें तो हमारे स्वदेशी जगत विख्यात ज्योतिष शास्त्राचार्य पंडितवर श्री बापूदेवजी शास्त्री अथवा उन के शिष्य वर्ग में से भी कोई लगा सकते हैं; किन्तु अन्य के बश का यह कार्य नहीं है । इस जन्मपत्री को शोधने के लिये हमने बड़ा परिश्रम कर रखा है अर्थात् जितने पाठान्तर रासो की भिन्न भिन्न पुस्तकों में से मिलते जाते हैं और जितनी भिन्न २ प्रकार की पृथ्वीराज जी की जन्मपत्रियां भरतखंड में से मिलती हैं वे भी एकत्र की जाती हैं और ब्रह्मगुप्त रचित ज्योतिषशास्त्र की पुस्तक भी प्राप्त करने का उद्योग कर रहे हैं,

जिसका छंद का आशय करना उसकी शैली से अनुमान होता है। इस प्रकार से शोध होने पर हम इस जन्मपत्री के विषय में जिस विद्वान के गणित के अनुसार जो बात निश्चय होगी वह प्रकाश करेंगे। किन्तु अभी हम कुछ उन शंकाओं के विषय में भी कहते हैं कि जो इस विषय में महामहोपाध्याय कविराज श्री श्यामलदासजी ने कवि का सरल और स्पष्ट अर्थ न समझकर केवल प्रतिकूल अनुमानजन्य भ्रम के वश हो अपने खंडन-ग्रंथ में की हैं—

१ प्रथम कविराजजी ने पृथ्वीराजजी के जन्म संवत के प्रकाश करनेवाले रूपक ३५५ के साथ का रूपक ३५६ जैसे अपने खंडन-ग्रंथ में छोड़ दिया है, वैसे ही यहां भी उन्होंने रूपक ३६२ का छोड़ कर केवल रूपक ३६३ के आधार पर जन्मपत्री के संबन्धित दोष दिये हैं। इन दोनों स्थलों को हमारे विद्वान पाठक विचार कर समझ सकते हैं कि रूपक ३५६ और ३६२ को छोड़ देना उचित था कि नहीं और उनका रूपक ३५५ और ३६३ के साथ पूर्ण संबन्ध है कि नहीं। यदि पूर्ण संबन्ध है तो निर्णय करने के समय उनका त्याग देना किसी वास्तविक पुरातत्ववेत्ता के लिये कैसा अनुचित कर्म है॥

२ दूसरे जो कुछ दोष इस विषय में दिये गये हैं वे मालूम होते हैं किसी एक पुस्तक के पाठ पर से ही दिये गये हैं। किन्तु मैं आशा करता हूं कि डाक्टर होर्नली साहब कि जिन्हों ने अपने हाथ से रासो के कुछ भाग को बड़ी सूक्ष्म दृष्टि देकर शोधा है वे भले प्रकार साक्षी दे सकते हैं कि इस ग्रंथ के पाठान्तर, अपपाठ, विशेष पाठ और न्यून पाठ आदिक की क्या दशा है और क्या किसी एक पुस्तक के पाठ पर ही किसी बात का निर्णय होना उचित है॥

३ तीसरे यदि रूपक ३६२ न छोड़ दिया गया होता और पुरातत्ववेत्ताओं के निर्णय करने की रीति से ध्यान दिया गया होता तो कविराजजी अपनी कितनीक शंकाओं के समाधान स्वयम् इन रूपकों और भिन्न भिन्न पाठान्तरों से जान सकते थे; जैसे कि—

(क) रूपक ३६२ से पृथ्वीराजजी के जन्म की दूज तिथि ज्ञात होती है। यदि तिथि की संख्या का शब्द अशुद्ध भी हो तो भी हम कवि के कहे चित्रा नक्षत्र से स्पष्ट अनुमान कर सकते हैं कि या तो यह दूज कवि ने पड़वा उपरान्त की ग्रहण की है अथवा किसी और तिथी की संख्या यहां भ्रष्ट हो गई है। हम ज्योतिष शास्त्र तो नहीं जानते हैं किन्तु पंचद्राविड़ ब्राह्मणों में अभी तक प्राचीन प्रणाली चली आती है कि यज्ञोपवीत होने पर सात वर्ष के बालक को भी तिथादि वेदाङ्गों के कुछ ध्रुवे अर्थात् गुरु सिखाया करते हैं। उन के अनुसार हम यह कह सकते हैं कि हमारे आर्य मासों के नाम नक्षत्रों पर से पड़े हैं और प्रत्येक महीने का नक्षत्र सुदी १४ किंवा पूनम अथवा वदी प्रतिपदा के दिवस में होता है अतएव इस दूज के स्थान में कोई ऐसी ही तिथि थी जो भ्रष्ट हो गई है। देखो, कविराजजी ने **"वैशाख तृतीय पक्ख कृष्ण लग्ग"** पाठ लिखा है उसके स्थान में हम को सं० १६४० । १७७० और १८४५ की पुस्तकों में यह **'वैसाख मास पष कृष्ण लग्ग वा अग्ग"** पाठ लिखा मिलता है और वह एक प्रकार से ठीक भी दीखता है क्योंकि रूपक ३६२ में कवि तिथि कह आया है अतएव अब वह यहां शेष मास और पक्ष कहता है। चित्रा नक्षत्र के विषय में कुछ गोलमाल किसी पुस्तक में दृष्टि नहीं आता और वैशाख के विषय में कुछ गड़बड़ सी दीखती है अतएव जो कोई चित्रा से चैत्र मास का होना अनुमान करे तो हमारी सम्मति में तो वह कोई आश्चर्य दायक बात नहीं है।

(ख) कविराजजी ने कवि के कहे '**बारमैं सूर सो करन रंग**' पर ही विशेष दोष दिया है और उसका बारहवें घर में होना असंभव माना है तथा इतनी ही बात पर दोष देकर अन्य ग्रहों का कुछ शोध नहीं किया है। परंतु जो वे रूपक ३६२ के तीसरे चरण पर कुछ थोड़ी सी भी दृष्टि देते तो उनको मालूम हो जाता कि चंद कवि मेष का सूर्य होना स्वयम् कहता है जो संभव भी है "**दुतिया गुरु मेषह तरनि**" इससे यह भी समझ सकते थे कि जब मेष के सूर्य का बारहवें घर में होना कवि कहता है तब वृष लग्न भी है और "ऊषा प्रकाश इक घटिय रात" से कवि का गूढ़ार्थ भी यह है कि पृथ्वीराजजी का सूर्योदय के पश्चात जन्म होने से ऊषा एक घड़ी थी अर्थात् ऊषा के एक घड़ी पीछे उनका जन्म हुआ ॥

(ग) कविराजजी के खंडन ग्रंथ में "**गुरु सिद्ध जोग चित्रा नखत्त**" पाठ से सिद्ध योग ग्रहण किया है कि जिसका चित्रा नक्षत्र के साथ वा पास आना असंभव है, परंतु थोड़ी सी भी सूक्ष्म दृष्टि देकर देखते अथवा पुस्तकान्तर में पाठ देखते तो कितनीक पुस्तकों में सिद्ध पाठ जैसे हमको मिल गया वैसे मिल जाता ॥

(घ) कविराजजी ने अपने खंडन ग्रंथ में बड़ी बड़ी सूक्ष्म युक्तियो से सूक्ष्मतर अनुमान किये हैं, परंतु इस स्थान पर वे बड़ी ही बेतरह चूक गये हैं। उन्होंने "**गुरु नाम करन सिसु परम हित्त**" का **गुरु** पाठ से धोखा खाकर यह अर्थ किया है कि "गुरु ने बड़े प्रेम से बालक का नाम रक्खा" किन्तु यह अर्थ बिलकुल ही असत्य है। यद्यपि इस **गुरु** पाठ का पुस्तकान्तर में **गर** पाठ स्पष्ट मिलता है परतु वह न भी मिले तथापि पुरातत्ववेत्ता विद्वान इस छंद की प्रत्येक तुक की एक दूसरी से संगति मिलाकर भले प्रकार जान सकते हैं कि कवि "**तिथि वारं च नक्षत्रं योगं करणमेव च**" के अनुसार यहां यह कहता है कि "गर नामक करण शिशु को परम हितकारी है" न कि यह कि-गुरु ने बड़े प्रेम से बालक का नाम रक्खा। हमारे हे सज्जन पाठको! आप सोचो, विचारो, न्याय करो, और सत्य सत्य कहो कि यह महा अनर्थ करनेवाली भूल है कि नहीं और जो हम इतना परिश्रम केवल स्वदेशवत्सलता से उत्तापित होकर न करते तो हमारे देश की हिन्दी भाषा और ऐतिहासिक विद्याओं की कितनी हानि संभव थी। राजपूताने के कितनेक कवि लोग अपने को हिन्दी भाषा के काव्यों में ऐसा उत्कृष्ट समझते हैं कि मानो अन्यदेशीय उनके आगे कुछ माल ही नहीं है, परंतु इस अवसर पर हमको मिस्टर जोन बीम्स साहब का यह कहना स्मरण आता है कि "The Pandits of Rajputana even do not understand Chand beyond the general drift of the poen" "राजपूताना के पंडित भी चंद के काव्य को उसके एक साधारण भावार्थ के सिवाय नहीं समझते हैं" ॥

(ङ) कविराजजी के लिखे पाठ में "**पंचमें थान परि सोम भोम**" है और हम को पुस्तकान्तर में "**पंच बुध थान परि सोम भोम**" पाठ मिला है। क्या इस से जन्मपत्री के ग्रहों में कुछ अंतर नहीं पड़ जाता है? और क्या जब तक कि अनेक प्राचीन पुस्तकों से इन रूपकों का पाठ मिलानकर के शुद्ध न किया जावे तब तक जन्मपत्री को अशुद्ध कह देना मानों सहसा सिद्धान्त कर लेना नहीं है? यदि कोई कोई विद्यमान पुरातत्ववेत्ता अपने सहसा सिद्धान्त कर देने को कुछ भी समझ लेना अयोग्य नहीं समझेंगे और वे इस प्रचार को एक कमल बंद नहीं कर देंगे तो पुरातत्वविद्या को निःसीम हानि पहुंचनी संभव है। यहां कन्या का चंद्रमा और पृथ्वीराजजी का पृथ्वीराज नाम होने के कारण उनकी कन्या राशि का होना स्पष्ट है। और

पृथ्वीराजजी के जन्म होने पर क्या क्या आश्चर्यदायक बातें हुईं ॥

कवित्त ॥ भयौ जनम पृथिराज । ढुंग्ग पर चरिय सिषर गुर ॥
भयौ भूमि भूचाल । धमसि धम धम्म अरिनि पुर ॥
गढन कोट सें लोट । नीर सरितन बहु बढ्ढिय ॥
भै चक्क भय भूमिया । चमक चक्कित चित चढ्ढिय ॥
षुरसान थान षल भल्ल परिय । गभ्भ पात भय गभ्भनिय ॥
बेताल बीर बिकसे मनह । हुंकारत षह देवनिय ॥
कं० ॥ ७१६ ॥ छ० ॥ ३६४ ॥

पृथ्वीराजजी की बाल अवस्था के चरित्रों का वर्णन ॥

कवित्त ॥ बरष बधै बिय बान । पिष्य बढ्ढै इक मासह ॥
घरी दीह पल पष्य । मास लष्यिय ब्रष तासह ॥
मनिगन कँठला कंठ ॥ मद्धि केहरि नष सोहत ॥
घूंघर वारे चिहुर । रुचिर बानी मन मोहत ॥ कं० ॥ ७२१ ॥ छ० ॥ ३६७ ॥

ज्योतिष शास्त्र के एक अचल ध्रुव के अनुसार यह अनुमान कर लेने का काम भी चंद ने हमारे ऊपर ही छोड़ दिया है कि कन्या के चंद्रमा के साथ केतु भी है क्योंकि राहु और केतु सदा परस्पर साथ में रहते हैं ॥

३६४ पाठान्तर–जन्म । प्रिथीराज । पृथीराज । प्रथिराज । ढुग । ढुंग । भूचाल । धंम । कोट । से । लोट । बहि । बढिय । भैचक्क भय भूमियान । भय चक्कित भूमिया । चमकि । चढिय । षुरसांन । थांन । परीय । गभ । बैताल । विकसै । नयन । हुंकारन । देवनीय ॥

इस छप्पय में जो कुछ आश्चर्यदायक बातों के भाव कवि ने कहे हैं वे कोई वास्तविक आश्चर्य नहीं हैं किन्तु कवि लोग बड़े बड़े प्रतापी पुरुषों के जन्मादि के वर्णन में अद्भुत रस का आश्रय करके प्रायः ऐसा प्रसंग बांधा करते हैं । देखो, जैसे यहां "धमकि धम धम्म अरिन पुर" अथवा 'षुरसान थान षल भल्ल परिय" कवि ने कहा है । वैसे ही तबक़ात नासरी नामक फ़ारसी तवारीख़ में देखो कि महमूद गज़नी जिस रात्रि को उत्पन्न हुआ था उसी समय सिन्धु नदी के किनारे के एक मंदिर का फट जाना उस में लिखा है । उससे केवल इतना ही समझ लेना चाहिये कि महमूद मंदिरों को भ्रष्ट करने और मूर्त्तियों को तोड़ फोड़ डालनेवाला हुआ है अतएव कवि ने उसके जन्म समय भी वैसा ही उसके प्रताप का एक चिन्ह वर्णन किया है । इस छप्पय में वीर और अद्भुत रस मिले हुए हैं अतएव आर्तों करनेवाले अथवा किसी कोमल हृदयवाले मनुष्य के कान इस के पढ़ते ही खड़े हो जाते हैं, अर्थात् रस अपना प्रभाव उस को प्रत्यक्ष दिखा देता है ॥

३६५ पाठान्तर–बधे । बिय । बाधै । पल पलष । पष्य । पष । लष्यीय । लषीय । ब्रष । मनिगनि । कंठला । मधि । केहरि । सोहत । वाले केस । वारे केस । केसरि कुंभहि कुंभ दरसन । ज्योति । ज्योति । अरस । रस । छिन । संलहि । परत ॥

केसर सु मंडि सुभ भाल छवि । दसन जोति हीरा हरत ॥
नह ततप हक्क थह पिन रहत । हुलसि उठि उठि गिरत ॥
छं० ॥ ७१७ ॥ रू० ॥ ३६५ ॥

दूहा ॥ रज रंजित अंजित नयन । घूंटन डोलत भूमि ॥
लेत बलैया मात लषि । भरि कपोल मुष चूमि ॥
छं० ॥ ७१८ ॥ रू० ॥ ३६६ ॥

पद्धरी ॥ अंगुरिन लग्गि रगि चलत लाल । सर मद्धि उठत गज हंस बाल ॥
मिलि बाल जाल फबि रचि केलि। बढि रही दूंद जनु बीज बेलि ॥छं०॥७१९॥
जनु रमत कमल हत कमल अग्ग । तप तेज बढ्ढि मुष षिच नग्ग ॥
सब देव तेज देषंत अंग । उक्कार अंग अदभुत प्रसंग ॥ छं० ॥ ७२० ॥
संग बाल बैठि भोजन करंत । परिवार वस्तु लै हठ धरंत ॥
आदर अदव्व सध्धीन देत। बगसीस करत हिय परम हेत ॥ छं० ॥७२१॥
है हथ्थि चढत बहुत आनंद । मन मौज बौज कवि पढत छंद ॥
जिन हृदय कमल विद्याह हेत। कुल छेद भेद तिन बुद्धि लेत॥ छं० ॥ ७२२ ॥
पाइक्क संग कायक्क केलि । धरि धूप हथ्थ बाहंत झेलि ॥
गहि बग्ग हथ्थ फेरत तुरंत । नट नृत्य निपुन धावत कुरंग ॥ छं० ॥ ७२३ ॥
जल केलि करत मिलि सजन संग। अल्लोल कलभ जनु सरित रंग ॥
पकवान पांन सुगंध पूर । मादक सु मोद सुष सुषन नूर ॥ छंद ॥ ७२४ ॥
षेलत अषेट संग स्वानडोर । बग्गु वधंत पर गोस कोर ॥
सुष घरिय पहर दिन पष्य मास। सोमेस सूर चित बढत आस॥छं० ॥७२५॥
जिम राम कृष्ण सुख नंद गेह। संभरिय राय तिम दसा देह ॥
छं० ॥ ७१९ ॥ रू० ॥ ३६७ ॥

२६६ पाठान्तर—अजांत । घूठन । डौलत । बलइया । भुंष । चूंम ॥

२६७ पाठान्तर—लगि । लगि लगि । लोल । कैलि । अथ । तेजि । वढि । पचिग । वत्रि । पग । तेज । देषत । उहार । अदभूत । सुरंग । संग । बेठ करत । वस्तू । वस्त । हठि । अदव । सधीन । हीय । हथि । बढत । मोज । चोज । रिदे । सुहैत । विद्या सु । कुल । छेदि । भेदि । छेदि । बुधि पाइक । कायन । कैलि । धोप । धोप । हथ । बांहंत । बग । हथ । नृत्य निपुन्य । तुरंग । कैलि । अलोल । सरमि । सुगंध । पुर । षेलत । अषेट । संगि । स्वांन । डोरी । बगुरि ।

कवित्त ॥ कै दसरथ ग्रह राम । कै * धाम वसुदेव कृष्ण वर ॥
कै कलि कस्यप कूष । जानि उपज्यौ किरनाकर ॥
कृष्ण ग्रेह कै काम । कै * काम अंगज जनु अनुरध ॥
कै * नल कस्यप अवतार । किधौं कौमार इस्व रुध ॥
लषिन बतिस बहुतरि कला । वाल वेस पूरन सगुन ॥
क्रीडत गिलोल जब लाल कर । तब * मार जानि चापक सु मन ॥
छं० ॥ ७२७ ॥ रू० ॥ ३६८ ॥

दूहा ॥ कुटत गिलोला हथ्थ तैं । पारत चोट पयख ॥
कमल नयन जनु कांमिनी । करत कटाछ कयख ॥
छं० ॥ ७२८ ॥ रू० ॥ ३६९ ॥

पृथ्वीराजजी का गुरु राम से सब प्रकार की विद्या सीखना ॥

दूहा ॥ कोइक दिन गुर राम पैं । पढी सु विद्या अप्प ॥
चवदस विद्या चतुर वर । लई सीष पट लिप्प ॥
छं० ॥ ७२९ ॥ रू० ॥ ३७० ॥

संधत । वगीस । कौरि । कोरि । धारीय । परक । पष । सैामोस । सुर । चित । वठि । वढ्ठि । रांम । कण्णुं । सुभि । येह । जिम रांम नंद सुष कृष्ण येह । संभरीय । राव । देह ॥

* यह शब्द पाठ में विशेष है । ऐसे उदाहरण इस ग्रंथ की लिखित पुस्तकों में बहुत हैं और वह भी किसी किसी में ऊपर से लिखे हुए हैं । इसका कारण हमें, विचार करने से, यह मालूम होता है कि किसी कवि ने पढ़ने के समय अर्थ के लगाने की सुगमता के लिये इन सम्बन्ध के सूचन करनेवाले शब्दों को सकेत की भांति लिख लिया होगा और ऐसी पुस्तक से प्रति करनेवाले लेखकों ने उनको पाठ में मिलाकर प्रति कर दी है । इस अपने समाधान की पुष्टि में कई एक ऐसे स्थल हम अपने पास की प्राचीन पुस्तकों में बतला सकते हैं । अतएव इनको कवि की भूल अथवा Poetical licence नहीं समझना चाहिये ॥

३६८ पाठान्तर—कें । थिह । रांम । धांम । कैं । कश्यप । जांनि । उप्पज्जयै । किरनांकर । गेह । कांम । कांम । अनिरुद्ध । कश्यप । किधो । किधां । कैांमार । ईश्व । लच्छन । लषन । बतीस । बहोतरि । वेश । सुगन । जांनि । चांपक । सुंमन ॥

इस छप्पय की पहिली चार तुकों के चरण कई एक पुस्तकों में उलट पलट हैं, जैसे कि पहिली तुक के दूसरे चरण के स्थान में तीसरी तुक का दूसरा चरण; दूसरी तुक के स्थान में चौथी तुक, तीसरे की दूसरी में पहिले की दूसरी; और चौथे के स्थान में दूसरी तुक है ॥

३६९ पाठान्तर—छुट । हाथ । तें । पयल । कांमिनी । कटाछि । कटाव ।

३७० पाठान्तर—पंचह । पंद्रह । पंच कोइक । पै । पें । सू चउदह । चउदै । लइ शीषि पट लिप ॥

पद्धरी ॥ लिषि लिष्य कुँअर प्रिथिराज राज । गुरु द्रोन पास सुन ध्रम्म ताज ॥
ॐ नमो सिद्धि प्रथमं पढाय ॥ सब भाव भेद अष्षर वताय ॥ छं० ॥ ७३० ॥
दस पंच † दिन अध्येन कीन । दस च्यारि सार सब सीष लीन ॥
सीषी सु कला दस अट्ठ च्यारि । तिन नाम कहत कवि अग्ग सारि ॥ छं० ॥ ७३१ ॥
गुरु गीत बाद बाजित्र न्रत्य । सोचक्क सु वाच्य सविचार ह्रत्य ॥
मनि मंत्र जंत्र बास्तुक विनोद । नैपथ विलास सुनि नत्त मोद ॥ छं० ॥ ७३२ ॥
साकुन्न कला क्रीडन विसार । चित्रन सु जोग कवि चवन चारु ॥
कुसु मेष कला जुन इन्द्र जाल । सुचि क्रम विचार आचार लाल ॥ छं० ॥ ७३३ ॥
सैाभग प्रयोग सुगंध वस्त्र । पुनरोक्त छंद वेदोक्त चस्त्र ॥
बानिज्ज विनय भाषित्त देस । आवद्ध जुद्ध निर्जुद्ध सेस ॥ छं० ॥ ७३४ ॥
बरनंत समय चक्की तुरंग । नारी पुरुष्य पंषी विचंग ॥
भू भू कटाक्ष सुलेष लल्य । वृष कच्छ प्रषा उत्तर विजल्य ॥ छं० ॥ ७३५ ॥
सुभ सास्त्र कहे गनिकच पठन्न । लिषतव्य चित्र कविता वचन्न ॥
व्याकन्न कथा नाटक्क छंद । अविधान दरस अलंकार बंध ॥ छं० ॥ ७३६ ॥
घातक सु कर्म सुभ अर्थ जानि । सुर सरो कला बहुतरि बषान ॥
छं० ॥ ७३७ ॥ रू० ॥ २७१ ॥

दूहा ॥ कला बहुत्तर करि कुसल । अति निबद्ध जिय जानि ॥
हेत आदि जानन निपुन । चतुरासीत विग्यान ॥ छं० ॥ ७३८ ॥ रू० ॥ २७२ ॥

---

† इस दसपंच शब्द को पंद्रह ही दिन का वाचक नहीं समझना किन्तु कुछ दिन अथवा कुछ समय अथवा थोड़े दिनों का वाचक समझना उचित है, क्योंकि रूपक ३०० में स्पष्ट कोइक दिन पाठ आ गया है ॥

२७१ पाठान्तर–लिपि । लिष्यि । लिषि । कुअरं । कुंअर प्रिथीराज । पृथीराज । गुरं । गुरु । द्रोण । पासि । ध्रम । नमः सिद्धं । पढाइ । भेद्र । अष्यर । बताइ । बताई । अध्ययन । अध्येन दस पंच दिवस अध्येन कीन । सीषि । अठ । नांम । कहित । अंग । सार । गुर । न्रत्य । सोचक । ह्रत्य । वास्तुन । विनोद । नेपंथ । सुनि । नत । साकुन । शाकुन । विसार । विचार । सु जोग । कुसु । जुत । सोभग । प्रयोग । पुनरुक्ति । वेदोक्त अस्त्र । वांनिज । भाषित बावध । युद्ध । निरयुद्ध । सेस । पुरुष । बचंग । भूं भूं । सुलेष लष । छंद । उत्तर । विजल्यं । कहे । पठंन । लिषितं व्याचित्र । लिषितव्य । वचन । व्याकन । नाटक । नाटिक । दरसन । अलंकार । शुभ । जांनि । जांण । वषांनि ।

२७२ पाठान्तर–बहुतरि । जांनि । जांनन । विग्यांन । विग्यांन ॥

अरिल्ल ॥ चतुरासीत बिग्यानन जानन । भर मन मन आसंका भाजन ॥
मनिचा बीर सदा मन मोदन । बहुतरि बिचित्र छत्तीस विनोदन ॥छं०७३९॥
दरसन श्रवन गीत वर वादी । न्रत्य व्रत्य पाठक पुनि आदी ॥
लेषक चित्त बाज बक्तबनि । सस्त्र सास्त्र जुद्धाकर तत्वनि ॥ छं० ॥७४०॥
जुद्ध गनित पंषी गज तुरगा । आषेटक दूतन जल उरगा ॥
जंचन मंच महोछव पचन । पुष्फ कला फल कथा सु चिचन ॥ छं० ॥ ७४१ ॥
करन पदारथ आयुध केली । बलकरि सूचह तत्व पहेली ॥छं०॥७४२॥रू०३७६

दूहा ॥ कमल बदन रवि तेज कर । लष्पन संति बत्तीस ॥
कल नित प्रति सीषत कला । आवघ धरन छतीस ॥छं०७४३॥रू०॥३७७॥

साटक ॥ विद्या वंस विचार सत्य विनयं, सैाच्यं समाधीनता ॥
सन्मानं संस्थान सैाष्य विजयं, सैाजन्य सैाभाग्ययं ॥
संपूर्णं च सरूप रूप प्रसनं, चित्तं सदा चारनं ॥
सांगीतं च सजोग चारु सकलं, विस्तारयंते कला ॥ छं०७४४॥रू०॥३७८॥

दूहा ॥ गुन गरिष्ठ गैा विप्र प्रति । पूजक दान वरीस ॥
सब्द आदि दै निपुन अति । सास्त्रह सत्तावीस ॥छं०७४५॥रू०॥३७९॥

स्लोक ॥ संस्कृतं प्राकृतं चैव । अपभ्रंश: पिशाचिका ॥
मागधी शूरसेनी च । षट् भाषाश्चैव ज्ञायते * ॥ छं० ॥ ७४६ ॥ रू० ॥३८०॥

पृथ्वीराजजी के बत्तीस लक्षणों का वर्णन ॥

स्लोक ॥ विनयी गुरजनज्ञाता । सर्वज्ञ: सर्वपालक: ॥
शरीरं शोभते श्रेष्ठं ॥ द्वत्रिंशत्तस्य लक्षणम् * ॥ छं० ॥ ७४७ ॥ रू० ॥३८१॥

---

३७६ पाठान्तर—बक्र रविति । बिग्यांनन । जानन । भानन । मोदन । नृत्य २ । वक्तवनि । वक्तवन । शस्त्र । शास्त्र । सामत्र । युद्धा । तत्वन । युद्ध । तुरंगा । आस । षेटक । उरंगा । जचन । महोछव । प्पष्फ । किला । करगा । कैली । आयुद्ध । पहैली ॥

३७७ पाठान्तर—तेज । तेय । लष्यन । लषन । बतीस । शीषत । सीषति । आयुध । आउध । रन ॥

३७८ पाठान्तर—सार । सोख्यं । समांधीनता । समाधानता । सनमांन । सनमान । सोजन्य । सुरूप । चारयां संगीत । संगीत । संयोग । विस्तारयते ॥

३७९ पाठान्तर—विप्र । दाच । सबद । दे । सासत्रह ॥

* इन रूपकों के इन चोथे चरणों में जो अक्षरों को देखकर कुछ आश्चर्य नहीं करना चाहिये, क्योंकि संस्कृत भाषा के ग्रंथों में भी ऐसे उदाहरण मिलते हैं जैसे कि दुर्गापाठ के अध्याय २ श्लोक १ में "महिषे सुराणामधिपे" ॥

३८१ पाठान्तर—संस्कृतं । प्राकृतं । अपभ्रंसं । अपभ्रंषि । पिसाचिका । मांगधी । सूरसेनी ।

काव्यजाति ॥ अरि तर वर तुंगो । कहनार्थे कुठारो ॥
कुल कमल प्रकासो । तेज तप्तो दिनेस ॥
दरसन रस सेवी । कामिनी काम मूर्त्ति ॥
पर वर प्रति पंचं । पालनं पार्थवानां ॥ छं० ॥ ७४८ ॥ रू० ॥ ३८२ ॥

अरिल्ल ॥ सूरज ज्यों तप सत्रु कमोदन । फूलत अंग मत्र मन मोदन ॥
भूपति भूप प्रतापन भारी । हठ करि रावन ज्यों अहंकारी ॥
छं० ॥ ७४९ ॥ रू० ॥ ३८३ ॥

स्लोक ॥ ज्ञानधर्मार्थकामं च । वल प्राज्ञु सिंहासनं ॥
सभारंभत्तितेश्चैवा । भिधानं अष्टधा स्मृतं ॥ छं० ॥ ७५० ॥ रू० ॥ ३८४॥

दूहा ॥ पाघ वीराजत सीस पर । जरकस जोति निहाय ॥
मनों मेर के सिषर पर । रह्यौ अहप्पति आय ॥ छं०॥७५१॥रू०॥३८५॥
ता पर तुररा सुभत अति । कहन सोभ कवि नाथ ॥
मनु सूरज के सीस पर । धिषन धर्यौ धनु हाथ ॥छं ॥७५२॥रू०॥३८६॥
स्रवन बिराजत स्वाति सुत । करत न बनै बषान ॥
मनु कमल पत्र अग्रज रहै । ओस उडग्गन आन ॥छं०॥७५३॥रू०॥३८७॥
कंठ माल मोतीन की । सोभत सोभ विसाल ॥
मेरु सिषर पारस फिरत । जानि नक्षित्र माल॥ छं०॥७५४॥रू०॥३८८॥
मिस भींने सु मयंक मुष । निपट बिराजत नूर ॥
मनों बीर उर काम के । उगे आनि अंकूर ॥ छं० ॥ ७५५॥रू०॥३८९॥

भाषां । चैव । ध्यायते । विनय । जनं । ध्याता । सर्व्वज्ञ । पालक । शरीरे । मरीरे । सोभ्यते । सोभते । श्रेष्ठ । दुर्चिसमपि लक्षणै ॥

३८२ पाठान्तर–अनि । घर तुंगौ । कट्टनार्थे । कुठारौ । प्रकाशौ । तप्तौ । दिनेश: । सैवी । मूर्त्ति । पंच । पार्थवाना ॥

३८३ पाठान्तर–सूरिज्ञ । सुरज । ज्यौ । ज्यौं । शत्रू । फूलति । भुप । ज्या ॥

३८४ पाठान्तर–ध्यांन । सत्रु । सिंघासन । त्तते चैव । अभिधान ॥

३८५–८९ पाठान्तर–शीस । ज्योति । कै । शिषर । शिषर । परि । अहप्पति । अहपति । हरा । सोभै मनुं । मनो । सूरिज । मनों सूरज । कै शीष पर । परि । धषन । बिराजित । बषान । मनो । मनौं । अग्रजु । रहे । ओस । पयोकन । पयोकण । आनि । शोनत्व । शोभ । विशाल । सोभति । मेर । शिषर । पास । जनन । छिचन । मिसि । निपट । मनो । काम कै । ऊगे । उगै । आनि । अकूर ॥

अरिल्ल ॥ आनन इंदु उदोत सु मानैं । जानन भोज विचष्यन जानैं ॥
रवि ज्यौं सचुन के तन तापन । कामिनि कों मकरध्वज मानन ॥
छं० ॥ ७५३ ॥ रू० ॥ १९० ॥

अरिल्ल ॥ जा सरनागत मानव वंछै । जा सरनागत दानव इंछै ॥
जा सरनागत देव विचारै । सो प्रिथिराज प्रिथीपति सारै ॥
छं० ॥ ७५७ ॥ रू० ॥ १९१ ॥

दूहा ॥ प्रिथ्थिराज पति प्रिथ्थिपति । सिर मनि कुत्री छतीस ॥
नष सिष पर मित लस तजै । ते गुन बरनि बतीस ॥छं०॥७५८॥रू०॥१९२॥
तिन सहाय असुरह सुभट । सत सामंत तह सूर ॥
तिन सु कित्ति प्रगटी करन । कही चंद कवि पूर ॥छं०॥७५९॥रू०॥१९३॥

कवित्त ॥ चहूआन कै बंस । बीर मानिक्क पुत्र दस ॥
ता सु कित्ति कवि चंद । जनम लग्गै जंपत जस ॥
ज्यौं बीत्या भारथ्थ । आदि अंतह ज्यौं जंपैं ॥
वय वानी सु प्रमान । लगन मगनह गुन थप्पैं ॥
ज्यौं भयौ जनम कवि चंद कौ । भयौ जनम सामंत सब ॥
इक थान मरन जनमह सु इक । चल्लिह कित्ति ससि लगि रब ॥
छं० ॥ ७६० ॥ रू० ॥ १९४ ॥

एक दिन रात्रि को चंद की स्त्री का रस में आकर पृथ्वीराज जी की आदि से अंत तक कीर्त्ति वर्णन करने के लिये चंद से कहना ॥

गाथा ॥ समयं इक निसि चंदं । वाम वत्त वहि रस पाई ॥
दिल्ली ईस गुनेयं । कित्ती कहो आदि अंताई ॥छं०॥७६१॥रू०॥१९५॥

१९० पाठान्तर—आंनन । इंदु । इद । उदोत । समानौ । मानौ । आंनन । जानन । भोज । विचष्यन । जानैं । भांन । सचुंन । कै । कांमिनी । कुं । मकरध्वज । मांनन ॥

१९१ पाठान्तर—मांनव । इछै । दांन वंछौः । सरनागति । सो । प्रथीराज । प्रथिपति ॥

१९२ पाठान्तर—प्रिथीराज । प्रिथवीय पति । प्रथीराज प्रथीवी पति । शिर । कुंत्री । शिष । तजे । तै । छ तीन । छत्तीस ॥

१९३ पाठान्तर—असुरह सुरह । क्रित ॥

१९४ पाठान्तर— चहुआंनांरे । चहुवाना कै । बंश । मांनिक । मानक । स । जन्म लगे । लगैं । ज्यौ । बित्यौ । भारथ । ज्यौ । जंप्यौ । वांनी । प्रमान । लगन लगनह । मगनं । थप्यौ । जन्म । जेकौ । सांमंत । थांन । मरण । जन्म दिन इक । जनंम । कित्त । ससी । रवी । त्रिय । रवि ॥

पाठान्तर—चांद । रस । कहें ॥

चंद का अपने घर में कथा कहना और उसकी स्त्री का उसे सुनते हुए जो स्मरण आवे वह पूछते जाना ॥

दूहा ॥ एक दिवस कवि चंद कथ । कही अप्पनें भोन ॥
जिम जिम श्रवनत संभरी । तिम पुछि सारँग नैन ॥छं०७६२॥रू०॥३९६॥

चंद की स्त्री का उससे पूछना कि कौन दानव, मानव और नृप कीर्त्ति करने योग्य है ॥

दूहा ॥ कह्यौ कंत सैां कंति इम । हैां पूछों गुन तोहि ॥
को दानव मानव सु को । को नृप कित्तिक होहि ॥छं०॥७६३॥रू०॥३९७॥

चंद का अपनी स्त्री को गूढ़ उपलक्षों के द्वारा उत्तर दे कहना कि केवल हरि की कीर्त्ति करने योग्य है क्योंकि उसकी भक्ति के बिना मुक्ति नहीं है ॥

कवित्त ॥ पेट काज चढि बंस । परैं फर हरैं अवनि पर ॥
पेट काज रिन भैाम । मरैं मारैं सु ढुरैं धर ॥
पेट काज बहि भार । पार पाहारन पारैं ॥
पेट काज नह तुंग । चिन्न परि घर पर ढारै ॥
इति पेट काज पापी पुरुष । बधै बहु लक्की चरन ॥
नर वर सुकम्म कथा नह करै । इच्चै उदर दुम्भर भरन ॥
छं० ॥ ७६४ ॥ रू० ॥ ३९८ ॥

इस छप्पक से अंत तक कवि इस आदि पर्व का तो उपसंहार और दशम की कथा का प्रसंग अपनी स्त्री के वार्त्तालाप के द्वारा बड़े गूढ़ार्थ में वर्णन करता है। हम आशा करते हैं कि काव्य के रसिक इस प्रसंग के दोहों और उनके अर्थ के गांभीर्य को अनुभव करके बहुत ही प्रसन्न होंगे ॥

३९६ पाठान्तर–सुदिन । वद । कहीय । अप्पने । भौन । श्रवनंत । श्रवनन । इच्छनह । पूछीय । सारंग । नैन ॥

३९७ पाठान्तर–कंति । सो । सों सो । कंत । ईम । होां । हो । पुछौं । पूछूं । गुन । तोहि को । दांनव । मांनव को । कैां । कैा नृप । कसि । कहोहि ॥

३९८ पाठान्तर–काजि । वंस । वंश । परथइ फरथकहरैं । परइं । फरहरइं । पैठ । काजि । रन । भोमि । मरे । मारे । मरै । मरें । मारें । सुं । ठरें । ठरइं । पैठ । काजि । पाहारव । पेट्ट । काजि । लह । चिंत्र चित्र । चित्र । परि । पारय । टारैं । इन । इत । काजि । पुरुष । बंधै । बधे । लक्षी । चार । सुक्रम्म । कह । करहि । इदर । ईह । भरण ॥

कवित्त ॥ मेह बिना नहि नेह । नेह बिन गेह अरस रस ॥
पिय बिन तिय न उमंग । अंग शृंगार रूप रस ॥
नायक बिन नह सेन । दंत बिन भुक्ति न होई ॥
तेग त्याग तैं रहित । कहै कीरति को लोई ॥
बिन नीर मीन राजत कहूं । छत्री बिन सूर तरिन ॥
मन बच क्रम्म तिम जानि जिय । न है मुक्ति हरि भक्ति बिन ॥
छं० ॥ ७९५ ॥ रू० ॥ ३९९ ॥

चंद की स्त्री का उससे कहना कि चित्रनेवाले को चित्र कि जिससे तू दुस्तर के पार उतरे-चहुवान की कीर्त्ति चित्रने से वह क्या रंजैगा ॥

दूहा ॥ चित्रनहारे चित्रि तूं । रे चतुरंगी नाह ॥
का चहुआन सु किति कवि । मन मनुछ हरि लाह ॥ छं० ७९६ ॥ रू० ॥ ४०० ॥

कवित्त ॥ तत्त चीन पुत्तरी । पंच बंधी कर नंचै ॥
आसा नदी सपूर ॥ जीय मनोरथ संचै ॥
बहु तरंग तिश्राह । राग बहु येह कुरंगी ॥
का चहुआना किति । कंत धीरज निर भंगी ॥
मन मोह मूढ बिस्तरि रह्यौ । चिंता तट घट भंजइय ॥
उत्तरहि पार दुत्तर कवी । का चहुआना रंजइय ॥
छं० ॥ ७९७ ॥ रू० ॥ ४०१ ॥

चंद का अपनी स्त्री से कहना कि मैं चहुआन का ऋण उतारता हूं ॥

दूहा ॥ कहे गुपत गुन तैं भले । मो जिय इय अंदेस ॥
रिन अप्पैां चहुआन कैा । पुब्बह पिथ्थ नरेस ॥ छं० ॥ ७९८ ॥ रू० ॥ ४०२ ॥

३९९ पाठान्तर-बिना । नह । नेहु । चेहु । गेह । गैह । पीउ । पिय । तीय । श्रिंगार । सैन । दस । बिन । भुंक्ति । होइ । तैग । त्यांग । ते । तन । लोइ । जीवन । नही । सूरं तारिन । सूर तरिन । बच । क्रम । क्रंम । जांनि । जीय । सु न । हे । नही मुक्ति हरि भक्ति बिनां ॥

४०० पाठान्तर-चित्रनहारै । चं । चहुंवांन । कवि । मनुछ ॥

४०१ पाठान्तर-तत्र । तत । पुतरी । पूतली । बंधा । नचै । नच्चै । नंदी । संपूर । जीव । मनोरथ । बहां । संचै । बहुंन । रंग । तृश्नाह । बहुं । येह । कुरंगी । कां चहुवांन । मोह । मुंढं । चतां । भंजइय । उत्तरिहि । उतरहि । दुतर । कट्टो । कां । चहुंवांन । पंजरय । रंजइह ॥

४०२ पाठान्तर-कहै । तै । तैं । भलो । भलैं । मो । ईह अंदेस । रिन । अप्पो । कैा । पुब्बह पंथ नरेस । पुब्बह पिथ्थि नरेस ॥

चंद की स्त्री का कहना कि राजा को ऋण देता है तो गोविन्द को क्यों नहीं सुमरता ॥

दूहा ॥ चित्रनहारे हेरि चित । चित्रन हेरि करविंद ॥
जो रिन अप्पै राज कौ । तौ सुमरै न गुविंद ॥ छं० ॥ ७६९ ॥ रू० ॥ ४०३ ॥
भ्रम जल मन मंदार करि । भ्रम जल भेष न फेरि ॥
चित्त न अप्प चित्र कौ । चित्रनहारे हेरि ॥ छं० ॥ ७७० ॥ रू० ॥ ४०४ ॥

चंद का उत्तर देना कि मैं कमलासन को देखकर अकुलाया हूं, केवल भक्ति विलंब करनेवाली है ॥

दूहा ॥ कमलासन देषन थक्यौ । भगत बिलंबन हार ॥
क्रोध अप्प सब जग ग्रसै । ग्रसत न लग्गै वार ॥ छं० ॥ ७७१ ॥ रू० ॥ ४०५ ॥

तथा चंद का कहना कि संसार में जो कुछ और सर्वव्यापी है वह कमलासन ही है उसी की उपमा करके मैं पृथ्वीराज जी की कीर्त्ति वर्णन करता हूं ॥

भुजंगी ॥ वही नत्त त्रैलोक संसार सारं । वही तारनं सत्त भौ सिंध पारं ॥
जगत्तं अधारं निराधार सोही । वही अन्नदा संपदा नित्य सोही ॥ छं० ॥ ७७२ ॥
वही भेद मंत्रं गजानंत लोयं । वही पूरनं ब्रह्म संसार भोयं ॥
नवं भक्ति कौ संव ही क्रच धारी । भम्यौ ब्रह्म बुझ्यौ वही सिद्ध तारी ॥ ७७३ ॥
अगत्तं सुरत्तं वही हैं निनारं । वही वासना वासुदेवं प्रकारं ॥
वही भत्त हथ्थं नच्यौ कप्पिमानं । वही यै वही यै वही यै निधानं ॥ छं० ॥ ७७४ ॥
हकं एक आचिज्ज कीनैं गुसांई । चवै चंद जो रंग गोव्यंद पाई ॥
वही की उपम्मा करै किति भासैं । वही सव्व संसार मझ्झं प्रकासैं ॥ छं० ॥ ७७५ ॥
वही अंतरंगी सुरंगी निनारं । वहै राज राजीव लोचन्न सारं ॥ छं० ७७६ ॥ रू० ४०६ ॥

४०३—४०४ पाठान्तर—चित्रनहारे चित्र तूं । कवि चंद्र । ज्यौ अप्पो । अपैं । को । तो । समरैं । सम्मरि । गोविंद ॥ ३९० ॥ मंदा करि । भेष न फोरि । चित्रन रुप्यौ । अपं । कों । चित्रनहारै ॥

४०५ पाठान्तर—देषत । क्रोध । सर्ब्ब । ग्रहै । लगो । लगैं ॥

४०६ पाठान्तर—सत । नारयं । भव । सिंधु । जगतं । सोहो । अंही । अही । सरदा । सोअही । भेद । मंत्र । मजा मंत । लोयं । पुरनं । सोयं । भोयं । नव । भांति । शत्र । भम्यौ । जगतं । सुरतं । हेनि । हेनि । वासना । वास । देवं । वास देवं । भक्ति । हथं । कप्यिमानं । कपिमानं । नधानं । वही वै वही ये निधानं निधानं । एक । चेक । चेक । चाश्चर्ज । कीनें । कीने । गुसार । गुसारं । जो । रंगो । गोविंद । उपमा । करं । भासे । कही । सकल । मझे । प्रकासे । वहै । लोयंन ॥

चंद की स्त्री उसे कहती है कि ब्रह्म को ब्रह्म में देख, जो उसे देखता है उसे वह दीखता है, नर की कीर्त्ति मत गा, क्योंकि उससे और कोई बलवंत नहीं है ॥

दूहा ॥ ब्रह्म देषि ब्रह्मान्तरव। हरि दिषियन दिष्षाइ ॥ ३ ॥
बिज्ज कटा अग्यांन मन। गोपो हरि गो गाइ ॥ छं० ॥ ७७७ ॥ रू० ॥ ४०७ ॥
ब्रह्म ब्रह्म हरत बर। नर जानी न गुविंद ॥
सकल घटं घट हरि रमै। ज्यों अनेक घट चंद ॥ छं० ॥ ७७८ ॥ रू० ॥ ४०८ ॥
जस अपजस लाभिष्ट होइ। अवगति गति न बुझाइ ॥
गोप ग्वाल बूझे नहीं। गोपन बूझी गाइ ॥ छं० ॥ ७७९ ॥ रू० ॥ ४०९ ॥

कवित्त ॥ कहि मद्दियल बल कित्ती। एक दट्टं हरि धारिय ॥
कहि वासिग बल कित्तौ। सु फुनि करि नेचां सारिय ॥
समुंद कित्तौ गरुअत्त। अप्प भुज जोर हिलोरिय ॥
कित्तौक सबल मेरु गिरि। कमठ होइ पिट्ठह तोलिय ॥
लघु बली सेस बंभानवै। सुर असुरायन दिठ्ठ सह ॥
कवि चंद अवर बल वैम कहि। कह तौ हरि बलवंत कह ॥
छं० ॥ ७८० ॥ रू० ॥ ४१० ॥

चंद का अपनी स्त्री को उत्तर दे कहना कि अंग अंग में हरि-रूप-रस है ॥

दूहा ॥ त्रिय वर ज्यौं नर ज्यौं सु कवि। नर कित्ती नन गाइ ॥
अंग अंग हरि रूप रस। ब्रन्न दिषाइ सुनाइ ॥ छं० ॥ ७८१ ॥ रू० ॥ ४११ ॥

४०७ पाठान्तर—ब्रह्मांतरबर। हरिपिदिषियन द्रिषायं। बिज। अग्यान। गोपी। गो। गाय ॥

४०८ पाठान्तर—ब्रंह्म ब्रंह्म। जांनी। गोविंद। घटमै। ज्यौं। मै रामचंद ॥

४०९ पाठान्तर—लाभिष्टकी। बुझाय। ग्वैाप। बुझो। बुझै। गौपन। बुझी। गाय ॥

४१० पाठान्तर—वठह। धारीय। कितैा। किनैा। फुंनि। सारीय। सारी। समुद। किसैा। गुरुवत्त। गुरुवत्त। अप्प व। भूज। जैार। हिलोरीय। कितक। मेरु। मेर। गिर। हैाइ। पिठह। तैालिय। शेस। असुरार्दन। दिठ। कहै। स। वलिवंत। कहि ॥

४११ पाठान्तर—त्त्रीय। सुं किती लाइं। गाय। ब्रंवि। दिषाइं। द्रिषाय। सुंनाइं। सुनाय ॥

चंद की स्त्री का उससे कहना कि अङ्ग अङ्ग में हरि-रूप-रस वर्णन कर दिखाओ ॥

दूहा ॥ अंग अंग हरि रूप रस । विविधि विवेक वरेन ॥
मुकति समप्पन कंत रस । जुग तिनि जोग सरेन ॥ छं० ॥ ७८२ ॥ रू० ॥ ४१२ ॥

चंद का उत्तर दे कहना कि कान दे सुन मैं वर्णन कर दिखाता हूं ॥

दूहा ॥ कह्यौ भांमि मैं कंत इम । जो पूछै तत मोहि ॥
कान धरौ रसना सरस । ब्रन्नि दिषाऊं तोहि ॥ छं० ॥ ७८३ ॥ रू० ॥ ४१३

इति श्री कवि चन्द विरचिते प्रथिराज रासके आदि पर्व नाम प्रथम प्रस्ताव सम्पूर्णम् ॥

४१२ पाठान्तर–बिविध । वरन्नं । मुगति । जुंग । जोग । मरन ॥
४१३ पाठान्तर–भांमिन । मैं । जो । पुछइ । पुछै । कान । दिषांऊं तोहि ॥

उपसंहारिणी टिप्पणी

यद्यपि इस महाकाव्य के महाकवि चंद बरदाई ने इस आदि पर्व्व का उपसंहार अपनी निज काव्य-रचन-शैली के अनुसार ३९५ रूपक से लेकर ४१४ तक में बड़े गूढार्थ के साथ वर्णन कर दिया है परन्तु यह भी उचित और अत्यावश्यक है कि हम भी अपनी शैली के अनुसार अपने टिप्पणों के उपसंहारार्थ कुछ थोड़ा सा अपने पाठकों की सेवा में सविनय निवेदन करें कि जिससे सर्व साधारण को हिन्दी भाषा के इस महाकाव्य का कुछ स्वरूप-ज्ञान हो।

इस महाकाव्य का नाम **पृथ्वीराजरासो** है और यह दो शब्दों से मिलकर बना है अर्थात **पृथ्वीराज और रासो**। इस संज्ञा का अर्थ यह होता है कि "पृथ्वीराज को रासो"। ग्रंथकर्त्ता ने **पृथ्वीराज** नामक संज्ञा से, हमारे उन पृथ्वीराजजी चौहान को अपने इस महाकाव्य का नायक

ग्रन्थ–संज्ञा

वर्णन किया है जो विक्रम के बारहवें शतक में हमारे स्वदेशी अंतिम राजराजेश्वर अर्थात् बादशाह हुए हैं, जिनकी शूरवीरता का अभिमान आज तक प्रत्येक आर्य्य को है और जिनके नाम का ओटा रात्रिंदिन की बोलचाल में हमारे देश के सर्व साधारण किया करते हैं। यह भी किसी से छिपा नहीं है कि वे कैसे बड़े कट्टर आर्य्य और शूरवीर राजा हुए हैं, कि जिन्होंने सुलतान शाहाबुद्दीन गोरी को कई बेर घोर युद्ध कर के पराजित किया था। परंतु होनहार परम बलवान होती है कि जिससे अचिंतित घटना भी झट उपस्थित हो जाती है। देखो, ईश्वर ही की इच्छा हिन्दुओं की बादशाहत स्थिर रखने की न थी, कि दैवयोग से पृथ्वीराजजी चौहान जैसे शूरवीर राजा, सुलतान शहाबुद्दीन गोरी के हाथ से, अपनी अंतिम लड़ाई में, अंत को प्राप्त हुए। वह भी फिर कैसे कि वे हिन्दुओं की बादशाहत के सब ठाठ पाटरूपी सर्वस्व को मानो अपने साथ ही लोकान्तर में ले गये और जगत को यह निर्देश कर गये कि लौकिक में जो प्रायः यह कहा करते हैं कि किसी के अंत समय उसके साथ कुछ नहीं जाता है वह एक प्रकार से असत्य है। अब रहा हिन्दी **रासो** शब्द, वह संस्कृत **रास** अथवा **रासक** से है और संस्कृत भाषा में **रास** के "शब्द, ध्वनि, क्रीड़ा, शृंखला विलास, गर्ज्जन, नृत्य और कोलाहल आदि" के अर्थ और **रासक** के काव्य अथवा दृश्यकाव्यादि के अर्थ परम प्रसिद्ध हैं। मालूम होता है कि ग्रंथकार ने संस्कृत **भारत** शब्द के सदृश **रासो** शब्द को भावार्थ से महाकाव्य के अर्थ में ग्रहण कर प्रयोग किया है। यह **रासो** शब्द आज कल की ब्रज भाषा में भी अप्रचलित नहीं है किन्तु अन्वेषण करने से वह काव्य के अर्थ के अतिरिक्त अन्य अनेक अर्थों में भी प्रयोग होता हुआ विद्वानों को दृष्टि आवेगा, जैसे—"हू ने चौदे के गदर को एक रासो जोड्यो है। कल बहादर सिंघजी की बैठक में बदर ने गदर को रासो गायो हो, फिर मैंने भरतपुर के राजा सूरजमल को रासो गायो सो सब देखते ही रह गये। अजी ये कहा रासो है। मैं तो कल्ल एक रासो में फँस गयो या सूं तुमारे वहां नाय आय सक्यो। अजी राम गोपाल बड़ो छिनारिया है, वाके रासे में फँस के रुपैया मत बिगाड़ दीजो। हमने आज बिन को रासो निबटाय दीनो हैं। देखो सब रासो के संग रासो है, बुरी मत मानो"। तथा लुगाइयाँ भी गाया करती हैं—

गीत ॥ मत काची तोन्ह रखियो घानी

नान्ह कहुंगी ओंत रासा

गुर राख, पकावा, मत काचा। इत्यादि ॥ १ ॥

जिव लोगन की रास उठेगी तोन्ह के खाक उठावेगा,

हल जोत, नहीं पछतावेगा। इत्यादि ॥ २ ॥

२ यद्यपि इस महाकाव्य का केवल नाम सुनते ही इसका विषय यह प्रतीत होने लगता है कि इसमें पृथ्वीराजजी चौहान के जन्म से लेकर मरण तक के ही सब चरित्र वर्णन किये गये हैं, परंतु इसके गर्भित वृत्तों की परीक्षा करने से जानने में आता है कि महाकवि चंद ने इसमें पृथ्वीराजजी के चरित्रों के साथ ही उनके सब समकालीन शूर सामंत, अधीन राजा, इष्ट मित्र और सगे संबन्धी और सहायक यावदार्य राजकुलों के भी कुछ न कुछ चरित्र और शौर्य्य वर्णन किये हैं। अतएव यह कदापि नहीं समझा जा सकता. कि यह महाकाव्य पृथ्वीराजजी चौहान के नायक होने के कारण से केवल चौहानों की ही बापौती का ग्रंथ है, किन्तु यह वास्तव में यावदार्य राजकुलों का सर्वस्व है। देखो, पृथ्वीराजजी से लेकर जिन जिन शूर वीरों के चरित्र इसमें वर्णन किये गये हैं उन सब की विद्यमान संतान वर्तमान काल की हमारी श्रीमती भारत राजराजेश्वरी विक्टोरिया के सिंहासन के चारों ओर उपस्थित होकर अपनी अपनी प्रतिष्ठा के अनुसार तन मन और धन के द्वारा परम राजभक्ति को प्रकाश कर रही है और श्रीमती के प्रस्वेद के साथ मानों अपना रक्त तक बहाने को प्रस्तुत खड़ी है। क्या पृथ्वीराजजी के एक बड़े शूर वीर सामंत पज्जूनजी के वंश में श्रीमहाराज साहब जयपुर और उनके राजवंशीय सरदार नहीं हैं? क्या पृथ्वीराजजी के सगे संबन्धी जयचंदजी के वंशज श्रीमहाराज साहब जोधपुर और कृष्णगढ़ और उनके भाई बेटे नहीं हैं? क्या पृथ्वीराजजी के बहनेऊ और परम शूर वीर सहायक रावल समरसीजी की कुलीन संतान में श्रीमहाराज साहब नेपाल, श्रीमहाराणाजी साहब उदयपुर, ओदरबार डूंगरपुर और प्रतापगढ़ अपने अपने राजवंशी उमराव और सरदारों के सहित नहीं हैं? क्या चौहानजी के अनेक वंशज बूंदी, कोटा सिरोही, नीमराणा, भदावर बेदला, कोठारिया, और पारसोली आदि के राजा महाराज और सरदारों को आज हम अपनी आंखों से नहीं देखते हैं? इसी तरह अन्य सब की विद्यमान संतानों को भी हमारे पाठक स्वयम् विचार देखें और इस थोड़े में ही बहुत करके समझ लें कि इस महाकाव्य का विषय बारहवें शतक के यावदार्य राजकुलों के सम्मिलित चरित्रों से परम विभूषित है॥

विषय

३ इस पृथ्वीराज रासो को जो हम अपने लेखों में महाकाव्य कर के लिखते हैं वह कुछ अन्यथा और आश्चर्यदायक नहीं है, किन्तु साहित्यदर्पण में महाकाव्य का जो नीचे लिखा हुआ लक्षण लिखा है उससे वह विशेषांश में मिलता हुआ है—

काव्य

सर्गबन्धो महाकाव्यं तत्रैको नायकः सुरः। सद्वंशः क्षत्रियो वापि धीरोदात्त गुणान्वितः॥
एकवंशभवाः भूपाः कुलजा बहवोऽपि वा। शृङ्गारवीरशान्तानामेकोऽङ्गी रस इष्यते॥
अङ्गानि सर्वेऽपि रसाः सर्वे नाटकसन्धयः। इतिहासोद्भवं वृत्तमन्यद्वा सज्जनाश्रयम्॥
चत्वारस्तस्य वर्गाः स्युस्तेष्वेकं च फलं भवेत्। आदौ नमस्क्रियाशीर्वा वस्तुनिर्देश एव वा॥
क्वचिन्निन्दा खलादीनां सतांञ्च गुणकीर्त्तनम्। एकवृत्तमयैः पद्यैरवसानेऽन्यवृत्तकैः॥
नातिस्वल्पा नातिदीर्घाः सर्गा अष्टाधिका इह। नानावृत्तमयः क्वापि सर्गः कश्चन दृश्यते॥

सर्गान्ते भाविसर्गस्य कथायाः सूचनं भवेत् । सन्ध्या सूर्य्येन्दुरजनीप्रदोषध्वान्तवासराः ।
प्रातर्मध्याह्नमृगयाशैलर्तुवनसागराः । सम्भोगविप्रलम्भौ च मुनिस्वर्गपुराध्वराः ॥
रणप्रयाणोपयम मन्त्रपुत्रोदयादय । वर्णनीया यथायोगं साङ्गोपाङ्गा अमी इह ॥
कवेर्वृत्तस्य वा नाम्ना नायकस्येतरस्य वा । नामास्य सर्गोपादेयकथया सर्ग नाम तु ॥
सा० द० ५५९ ॥

जब कि यह महाकाव्य के लक्षण के अनुसार वास्तविक एक महाकाव्य है तब फिर उसके रचनेवाले का भी साहित्यशास्त्र में एक अच्छा व्युत्पन्न महाकवि होना क्या अनुमान नहीं किया जा सकता है? जैसे कि इस महाकाव्य का का विषय पृथ्वीराजजी चौहान और उनके समकालीन यावदार्य राजकुलों के चरित्रों से सवलित है वैसे ही उसका काव्य भी भिन्न भिन्न प्रकार के छंदों से विभूषित अनेक प्रकार के काव्यों का एक ऐसा संवलित काव्यात्मक है कि उसको हम किसी एक प्रकार के काव्य की संज्ञा प्रदान नहीं कर सकते हैं । उसके काव्य को **श्राव्य काव्य** की संज्ञा देने में हम आशा करते हैं कि किसी विद्वान को भी कुछ शंका न होगी, किन्तु सूक्ष्मतर अन्वेषण करने से ज्ञात होगा कि उसको कोई **दृश्य काव्य** का अच्छा व्युत्पन्न परीक्षक भले प्रकार जान सकता है । क्या हम यह नहीं विचार सकते कि इस महाकाव्य के छंदों को कवि ने रूपक के क्रम से क्यों गिना है? इस महाकाव्य की सूक्ष्मतर परीक्षा करने से यहां तक भी स्पष्ट विदित हो सकता है कि महाकवि चंद ने उसको काव्य की अनेक उत्तमताओं के इन तीन मूलों से भी भले प्रकार विभूषित किया है । प्रथम, तो महाकवि ने अपने वचन को शृंगार, रस, अनुप्रास और अलंकारादिक से परम विचित्र किया है । दूसरे, उसने भाव में जोड़ रखा है । तीसरे, इस महाकाव्य के सब छंद प्राचीन और नवीन प्रकार की गानविद्या के अनुसार गाये भी जा सकते हैं । इसके अतिरिक्त महाकवि ने पृथ्वीराजजी और उनके समकालीन यावदार्य राजकुलादि के इतिहास भी जहां तक उससे हो सके हैं भले प्रकार से वर्णन किये हैं । हिन्दी भाषा में साहित्यशास्त्र और सब पौराणिक अनुवाद विषयक ग्रंथ जो अब तक प्राप्त हो सके हैं वे बारहवें शतक के अथवा उसके पहले के नहीं हैं किन्तु वे सब इधर के समय के रचित हैं, अतएव हम को समझना चाहिये कि चंद ने संस्कृत भाषा के अनेक ग्रंथों के आधार से ही यह महाकाव्य रचा है । और जब कि यह बात ऐसी ही है, फिर हमको उसके परम परिश्रम के लिये कितना आभारी होकर उसकी प्रशंसा करनी चाहिये । क्या हमको इस महाकाव्य की सूक्ष्मतर परीक्षा करने से चंद की उक्ति, साहित्यशास्त्रविषयक नियम, और पौराणिक कथा आदि में उसका संस्कृत भाषा के अनेक विद्या ग्रन्थों का अनुकरण करना नहीं दृष्टि आता है? जहां तक हिन्दी भाषा के ऐसे अनेक ग्रंथ कि जो चंद के पीछे के रचित हैं, हमारे दृष्टिपथ में आये हैं, उन सब से यही ज्ञात होता है कि उनके रचनेवाले चंद कवि जैसे संस्कृत भाषा से भले प्रकार परिज्ञात नहीं थे और उन्होंने चंद की शैली का ही निःसंदेह अनुकरण किया है । हमारे कहने का सारांश यह है कि इस महाकाव्य को उसके अति क्लिष्ट और हमारी बुद्धि को चल विचल कर देनेवाला होने के कारण निन्दनीय ठहराना नहीं चाहिये, किन्तु साहित्यशास्त्रादि के संस्कृत भाषा के अनेक ग्रंथों को साथ में लेकर और अपने हृदय को चारण और भाटादि के वंशपरंपरा के हाह वैर के दुराग्रह से शुद्ध करके सूक्ष्मतर परीक्षा करनी चाहिये उससे हमको निःसंदेह यह ज्ञात हो जायगा कि हमारे स्वदेशी और यूरोपियन बड़े बड़े विद्वान जो इस महाकाव्य की प्रशंसा अब तक करते चले आये हैं वह वास्तव में वैसा ही अमूल्य महाकाव्य है और वह ऐसा है भी—मानों चंद अपने समय

तक के हिन्दी भाषा के सर्व प्रकार के काव्यों का एक अमूल्य संग्रह हमारे लिये प्रस्तुत कर के हमारी हिन्दी भाषा के अति धनाढ्य कर गया है। क्या यह बात पक्षपातरहित विद्वानों को अति आश्चर्य और अट्टाट्टहास करानेवाली नहीं है, कि हम इस महाकाव्य को अभी तक बहुत ही अच्छी तरह से पढ़ पढ़ा और समझ समझा तो सकते ही नहीं और न इस महाकाव्य में यूनिवर्सिटी (University) की परीक्षा की शैली के अनुसार परीक्षा देकर उत्तीर्ण हो सकते हैं, किन्तु उसको दोष देकर विध्वंस करने को तो हम सब से आगे आ खड़े होने को प्रसन्नतापूर्वक तैयार हैं? निदान किसी कवि के कहे अनुसार जो जिसके गुण को नहीं जानता वह उसकी निन्दा निरंतर करता है:—"न वेत्ति, यो यस्य गुणप्रकर्षं स तस्य निन्दां सततं करोति। यथा किराती करिकुंभजाता मुक्ताः परित्यज्य बिभर्ति गुंजाः" ॥

जैसे इस महाकाव्य का काव्य अनेक प्रकार के काव्यों का एक संकलित काव्य है वैसे ही उसकी भाषा भी उसके ग्रंथकर्त्ता के समय तक की अनेक प्रकार की प्राचीन हिन्दी भाषाओं की एक अति संकलित

भाषा

हिन्दी भाषा है। यदि किसी को इसमें कुछ संदेह हो तो वह इस आदि पर्व्व को ही ध्यान देकर पढ़ देखे कि उसके किसी छन्द की तो कैसी भाषा है और किसी की कैसी। क्या विद्वानों से यह बात छिपी हुई है कि भाषा और काव्य का नित्य संबन्ध नहीं है? जब कि उनमें नित्य सम्बन्ध का होना यथार्थ है तब फिर क्या प्रत्येक का अपने अपने अनेक प्रकारों से संकलित होना भी स्वतःसिद्ध नहीं है? इस महाकाव्य की भाषा के चीज़ को वे विद्वान भले प्रकार से जान सकते हैं कि जो वर्तमान समय में फिलोलोजिष्ट (Philologists) अर्थात् शब्दोत्पत्तिविद्याज्ञ कहलाते हैं। और वैसे तो हमारे पढ़ने में वर्तमान समय के ऐसे ऐसे सहसा सिद्धान्त कर लेनेवाले विद्वानों के भी लेख आये हैं कि जिन्होंने ऐसा अत्यन्ताभाव का वाक्य भी कहा है, कि इस महाकाव्य के महाकवि को अनुस्वार और विसर्ग तक का प्रयोग करने का बोध नहीं था। और विद्वान भले ही ऐसा कहने में सम्मत हों परंतु हमारे मुख से तो इस महाकाव्य के काव्य को देखते हुए ऐसा सुन कर बारंबार यही निकलता है कि—त्राहि गोविन्द! त्राहि गोविन्द! ग्रंथकर्त्ता ने इस ग्रंथ को जिस भाषा में लिखा है वह उसने स्वयम् ही इस आदि पर्व्व में रूपक ३९ में स्पष्ट कह दिया है और जैसा उसने कहा है वैसी ही भाषा हम इस महाकाव्य की पाते भी हैं। फिर आश्चर्य क्या है? वह यही है कि न तो हम इस ग्रंथ को आदि से लेकर अंत पर्य्यंत पढ़ते हैं, न समझते हैं, न कवि के अभिप्राय को लक्ष में लाते हैं, न यह विचारते हैं कि बड़े बड़े विद्वान जिन के वचन पर अनेक मनुष्य विश्वास करते हैं, उनके सिर पर कुछ सम्मति देते समय बड़ी भारी जिम्मेदारी अर्थात् अनुयोज्यता का बोझ भी रखा हुआ है कि नहीं—किन्तु जो मन में आया वही हम लिख डालते हैं, क्योंकि न तो चंद कवि, न पृथ्वीराजजी चौहान और न रावल समरसीजी हमसे हमारे ऐसा कहने के लिये अब लड़ने को आ सकते हैं, और न किसी क्षीर-नीर का सा न्याय करनेवाले विद्वान का हमको डर है। देखो, हमने अपनी प्रथम टिप्पणी में ही कह दिया है कि इस महाकाव्य की हिन्दी भाषा तीन प्रकार की है। प्रथम, षट-भाषा और कुरान की भाषा की योनिवाली, दूसरे षट भाषा और कुरान की भाषा के सम, और तीसरे देशी प्रसिद्ध। इसके अतिरिक्त विद्वानों को इस महाकाव्य की भाषा की सूक्ष्मतर परीक्षा करने से ज्ञात होगा कि चंद कवि ने साहित्यदर्पण में लिखे हुए भाषा के प्रयोग के निम्नलिखित नियमों का भी अपने निज विचार और शैली के संस्कारसहित इस महाकाव्य के रचने में कुछ अनुकरण किया है—

पुरुषाणामनीचानां संस्कृतं स्यात्कृतात्मनाम् । शौरसेनीप्रयोक्तव्या तादृशी नाञ्च योषिताम् ॥
आसामेव तु गाथा सु महाराष्ट्रीं प्रयोजयेत् । अत्रोक्ता मागधी भाषा राजान्तःपुरचारिणाम् ॥
चेटानांराजपुत्राणां श्रेष्ठीना चार्द्धमागधी । प्राच्या विदूषकादीनां धूर्तानां स्यादवंतिका ॥
योधनागरिकादीनां दाक्षिणात्या हि दीव्यताम् । शकाराणां शकादीनां शाकारीं सम्प्रयोजयेत् ॥
वाह्लीकभाषा दिव्यानां द्राविडी द्रविडादिषु । आभीरेषु तथाऽभीरीचाण्डाली पुक्कसादिषु ॥
आभीरी शावरी चापि काष्टपत्रोप जीविषु । तथैवाङ्गारकारादौ पैशाची स्यात् पिशाचवाक् ॥
चेटीनामप्यनीचानामपि स्यात् शौरसेनिका । बालानां षण्डकानाञ्च नीचग्रह विचारिणाम् ॥
उन्मत्तानामातुराणां सेवे स्यात् संस्कृतं क्वचित् । ऐश्वर्य्येण प्रमत्तस्य दारिद्रोपद्रुतस्य च ॥
भिक्षुबन्ध धरादीनां प्राकृतं सम्प्रयोजयेत् । संस्कृतं संप्रयोक्तव्यं लिङ्गिनीषूत्तमासु च ॥
देवीमन्त्रि सुतावेश्या स्वपि कैश्चित्तथोदितम् । यद्देशं नीच पात्रन्तु तद्देशं तस्य भाषितम् ॥
कार्यतश्चोत्तमादीनां कार्य्यो भाषाविपर्ययः । योषित् सखीबालवेश्यां कितवाप्सरसां तथा ॥
वैदग्ध्यार्थं प्रदातव्य संस्कृतं चान्तरान्तरा ॥　　　सा० द० ४३२ ॥

इस बात की कुछ परीक्षा हम इस आदि पर्व्व में ही कर सकते हैं । देखिये रूपक ३३, ३९, आदि शुद्ध संस्कृत भाषा में हैं और रूपक १६, २२, ४७, ५७, ५९, इत्यादि में षट्भाषाओं का सादृश्य और साटकों में प्रायः संस्कृतादि भाषाओं का सादृश्य है । इसी प्रकार हमारे पाठक इस भाषा सम्बन्धी सब बातों को इस समय ग्रन्थ में अन्वेषण कर जांच देखें । यदि इस प्रकार की परीक्षा करने पर सब विद्वानों की सम्मति में यही तुलेगा कि चंद कवि वज्र मूर्ख था तो हम भी उस को बड़ा वज्र मूर्ख कहने लगेंगे, क्योंकि वह हमारा कोई संबन्धी नहीं है और न हम को अपने कहे का कुछ हठ है वरन हमारा सिद्धान्त यही है कि सत्य का ग्रहण और असत्य का त्याग हो । इस महाकाव्य की भाषा में दो एक वर्ष से एक यह भी बड़ी भारी शंका लोगों ने खड़ी की है कि उस में आठ या १० दस भाग में एक भाग फारसी शब्द हैं और फारसी शब्द अकबर बादशाह के समय से हिन्दी भाषा में मिले हैं, अतएव यह महाकाव्य सं० १६४० से १६७० के बीच में कृत्रिम बना है । हम इस बात से बिलकुल ही असम्मत हैं और ऐसा अनुमान करने-वाले को हम समझते हैं कि उसने न तो यह पृथ्वीराज रासा कभी आदि से अंत पर्यंत अच्छी तरह से पढ़ा है और न उसको ऐतिहासिक विद्या का पूरा पूरा बोध है, क्योंकि यह अनुमान बिलकुल ही अदृढ़ और अपरिपक्व है । वरन अब तक के ऐतिहासिक शोधों के अनुसार हमारी सम्मति में फारसी शब्दों का मेल हमारे भरतखण्ड की बोलचाल की भाषाओं में सातवें शतक तक पाया जा सकता है । फिर इस बारहवें शतक की हिन्दी भाषा की तो क्या ही कथा कहनी है । टुक विचार कर देखिये कि किसी देश की भाषा में अन्य देशीय भाषा के शब्दादि का मेल बहुधा करके प्रथम बोलचाल की भाषा में ही हुआ करता है न कि किसी मृतप्राय भाषा में और वह विदेशियों के किसी देश में आने जाने, बसने बसाने, रहने सहने, मिलने मिलाने वाणिज्य करने कराने, राज्य के बदलने बदलाने, मत के बिगड़ने बिगड़ाने आदि कारणों से ही हुआ करता है । तदनन्तर आप नीचे लिखे कारणों को विचार कर देखिये और निर्णय कीजिये कि चन्द की हिन्दी में जो फारसी शब्दों के प्रयोग संबन्धी दोष दिये जाते हैं वे वास्तव में यथार्थ हैं अथवा नहीं—

१ पृथ्वीराज रासे के किसी भी समय में आठ या दस भाग में एक भाग के फारसी शब्द नहीं हैं और जब प्रत्येक समय में नहीं हैं तब समग्र ग्रन्थ में भी न होना स्वतःसिद्ध है ।

यदि किसी को निश्चय करना हो तो इस चादि पर्व्व से ही गिन कर निश्चय कर लें। हां, ऐसा तो निःसंदेह कह सकते हैं कि उस में अनेक फारसी शब्द हैं किन्तु बिना गिने ऐसी असत्य संख्या स्थिर नहीं कर सकते हैं ॥

२ ग्रन्थकर्त्ता ने रूपक ३९ में स्वयम् कहा है कि उसने क़ुरान की भाषा का भी आश्रय लिया है।

३ ग्रन्थकर्त्ता महाकवि चंद पंजाब देश के लाहोर नगर में उत्पन्न हुआ था, जहां कि उस के जन्म होने के १०० वर्ष पहले से ही महमूदी सलतनत का होना और उसका पृथ्वीराज जी के साथ ही साथ नाश होना **तबक़ात नासरी** से ही सिद्ध है। फिर क्या कोई विद्वान यह अनुमान कर सकता है कि इस सौ १०० वर्ष के समय में लाहोर नगर की भाषा में कोई एक भी शब्द मुसलमानी भाषा का नहीं मिल सका था और न चंद कवि एक भी फारसी शब्द जानता था और न उसके सुनने में कभी कोई एक भी फारसी शब्द आया था, किन्तु वह इस वाक्य 'न वदेत यावनी भाषां कंठे प्राण गतैरपि" का ही अनुरूप था? क्या महमूदी सलतनत के समय में कोई एक भी हिन्दू मुसलमान नहीं हुआ था, न कोई मसज़िद बनी थी, न कोई नगर आदि मुसलमानी नाम से बसे थे?।

४ क्या पृथ्वीराजजी के राज्य की और महमूदी सलतनत की परस्पर सीमा नहीं मिली हुई थी? क्या इन दोनों राज्यों के दूत एक दूसरे के राज्य में आते जाते और नहीं रहते थे? यदि परस्पर लिखापढ़ी का काम पड़ा था तो क्या वह शुद्ध वैदिक संस्कृत भाषा में लिखापढ़ी हुई थी और क्या महमूदी सलतनतवाले भी संस्कृतादि मृतप्राय: भाषाओं में ही अपना राज का काम चलाते थे?

५ क्या हसन निज़ामी आदि से हम को यह ज्ञात होता है कि पृथ्वीराजजी के राज्य समय में उनकी सेवा में अथवा उनके राज्य में न तो कोई फारसी जाननेवाला था न कोई सुलतान की ओर से कभी कुछ संदेसा लेकर पृथ्वीराजजी के पास गया, न कोई मुसलमान सिपाही था, न कोई मुसलमान सौदागर था, मानों पृथ्वीराजजी के राज्य समय की हिन्दी भाषा को मुसलमानी भाषा की किंचित् वायु ही नहीं लगी थी? क्या चित्ररेखा नाम की सुलतान शहाबुद्दीन गोरी की एक परम प्रिया पासवान को हसन नामक व्यक्ति का उड़ा लाना तबक़ातनासरी से कुछ भी सिद्ध नहीं होता और क्या यही सुभगा पृथ्वीराजजी की शरण में रह कर हमारी हिन्दुओं की बादशाहत को समूल नाश को प्राप्त करानेवालों में नहीं हुई है?

६ क्या सुलतान शहाबुद्दीन गोरी ने कई बेर पृथ्वीराजजी और लाहोर की महमूदी सलतनत पर चढ़ाईयां नहीं की थीं? क्या इन अवसरों में भी जो फारसी शब्द ग्रन्थ मे प्रयोग किये हैं वे चंद और पृथ्वीराजजी की सेना के सुनने और समझने में कभी नहीं आये थे और न उनमें का कोई एक शब्द भी उनकी भाषा में मिल गया था? क्या जब सहाबुद्दीन ने लाहोर की महमूदी सलतनत पर चढ़ाइयां कीं तब लाहोरवालों ने पृथ्वीराजजी से कुछ मंत्रणा नहीं की थी और न उनकी कुछ सहायता ली थी?

७ क्या महमूद ने हांसी पर चढ़ाई नहीं की थी? क्या वह लाहोर के एक वाइसराय (Viceroy) के साथ बनारस तक नहीं आया था और न उसने उस शिवपुरी को लूटा था? क्या इस समय में भी कोई एक भी शब्द मुसलमानी भाषा का हमारी हिन्दी भाषा में नहीं मिला था?

८ क्या महमूद गजनवी की १६ वा १७ चढ़ाइयां (सन् ९९६ से १०३० तक) हमारे देश की भाषाओं में कोई एक भी मुसलमानी शब्द नहीं मिला सकी थीं ? क्या हमारे गुजराती बंधुओं को महमूद गजनवी के निजमुख के "बुत्शिकन" और "बुतफरोश" शब्द सोमनाथ के नाश के दिन से आजतक नहीं याद रहे ? क्या गुजरात के नागर ब्राह्मणों में से जिन्होंने अपने देश की संरक्षा के लिये पुरुषार्थ किया और मुसलमान बादशाहों की सेवा करना अंगीकार किया उनका नाम "सिपाही नागर" नहीं पड़ा है ? क्या महमूद के समय में कोई भी हिन्दू मुसलमान नहीं हुआ था ? क्या मथुरापुरी में उसके लूट में अनेक हिन्दू गुलाम दो दो रुपये पर नहीं बिके थे ? क्या उसकी एक लाख सवार और बीस हजार पैदल फौज के साथ हमारे स्वदेशी व्यापारियों की बोलचाल देशवाणी में होती थी और कोई एक भी मुसलमानी शब्द उसकी फौज हमारे देश के अनेक नगरों में अपने पीछे अपने स्मारक-चिन्ह की भांति नहीं छोड़ गई थी ? क्या महमूदाबाद नामक कोई भी नगर महमूद का बसाया हुआ हमारे देश में नहीं है ?

९ क्या **अब्दुल् असी** ने सन् ६३६ ई० के लगभग बंबई के समीप के **थाना** पर चढ़ाई नहीं की थी ? क्या **ईराक** के परम प्रसिद्ध जालिम गवर्नर **हज्जाज** के समय में राजा **दाहिर** से सिंध विजय नहीं किया गया था ? क्या फिर सन् ७१२ ई० में **महम्मद कासिम** ने सिंध पर चढ़ाई करके सिंध को नष्ट भ्रष्ट और लूट खसोट नहीं किया था और **दाहिर** को नहीं मार डाला था ? क्या राजा **दाहिर** का लड़का **जयसिंह** इस समय कितनेक और छोटे मोटे सिंध के राजा और सरदारों सहित मुसलमान नहीं हो गया था और क्या तब से ही मुसलमानी धर्म्म का आज तक सिंध में बराबर चला आना ऐतिहासिक शोध नहीं सिद्ध करते हैं ? क्या सिंधी मुसलमान पृथ्वीराजजी के पीछे हुए हैं ? क्या इस दशा में कोई एक भी **अरबी** शब्द हमारी देश भाषाओं में उस समय नहीं मिला है ?

१० क्या ऐतिहासिक शोध हमको यह नहीं विदित करते हैं कि पारसी लोग सैसेनियन् वंश की अवनति के समय फारस से भाग कर हमारे देश के बंबई नगर के आसपास आकर बसे हैं ? क्या इन लोगों ने अपनी मातृभाषा का कोई एक शब्द भी पृथ्वीराजजी के समय तक हमारी देश भाषा में नहीं मिलाया था ? क्या उनको हमारे देश के लोग पारसी के बदले अन्य वैदिक शब्द से पुकारते थे ?

११ क्या गुजराती भाषा में फारसी शब्दों के मिलने का शोध स० १३५६ तक शास्त्री व्रजलाल कालिदासजी के रचित गुजराती भाषा के इतिहास नामक ग्रंथ से पहुंचना नहीं विदित होता है ? जो इसी तरह हमको देश भाषा के प्राचीन ग्रन्थादि बराबर मिलते जांय तो क्या हम सातवीं सदी तक कोई एक भी मुसलमानी शब्द अपनी देश भाषाओं में मिला हुआ नहीं शोध सकते हैं ?

१२ क्या पुरातत्ववेत्ताओं ने यह शोध लिया है कि हिन्दी भाषा का अमुक समय में प्राकट्य हुआ है ? क्या बारहवें शतक के पहले और उसके एक दो शतक पीछे की कोई पुस्तक, ताम्रपत्र, प्रशस्ति, पट्टे, परवाने आदि हमको ऐसे प्राप्त हो गये हैं कि जिनसे हम यह कह सकें कि बारहवें शतक के पहले अथवा उसके कुछ पीछे के समय तक भी मुसलमानी भाषा के शब्द हिन्दी में नहीं मिले थे ? क्या अब तक के प्राप्त हुए पुरातत्व संस्कृतादि मृतप्राय भाषाओं में नहीं हैं और उनकी अपेक्षा से हिन्दी भाषा के विषय में कल्पना करना बहुत ही आश्चर्य दायक और अयोग्य नहीं है ?

१३ क्या संस्कृत भाषा के उन ग्रंथों में जिनको पुरातत्त्ववेत्ता बारहवें शतक के पहले के बने हुए मानते है, ऐसे ऐसे शब्द हमको प्राप्त नहीं होते हैं कि उन नाम के देश और मनुष्य यूरोप आदि अन्य खंडों में आज भी विद्यमान है? क्या विक्रमादित्यजी की "**शाकारि**" पदवी साधु संस्कृत भाषा की है? क्या रावल समरसीजी की आबू की प्रशस्ति के ४५ वें श्लोक में "तुरुष्क" शब्द का प्रयोग नहीं हुआ है? क्या व्याकरण महाभाष्य से बहुत से धातुओं का प्रयोग द्वीपान्तरों में होना विदित नहीं होता है? क्या महाभारत में पांडवों का यावनी भाषा में बात करना नहीं लिखा मिलता है?

१४ क्या वर्त्तमान समय के अच्छे हिन्दी लिखनेवालों में से कोई किसी विद्वन्मंडली में खड़ा होकर यह कह सकता है कि चिट्ठी पत्री से लेकर ग्रन्थतक जो कुछ उसने आजतक हिन्दी भाषा में लिखा है उन सब की हिन्दी एक सी ही है अर्थात् उसके अनेक लेखों में से ऐसे उदाहरण बिलकुल नहीं मिल सकेंगे कि उनके किसी लेख में तो एक भी फारसी शब्द नहीं आया होगा और किसी में अनेक फारसी शब्द प्रयुक्त हुए होंगे? यदि पृथ्वीराज रासो की भांति एक हजार वर्ष के पीछे कोई ऐसे हमारे स्वदेशी बंधुओं के ऐसे लेखों को हाथ में लेकर वादविवाद करे तो क्या दोनों पक्षकारों को प्रत्येक के अनुकूल तर्क नहीं मिल सकेंगे? जब आज ही हम लोगों की यह दशा है कि कभी कैसी हिन्दी लिखते है और कभी कैसी; तो फिर प्राचीन समय के ग्रंथकर्त्ताओं में से जिसने यह स्पष्ट कह दिया है कि मैं कुरान की भाषा को भी प्रयोग में लाता हूं, उसको हम क्योंकर दोष दे सकते है? क्या हम अनुमान नहीं कर सकते कि प्राचीन ग्रंथकारों में से जिसने जैसी हिन्दी चाही उसने वैसी ही लिखी है?

१५ क्या आज कल के विद्यमान देशी राजस्थानों में अस्मात् समय से अब तक मुसलमान बादशाह, सिपहसालार, सरदार, सौदागर, मौलवी, मुल्ला और काजी आदि के नाम, अपनी देशभाषा हिन्दी और मृतप्राय भाषा संस्कृतादि के होते हुए भी फारसी अक्षरों और उसी भाषा में चिट्ठी पत्री और फरमान खरीते आदि के लिखे जाने का प्रचार नहीं प्रचलित है? क्या आज के एकछत्री अंग्रेजी राज्यशासन के समय में भी राजपूताने के अन्तर्गत राज्यों से श्रीमान् वाइसराय और गवरनरजनरल साहब बहादुर के नाम उभय को विदेशी फारसी भाषा और लिपि में खरीते नहीं लिखे जाते हैं? बहुत समय के व्यतीत हो जाने पर जब कि वर्त्तमान समय वृत्त पुरातत्त्व संज्ञा से माने जावेंगे और वे ऐसेही अलभ्य होंगे जैसे कि आज पृथ्वीराजजी के समय के हैं, तब फिर क्या उस समय के विद्वानों का वैसेही तर्कों से कि जैसों से आज हम लोग रासो में दोष देते हैं, इन देशी राज्यों की इन फारसी लिपि और भाषा में गवर्नमेंट हिन्द के नाम लिखे हुए खरीतों को भी जाली समझना यथार्थ होगा? क्या यह व्यवहार भी वर्त्तमान समय में देशी राजस्थानों में प्रचलित नहीं हैं कि जब गवर्नमेंट हिन्द के नाम खरीता लिखने का काम पड़ता है तब फारसी भाषा के विद्वानों को घेर घार कर, फारसी को ढूंढ ढाढ़ कर, और एकांत में बैठ बाठ कर, कई दिनोतक अति परिश्रम करके वे नहीं लिखे जाते हैं; उसी तरह जब किसी मंदिर आदि की प्रशस्तिका काम पड़ता है तब वैसे ही देशी और विदेशी पंडितों को, चाहे वे राजके नौकर हों अथवा नहीं, घेर घार और संस्कृत भाषा में प्रशस्तियां नहीं लिखाई जाती हैं और जब किसी राजा की विरदावली का कोई कवित्त बनवाने का काम पड़ता है तब षट भाषाओं

की भाषा से बिगड़कर बनी हुई डिंगल भाषा में काव्य नहीं रचवाया जाता है और जब लाट-साहब की पधरावनी का उत्सव किया जाता है तब उस में Address अर्थात् अभिवादन अंग्रेज़ी भाषा में नहीं दिया जाता है? क्या ये सब भाषाएं आज प्रचलित हैं और क्या आज मुसलमानों की बादशाहत है? क्या जो आज हम महाराणाजी श्रीसज्जनसिंहजी के राज्यशासन समय के सर्व प्रकार के राजकीय लेख एकत्र करके देखें तो वे सब एक ही भाषा में हमको लिखे मिलेंगे? क्योंकि क्या सब राजा साहबों के स्वर्गवास होने पर राज की मोहर, छाप और स्टाम्प और सिक्के आदि में उसी दिन नवीन राजा साहब का नाम पलट करके वैसेही हुकुम जारी हो जाते हैं कि जैसे आज अंग्रेजी राज में होते हैं कि जिस राजकीय व्यवहार के संस्कार से विद्यमान पुरातत्ववेत्ता उपलब्ध पुरातत्त्वों को जांचा करते है? क्या मेवाड़ राज्य में महाराणा जी श्रीशंभूसिंहजी के नाम का स्टाम्प आजतक नहीं जारी है? क्या महाराणाजी श्रीसज्जनसिंहजी के नाम की छाप वर्त्तमान महाराणाजी साहब के राज्यशासन समय में कई वर्षों तक नहीं जारी रही है? क्या ऐसे स्टाम्प पर लिखी हुई दस्तावेजें और ऐसी छाप लगे पत्र बहुत समय के व्यतीत हो जाने पर जाली समझे जायंगे और जिन जिनके पास ये राजकीय लेखादि उस समय में मिलेंगे वे सब जाल के अपराधी समझे जाकर फांसी लगाये और कालेपानी भेजे जावेंगे?

सारांश हमारे निवेदन करने का यह है कि हिन्दी भाषा में अन्य देशीय भाषाओं के शब्दादि के मिलने का प्रश्न बड़ा ही सूक्ष्म और कठिन है और जो हमारी तरह विद्वान लोग यह मान लें कि जब जिस अन्य देशीय का आना हमारे भरतखंड में हुआ तबही से उसकी भाषा के शब्दों का भी मेल होना अति संभवित है तो यह प्रश्न बड़ा ही सरल हो जाता है। हमारे सिद्धान्त को माने बिना इस प्रश्न का निर्णय करना बहुत दुस्तर है क्योंकि जो चंद कवि के पहिले अथवा उसके समय की हिन्दी भाषा की पुस्तकादि मिल जांय और उनमें मुसलमानी भाषाओं के शब्द न मिलें तो हम सुख से यह अनुमान कर सकते हैं कि उनके रचनेवालों ने उनका जानकर प्रयोग नहीं किया और चंद ने रूपक ३९ की प्रतिज्ञा पूर्व्वक उनका प्रयोग किया है जैसे कि वर्त्तमान समय में भी हिन्दी भाषा के अनेक विद्वान अनेक प्रकार की हिन्दी लिखते हैं।

कविराजजी ने इस महाकाव्य की भाषा के प्रसंग में जैसे मुसलमानी शब्दों के प्रयोग होने का दोष दिया है वैसेही उन्होंने इन **सत्त । चावद्दिसि । भारत्थ । पारत्थ । सारत्थ ।** और **षूक** शब्दों को भी राजपूताने की कविता के ही शब्द होना समझ कर इस महाकाव्य का मेवाड़ राज्य में जाली बनना भी अनुमान किया है। तथा इस ग्रंथ में बहुत से शब्द अनुस्वार सहित प्रयुक्त हुए हैं उनके विषय में भी उन्होंने महाकवि चंद पर आक्षेप करके यह कहा है कि "अनुस्वार लगाने से यह स्पष्ट जान पड़ता है कि वह संस्कृत कुछ भी नहीं जानता था क्योंकि उसको बिन्दु विसर्ग का भी ठीक ज्ञान न था" परन्तु हमारी तुच्छ सम्मति में महामहोपाध्याय कविराज श्रीश्यामलदास जी महाशय का यह सब कहना बिलकुल ही असत्य और निर्मूल है। अब जो प्रमाण अपने इस कहने के समर्थन में हम आगे दिखावेंगे उनसे यह भी स्पष्ट सिद्ध होगा कि जिन जिन ग्रंथों से हमने उनको उद्धृत किया है वे कविराज जी के पढ़ने में नहीं आये होंगे, नहीं तो वे ऐसे अत्यन्ताभाव के अनुमान कदापि नहीं करते:—

१ यद्यपि **सत्त** शब्द का आजकल की बोलचाल की ब्रज भाषा में भी प्रयोग होना हमने अपनी लिखित **प्रथम संरक्षा** में इन वाक्यखंडों के उदाहरणों से सिद्ध कर दिखाया है; जैसे—अबै

वाकूं सत उठ आयो, तवै वो सती भई, सत हर दत्त दाता, राम राम सत है, दो चार लिखे हैं–तथापि एक यह दोहा भी हम **कविवचनसुधा** से उद्धृत करके प्रमाण में उपस्थित करते हैं–"सत सुवचन कबीर के, चित्त देय सुन लेहु । अस नानक गुरु के वचन, सत मत करि गेहु" । तथा बालकशाकृत विनयपत्रिका में–"दास्य मोक्ष पद देख हर्ष मबे सत्त लेथ मो दीन रेख मेख मार भाल मन्द के" यह शब्द ऐसा अप्रसिद्ध नहीं है कि जिसके प्रयोग के विषय में हिन्दी भाषा के विद्वानों को किंचित् भी सन्देह हो अतएव हम अधिक उदाहरण नहीं लिखते ।

२ श्रीमद्वल्लभ संप्रदाय में जो अष्ट छाप करके प्रसिद्ध हैं उनमें के एक कुंभनदासजी ने "चाव-द्वसि हरिरूप रम्यो" अपने एक कीर्त्तन में कहा है ।

३ इन **भारत्थ, सारत्थ** और **पारत्थ** शब्दों के प्रयोग के विषय में हमने **प्रथम संरक्षा** में बहुत कुछ कहा ही है परन्तु फिर भी हम एक प्रमाण अष्ट-छापवाले छीत स्वामी के एक कीर्त्तन में से यह बताते हैं "भारथ्य में सारथ्य हूँ हरिजू कहाये सारथी" और पं० हृत कन्हैया लालजी-कृत छंदप्रदीप नामक ग्रंथ से वैसे ही अन्य शब्दों के प्रयोगों के उदाहरण भी लिखित करते हैं; यथा–(१) करि गहि भार **समत्थ** । (२) यश पायो नृप **मथ्थ** । (३) **मत्थन** नत करि **लज्जित** दिगज (४) **सुसज्जिय** धमगति । (५) **उत्थिय** समुद बट्टिय लहरि । (६) रहि **तदंत्थकि** जियसु करि (७) लखि **दठ्वत** सब नृपति । (८) सिंहवली **समरत्थ हत्थिवर** **मत्थ** विदारन ।

४ अब शेष **चूक** शब्द के विषय में भी हमारी लिखित संरक्षा में लिखे के सिवाय हमको यह कहना है कि उसके शब्दार्थ तो वही हैं कि जो डाक्टर हार्नली साहब ने हिन्दी शब्दों के धातुओं के संग्रह में वर्णन किये हैं किन्तु यह शब्द जिस विषय के प्रसंग में प्रयोग होता है वैसा ही उसका भावार्थ हो जाता है जैसे कि छल के अर्थ में अष्ट-छापवाले परमानन्ददास जी ने उसका प्रयोग किया "**अहो हरि बलिसौं चूक करी**" इसी तरह समझ लेना चाहिये कि जब वह छल से मारने के प्रसंग में प्रयुक्त होता है तब उसका वैसा भावार्थ ग्रहण किया जाता है । राजपूताने के किसी किसी कवि को हमने ऐसा भी कहते हुए सुना है कि यह **चूक** शब्द राजपूताने की भाषा में ही प्रयोग हुआ मिलता है और हिन्दी भाषा के किसी काव्य में किसी भी अर्थ में यह शब्द प्रयुक्त नहीं हुआ है, परन्तु उनका यह कहना हमारे नीचे लिखे प्रमाणों से बिलकुल ही असत्य प्रतीत होता है–

वृन्द सतसई

दोहा ॥ पिशुन छल्यो नर सुजन सों, करत विसास न चूक ।
जैसे दाध्यो दूध को, पीअत छाछहि फूंक ॥
मूरख गुन समझै नहीं, तो न गुनी में चूक ।
कहा भयो दिन को विभो, देखी जो न उलूक ॥

नाथ कवि अर्थात् कवि लोकनाथजी चौबे कृत

कवित्त ॥ सुखद रसाल को रिसाल तेह लागे बैठ, ऐंठि बोल बोले पिक, मधुप कुहू कुहू ॥
कुंज कुंज कारे हैं कुटिल अलि पुंज पुंज, गुंज गुंज फूल रस सुहके चुहू चुहू ॥

चूक बिन प्यारी कीन्ह मेरो मन टूक टूक, कूक सुने हूक परै, कारन उहू उहू ॥
नाथ विधि चार अधिकार ही जनात मोहि तातें किन कोकिला, कहत कुहू कुहू ॥

सूरसागर

राग काफी

मैं अपने कुलकानि डरानी ।
कैसे श्याम अचानक आये मैं सेवा नहीं जानी ॥
बड़े चूक जिय जानि सखी सुनि मन लै गये चुराई ॥
तन तें जात नहीं मैं जान्यौ लियो श्याम अपनाई ॥
ऐसे ठगत फिरत हरि घर घर भूलि कियो अपराध ।
सूर श्याम मन देहि न मेरो पुनि करिहों अनुराध ॥

रागबिहागरो ॥ कहा करों गुरजन डर मान्यों ।
आये श्याम कौन हित कारकें मैं अपराधिनि कछु नहिं जान्यों ॥
ठाढ़े श्याम रहे मेरे आँगन तब तें मन उन हाथ बिकान्यों ।
चूक परी मोकों सबही अंग कहा करो गई भूलि सयान्यों ॥
वे उनही को नए हरष मन मेरी करनी समुझि अयान्यों ।
सूर श्याम संगम उठि आयो मो पर बार बार रिसान्यों ॥ ३७ ॥
बीच कियो कुल लज्जा आई ।
सुन नागरी वक्रस यह मोकों सनमुख आये धाई ॥
चूक परी हरितें मैं जानी मन लै गये चुराई ।
ठाढ़े रहे सकुच तो आगें राखा बदन दुराई ॥
तुम हो बड़े महर की बेटी काहे गई भुलाई ।
सूर श्याम हैं चोर तुम्हारे छाड़ि देहु डरपाई ॥ ९० ॥

कवि लल्लूलाल कृत

दोहा ॥ धरमराज सों चूक करि । दुरजोधन लै लीन्ह ॥
राजपाट अरु बित्त सब । बनोबास दै दीन्ह ॥
करी चूक प्रहलाद पै । हिरन असुर परचंड ॥
हरि सहाय हित अवतरे । असुरन किये बिखंड ॥

रामायण

छमहु चूक अनजानत केरी । चहिये विप्र उर कृपा घनेरी ॥

स्त्रियाँ गाया करती हैं

मेरा भया चुकान हियारी । कार करत मैं बर बर चूकूं फुंका जात मई जीया री ॥

कबीर

काशी कर मैं बासी कहिये, करम बरा का हीना ॥
राम भजन में चूक पड़ी, तब पकर जुलाहा कीना ॥

कहावत

आहार चूके वह गये व्योहार चूके वह गये ।
दरबार चूके वह गये सुसराल चूके वह गये ॥

चूरनवाले

है चूरन खट्टा चूक । जिससे नित्त लगेगी भूख ॥

४ हम अनुस्वार सहित शब्दों के प्रयोग के विषय में जो ऊपर कह आये हैं उसके नीचे लिखे उदाहरणों को अवलोकन करने से आशा है कि हमारे पाठकों को पूर्ण संतोष हो जायगा—

सूरसागर

राग भैरवी ॥ भजि श्रीविट्ठल चरण **सरोजं** । नखमणि दीधिति दमित **मनोजं** ॥
इच्छसि यदि सततं **सुखसारं** । त्यजसि न किमिति त्रिविध **धृतभारं** ॥
यदि वांछसि हरि भक्ति **सुरत्नं** । कुरु चपलं शरणागत **यत्नं** ॥
प्राप्य सुदुर्ल्लभ नरवर **देहं** । परिहर सकल निगम **संदेहं** ॥
मानय हृदय मयोदित **वचनं** । तदथा मिनो चेदतिशय **पचनं** ॥
वरसपदं भावय भव **जलधिं** । अंत समै भवधिन **अवधिं** ॥
नाथ तवाह मतीरण **रावं** । पूरय सततमिमं मयि **भावं** ॥
तव गुण गण कथिता मृत गणे । प्रार्थ्यमिदं विश तव रघुनाथे ॥

रामायण

छंद ॥ दे भक्ति रमा निवास त्रास हरण शरण **सुखदायकं** ॥
सुखधाम राम नमामि काम अनेक छवि **रघुनायकं** ॥ १०४ ॥
सुरवृंद राजत दुंद भंजन मनुज तनु अतुलित **बलं** ॥
ब्रह्मादि शंकर सेव्य राम नमामि करुणा **कोमलं** ॥ १०५ ॥

तोटक । छंद ॥ गुण ज्ञान निधान अमान **मजं** । नित राम नमामि **विभुं विरजं** ॥
भुजदंड प्रचंड प्रताप **बलं** । खलवृंद निकंद **महाकुशलं** ॥ १०६ ॥
बिनु कारण दीन दयालु **हितं** । छवि धाम नमामि रमा**सहितं** ॥
भवतारण कारण काय **परं** । **मनसं** भव दारुण दोष **हरं** ॥ ९० ॥
शरचाप मनोहर **तूणिधरं** । जल जारुण लोचन भूप **बरं** ॥
सुख मंदिर सुंदर श्री**रमणं** । मद मार मृषा ममता **शमनं** ॥ ९१ ॥

खालशा-कृत विनय पत्रिका

भैरवी ॥ रे मन संत चरण धरु **माथं** ।
निश वासर जिनके जगनायक वास करत हैं **साथं** ॥ १ ॥
तिनको छोड़ विश्व में भटके वेश्या को करि **नाथं** ।
भक्ति सहित सेवा तुम करते वह मारत है **लाथं** ॥ २ ॥
तथापी कछु लाज न आवत मलत चरण धरि **हाथं** ।
लिह मदन गोपाल साधु पद गहु अघहर सम **पाथं** ॥ ३ ॥

गोस्वामी श्रीलक्ष्मीनाथजी परमहंस-कृत पदावली

नमो नमो गीता हरि **वंशं** । सुर नर मुनि सज्जन **अवतंशं** ॥
कोमल पद उपनिष श्रुति **अंसं** । हरि मुख कथित सं । हिय **हंसं** ॥
विमल व्यास भाषित गत **संशं** । देव दनुज मानव अहि **वंशं** ॥
भक्ति विराग ज्ञान **परगाशं** । काम क्रोध मद मोह **विनाशं** ॥
सकल शास्त्र सम्मत निति **शाशं** । अर्थ धर्म सुखदायक **हंसं** ॥
सुचि सागर तीरथ फल **देशं** । कलिमल तिमिर प्रकाश **दिनेशं** ॥
गुण अनन्त कहि गावत **सेशं** । चतुरानन गण देव **महेशं** ॥
सुनत सकल मन होत **हुलाशं** । लक्ष्मीपति अति पाप **विनाशं** ॥ २ ॥

नरहरदास कृत अवतार चरित्र ।

भुजंगी । **सुगन्धं विगन्धं** न अस्तुति गारी । **विभेदं** न **सत्रं** न **मित्रं** विचारी ॥
न महिमा न माया न **मदं** न **मोहं** । न **रंगं विरंगं** न दाया न **द्रोहं** ॥
न **सीतं** न **तापं** न **संगं कुसंगं** । न **भावं** न भिव्यान **अंगं अनंगं** ॥
सुखं भूमि सज्या न **हासं** न त्रासं । रहे आंहँ आनै तजी पंच **प्रासं** ॥
समं विख्यहं भूमि **पंथं सहज्जं** । **वसत्रं दिगं** वीतरागं **विलज्जं** ॥
विमोहं विदेहं न द्वन्द्वी **विकारं** । अघानैं रहे निति **वातं अहारं** ॥
विलेपं न न **ओषंड** आगी **विचारं** । धरी पुष्पमाला गलै विप्र **धारं** ॥
प्रकासी जु निंद्रा महा मोद पावै । हसे ताल दै आप औरै हसावै ॥
अलेपं अछेपं रहे **अप्रकासं** । निरापेक्ष निर्बंध **नग्नं निरासं** ॥
अनाजून अवधून माया **अतीतं** । **अमोहं अछोहं अद्रोहं अभीतं** ॥
अनामं अकामं अठामं अजेयं । अनाधार आकार महिमा **अमेयं** ॥
प्रशूवृत्ति लीनै भवै आन पानी । **त्रिधारं प्रचारं विहारं** विमानी ॥

यह महाकाव्य आज तक महाकवि चंद का बारहवीं शताब्दी का रचा हुआ एक बड़ा प्रामाणिक ऐतिहासिक ग्रंथ करके हमारे देश में प्राचीन काल से चला आता है

अकृत्रिमता

और इसकी यथार्थता में आज तक क्या तो स्वदेशी और क्या किसी विदेशी विद्वान को कोई वैसी शंका नहीं हुई है कि जैसी हमारे परम प्रिय मित्र महामहोपाध्याय कविराजजी श्रीश्यामलदासजी को बैठे बिठाये हो गई है। यद्यपि हम इस महाकाव्य को अभी तक अनुकूल दृष्टि से ही देखते हैं, किन्तु उसीके साथ हम उसकी परीक्षा करने में प्रतिकूल दृष्टि देकर उसके गुण दोषों को भी देखते जाते हैं और जब हमको उसमें कोई दोष देने जैसी बात नहीं मिलती तब उसी स्थान पर हम अपनी टिप्पणी में अपना अभिप्राय लिख प्रकाश करते हैं। हमारे पाठकों को यह भले प्रकार समझ रखना चाहिये कि जिस दिन जिस स्थान में जो कुछ हम को कृत्रिम दीखेगा उसे हम उतने ही बलपूर्वक दोष देकर प्रकाश कर देंगे जैसे हम गुणों को प्रकाश करते हैं और जो कोई बात हमको उसमें दोष देने जैसी मिलेगी ही नहीं तो फिर हम अशक्त हैं। इस महाकाव्य को कृत्रिम अनुमान करने में जितने हेतु दिये गये हैं उनमें से प्रत्येक के विषय में हम निम्नलिखित कुछ निवेदन करते हैं :—

१ इस महाकाव्य में जो संवत लिखे हुए हैं वह मुसलमानी तवारीखों में लिखे और संवत शोध हुए संवतों से नहीं मिलते और उनमें ९० या ९१ वर्ष का अंतर पड़ता है अतएव इस बात का निर्णय करने को हमारी टिप्पणी १६८ और ३५५।५६ वादी पढ़ें। उनके पढ़ने और पक्षपातरहित मनन करने से हम आशा करते हैं कि वादी की संवत् अन्तर-विषयक शंका का निवारण हो जायगा।

२ इस ग्रंथ में मुसलमानी भाषादि के शब्द प्रयुक्त हुए दृष्टि आते हैं उनके विषय का समाधान, हमारी इसी उपसंहार टिप्पणी का भाषा संबंधी चौथा लेख-खंड अवलोकन करने से, भले प्रकार हो सकता है।

३ अब तक पृथ्वीराजजी के समकालीनों में से केवल रावल समरसीजी को ही आक्षेप करनेवाले ने उदाहरण में ग्रहण किया है कि उनके विषय में केवल आबू और चित्तौड़ की पांच चार प्रशस्तियों से ही संशय करनेवाले को संशय होता है अर्थात् संशय का आधार उन ही प्रशस्तियों पर है। यदि उन प्रशस्तियों के संवतों को विद्वान लोग भले प्रकार परीक्षा करके यह निश्चय कर लें कि वे रावल समरसीजी के ही समय की हैं और उनके संवत अमुक प्रकार के हैं और हमको पृथ्वीराजजी, समरसीजी और पृथाबाईजी के जो परवाने प्राप्त हुए हैं उनके संवतों को भी उसी प्रकार जांच देखें तो फिर रावल समरसीजी के समकालीन होने में कुछ झगड़ा ही न रहेगा, क्योंकि झगड़ा तभी तक रहता है कि जब तक किसी विद्वान को किसी प्रकार का पक्षपात होता है और वह दर्पण लेकर मुख दिखते हुए भी नहीं दूर होता है। जहां तक हमने रावल समरसीजी के विषय में शोध किया है वहां तक हमको इस बात में कुछ संदेह नहीं है कि वे पृथ्वीराजजी के बहनेऊ और समकालीन थे। आबू और चित्तौड़ की प्रशस्तियों के संवतों को समझ लेने के लिये एक चोज की बात हमने अपनी टिप्पणी ३५५।५६ में अति संक्षिप्त रूप से कही है। इसके अतिरिक्त हम एक बड़ी अद्भुत बात पर विद्वानों का ध्यान दिलाते हैं कि कविराजजी ने इस महाकाव्य के संवत् १६४० से १६६० के भीतर जाली बनने के सिद्ध करने में नीचे लिखे प्रमाण कहे हैं:—

"इस किताब में मेवाड़ के राजाओं की बहुत सी प्रशंसा रावल समरसिंहजी के नाम से की है और एक स्थान में उनको आशीस देने में ये शब्द लिखे हैं:—

(१) कलंकियां राय केदार।
(२) पापियां राय प्रयाग।
(३) हत्यारां राय बनारसी।
(४) मदवान राय राजान री संग।
(५) सुलतान ग्रहण मोखन
(६) सुलतान मान मलन।

इन पद्धियों से मेवाड़ के महाराणा संग्रामसिंह जी (सांगा) की ओर संकेत है"—इत्यादि।

अब विद्वानों को रासो के उस रूपक को अवलोकन करके परीक्षा कर समझना चाहिये कि जिसमें यह वाक्य खंड उद्धृत किया गया है, वह रूपक यह है:—

छंद पद्धरी—सामंत सब्ब मनुहार कीन। प्रोहित राम आसीस दीन॥
हरि सिद्धि विद्धु बरदान भट्ट। उच्चारी चंद वेदे सुघट्ट॥

जुड्ड पष्य बबर सिर धरिय छत्र । बरदाइ देस कासी मत्र ॥
उठियो सिंघ बरदाइ देषि । बोलंत बिरद बहु बिधि बिसेषि ॥
चीतोर राज कारज्ज कीन । घुम्मान पाट पग अचल दीन ॥
मेद गिरि धरिय चित्तोर मानि । किरनाल लेज छट्टू घुमान ॥
जैचंद समह जिन जुड्ड कीन । मानों कि उरग जनु मोर पीन ॥
कलंकिया राय केदार राय । कबहेन बिरद मन उमंग चाय ॥
पापी राय प्राग बहु समान । कप्पन दारिद्र करनार जान ॥
हित्यार राह कासी अभंग । मधुआंन राह गंगा उतंग ॥
सुरतान मलन बंधन कमोद । हिंदून राह टालन दोद ॥
उज्जेन राह बंधन समथ्थ । आचार राह जुजठ्ठरह पथ्थ ॥
भीमगराह भंजन सुषेन । अस लयो धवल रांजंद जैन ॥
रिनथंभ राय सिर छंड कीन । अच्छुवा राह गढ लेह दीन ॥
उथ्थाप राह थापन समथ्थ । सोपन सरीर प्रथिराज सथ्थ ॥
छप्पनी साहं भंजन पलग्ग । चंदेरि सिद्धु किय नाम जग्ग ॥ ४१ ॥

*हमारे पाठकों को इस रूपक का तात्पर्य निकालने के पहले यह जान लेना अत्यावश्यक है कि यह रासो के **समरसी दिल्ली सहाय** नामक समय में का है । रासो की किसी पुस्तक में तो यह समय पृथक है और किसी में वह **बड़ी लड़ाई** नामक समय के आदि में ही मिला हुआ है । इस रूपक के अन्तर्गत वृत्त का प्रसंग यह है कि रावल समरसीजी अपनी महाराणीजी श्रीपृथाबाईजी सहित अपने साले पृथ्वीराजजी की सहायता करने को चित्तोड़ से दिल्ली पहुंचे और वहां उनका आदर सम्मान वहां के सब राज पुरुषों ने करना प्रारंभ किया कि उसी प्रसंग में महाकवि चंदबरदाई ने भी वैसे ही रावलजी को आशीश दी कि जैसे वर्तमान काल में प्रत्येक देशी राजस्थान में चारण और राव आदि स्तुतिपाठक दिया करते हैं । रावलजी श्री समरसीजी में जो जो मुख्य गुण थे और उन्होंने जो जो बड़े काम अर्थात् शौर्य्य किये थे उन सब को उनकी प्रशंसा में कवि चन्द ने प्रयोग करके यह बिरदावली कही है और इसमें यह बात विचारने की है कि कविराजजी ने जो इस रूपक में के-"कलंकिया राय केदार" जैसे विशेषणों का महाराणाजी श्रीसंग्राम सिंहजी (सांगा) की ओर संकेत होना अनुमान करके रासो के जाली बनने के समय के प्रारंभ का सं० १६४० निश्चय किया है वह इस मूल रूपक के अवलोकन करने से सत्य मालूम होता है कि नहीं । यदि हम कविराजजी के अनुमान का यथार्थ होना भी मान लें परन्तु इस रूपक में—"कलंकिया रायकेदार" आदि के साथही—"जैचन्द समह जिन जुद्ध कीन" और "सोपन सरीर प्रथिराज सथ्थ" जैसे स्पष्ट विशेषणों के वाक्य खंडों को हम महाराणाजी श्रीसांगाजी में कैसे घटा सकते हैं । क्या यह बात विद्वानों के कहने की है कि-जैचंद समह जिन जुद्ध कीन और—"सोपन सरीर प्रथिराज सथ्थ" जैसे स्पष्ट विशेषणों को छोड़ देना और कलंकिया राय केदार आदि को ग्रहण कर लेना । यदि कविराजजी ने इन-"कलंकिया रायकेदार" आदिक का सांगाजी पर घटाकर केवल उनही तुकों को क्षेपक बताया होता तो भी यह एक प्रकार से कुछ ध्यान में बैठने जैसी बात होती । हम यह भी नहीं समझ सकते हैं कि इस रूपक से सं० १६४० कैसे सिद्ध होता है क्योंकि महाराणाजी श्रीसांगाजी का राज्य समय कविराजजी के मानने के अनुसार सं० १५६५ से सं० १५८४ तक ही होता है । और संवत १६४० का वर्ष महाराणाजी श्री

बड़े प्रतापसिंहजी के राज्य समय सं० १६३३ से १६५३ तक में आता है। रासो की सं० १६३१।३२ और १६४५ की लिखित पुस्तकें हमारे पास विद्यमान हैं। तथा अकबर बादशाह ने पृथ्वीराज रासो की कथा अपने दरबारी भाट गंगजी से सं० १६२७।२८ में सुनी थी कि जिसके वृत्तान्त की एक सं० १६२९ की लिखी हुई **चंद छंद वर्णन की महिमा** नामक पुस्तक हमको प्राप्त हो चुकी है और उसी के साथ जो समय सं० १६४० से १६७० तक का रासो के जाली बनने का अनुमान किया गया है उस समय में मेवाड़ में एक राणारासो नामक ग्रंथ राव दयाल कवि ने बनाया है कि जिसको भी हमने शोध काढ़ा है। इस राणारासो की पुस्तक सं० १६७५ की लिखी हुई प्रति से हमने अपने पुस्तकालय के लिये एक प्रति कराई है और हमारी प्रति से बहुत से अन्य भद्र पुरुष प्रतियां कराते हैं। खैर, यह सब बातें तो जाने दीजिये और एक इस छोटी सी बात पर ही ध्यान दीजिये कि **रासो** की उन सब पुस्तकों के अंत में की जो मेवाड़ राज की एक पुस्तक से प्राप्त हुई है, मूल पुस्तक के लिखनेवाले लेखक के लिखे हुए नीचे लिखे छंद प्राप्त होते हैं कि जिनमें यत्किंचित वृत्त लिखा हुआ है। ये छंद हम आशा करते हैं कि उन पुस्तकों में भी अवश्य होंगे कि जो एशियाटिक सोसाइटी बंगाल के पुस्तकालय में हैं—

कवित्त ॥ मिली पंकज गन उदधि। कदद कागद कासरनी ॥
कोटि कवी काजलह। कमल कटिकतें करनी ॥
छितिपि सख्या गुनित। कहै कक्का कवियाने ॥
दह श्रम लेखन हार। भेद भेदै सोइ जाने।
इन कष्ट ग्रन्थ पूरन करय। जन अभ्या दुष नां लहय ॥
पालिये जतन पुस्तक पवित्र। लिषि लेषक विनती करय ॥ १ ॥
गुन मनियन रस पोर। चंद कवियन करि छिड्डिय।
छंद गुनीतें तुट्टि। मंद कवि भिन भिन किड्डिय ॥
देस देस बिष्यरिय। मेल गुन पार न पावय ॥
उद्दिम करि मेलवत। आस बिन अलस आवय ॥
चित्रकूट रान अमरेस नप। श्रीमुष आयस दयो ॥
गुन बीन बीन करुना उदधि। लषि रासो उद्दिम कियो ॥ २ ॥

दोहा ॥ लघु दीरघ ओछा अधिक। जो कछु अंतर होइ ॥
सो कवियन मुष सुद्धतें। कहो आप बुधि सोइ ॥

इन छंदों से यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि किसी **कक्का** नामक पुरुष ने मेवाड़ राज्य के अधीश बड़े श्रीअमरसिंहजी (चित्रकोट रान अमरेस नृप) के आज्ञानुसार राज के पुस्तकालय के लिये उक्त पुस्तक लिखी थी। इन महाराणाजी का राज्य समय कविराजजी के मानने के अनुसार सं० १६५३ से १६७६ तक का है। जब कि मेवाड़ राज की पुस्तक का उसकी अन्य प्रतियों से सं० १६५३ से १६७६ के बीच में लिखा जाना अनुमान होता है तो फिर इस समय में जाल बनना भला कोई कैसे मान सकता है। अब रहा सं० १६०० की भविष्य वार्ता का विदित करनेवाला दोहा इसके विषय में हमने अपनी संरक्षा के लेख खंड २० पृ० ३५ में सविस्तर कह दिया है अतएव यहां कुछ अधिक नहीं वर्णन करते।

४ यद्यपि इस महाकाव्य के जाली बनने के अनुमान का प्रश्न तो रीति से किया गया है कि इस ग्रंथ में लिखे पृथ्वीराजजी के समय के मनुष्यों के नाम और वृत्त उस समय की मुसलमानी तवारीखों में लिखे हुओं से नहीं मिलते हैं परंतु जिस प्रकार से उस प्रश्न का निर्णय किया गया है उससे प्रश्नकर्ता की प्रतिज्ञाहानि और हेत्वाभास स्वयम्सिद्ध हैं। हमने इस विषय में अपनी लिखी पृथ्वीराजरासो की संरक्षा की अंग्रेजी पुस्तक के पृष्ठ १५ और १०, लेख खंड ११ और २८ और हिन्दी के पृष्ठ १८ और ३९ और लेख खंड ११ और २८ में बहुत कुछ लिख कर प्रकाश किया है। क्या जितना अंश इस महाकाव्य का मुसलमानी तवारीखों से मिलता हुआ है वह उसके बनानेवाले ने उन तवारीखों को सोलहवीं सदी में पढ कर यह काव्य निर्माण किया है। क्या उस समय की हसन निजामी की तवारीख, तबकात नासरी, और अब्बुल फ़िदा, आदि नामक तवारीखों में परस्पर कोई ऐसे विरोध नहीं हैं और क्या वे एक दूसरे से सर्व्व प्रकार से परम सम्मत हैं? कविराजजी ने स्वयम् यह स्वीकार किया है कि तबकात नासरी ने मनुष्यों के अशुद्ध नाम लिखे हैं और अब्बुल फिदाने संवत ही नहीं लिखे हैं फिर उनके दोषों से यह महाकाव्य क्योंकर दूषित हो सकता है? क्या उक्त मुसलमानी तवारीखों के कर्त्ताओं ने सब वृत्त यथातथ्य लिख कर केवल सत्य ही लिखने और मिथ्या कुछ भी न लिखने का एक झंडा हाथ में लिया है? देखो, क्या यह शोक की बात नहीं है कि तबकात नासरी का ग्रंथकर्ता सिराज स्वयं कहता है कि जिस वर्ष में पृथ्वीराजजी की अंतिम लड़ाई हुई थी उसमें तो वह उत्पन्न हुआ था और उसके ३५ वर्ष पीछे वह पहलेही पहल हिन्द में आया था, उसने जो कुछ इस विषय में लिखा है वह उसने एक मनुष्य से सुनकर लिखा है। फिर हम नहीं जानते कि कविराजजी मिनहाज-ए-सिराज जैसे एक भले आदमी को क्यों प्रत्यक्ष प्रमाण की साक्षी में घेरते हैं। हम पृथ्वीराजरासो और उस समय की सब मुसलमानी तवारीखों को एक दृष्टि से देखकर यह कहते हैं कि जिस ग्रंथकर्त्ताने जो, जितना और जैसा, देखा और सुना, वह उसने अपनी इच्छा और शैली के अनुसार लिखा है; यदि उनमें से किसी की कोई बात हमको अयथार्थ प्रतीत और सिद्ध हो तो हम उसको अस्वीकार कर सकते हैं, किन्तु हम उनमें से किसी को भी लार्ड हेस्टिंगस के समय में जैसे नन्दकुमार को जाल के अपराध में फांसी की शिक्षा दी गई है वैसी शिक्षा विद्वानों के हाथ से कदापि नहीं दिलाना चाहते। निदान हम फिर भी प्रबलता और विचारपूर्व्वक कह सकते हैं कि प्रत्येक ग्रंथकर्त्ता ने अपने अपने ज्ञान के अनुसार ऐतिहासिक वृत्त लिखे हैं चाहे उसमें कोई बात असत्य भी क्यों न हो परन्तु उस असत्य बात के कारण से आदि से अंत पर्य्यंत कोई ग्रंथ जाली नहीं हो सकता। इस बात के मान लेने में हमको कोई लज्जित होने की भी बात नहीं है कि यह पृथ्वीराजरासो चंद का लिखा हुआ सच्चा है, उसके दो एक समय उसके बड़े बेटे जल्ह के लिखे हुए हैं और उसमें जो कहीं कहीं कुछ क्षेपक अंश पीछे से किसी ने मिलाया होगा वह विद्वानों की परीक्षा करने से स्वयम् तरजावेगा। अब तो

कोई बात सहायक की रही ही नहीं है क्योंकि यह आदि पर्व्व तो हमने यथाशक्ति संशोधित करके अपने पाठकों की सेवा में अर्पण कर ही दिया है, उसीसे हम इस महाकाव्य की अकृत्रिमता की परीक्षा करना प्रारंभ कर सकते हैं और प्रति मास में हम यह भी सिद्धान्त कर सकते हैं कि कहां तक तो कुछ जाली अंश है अथवा नहीं ।

इस बात के जानने से हमारे पाठकों को बहुत प्रसन्नता होगी कि हमको शोध करने से पृथ्वीराजजी और रावलजी श्रीसमरसीजी और महाराणी पृथाबाईजी के थोड़े से खास रुक्के और

पृथ्वीराजजी, समरसी जी और पृथा-बाईजी के साथ रुक्के पट्टे परवाने आदि

पट्टे परवाने प्राप्त हुए हैं कि जिनमें वही अनन्द विक्रमी संवत है कि जो पृथ्वीराजरासो में लिखा हुआ मिलता है। इन सब के फोटोग्राफ हमने एशियाटिक सोसाइटी बंगाल को भेंट करने तथा उनकी सत्यता की परीक्षा करने के लिये अपने स्वदेशी परम प्रसिद्ध विद्वान रायबहादुर डाक्टर राजा श्रीराजेन्द्रलाल जी मित्र एलएल० डी०, सी० आई० ई० की सेवा में भेजे हैं । उक्त डाक्टर साहब अकस्मात रोगग्रस्त हो गये कि जिससे यह हमारे बड़े परिश्रम से शोध किये हुए लेख उक्त विद्वन्मण्डली में उपस्थित नहीं हो सके हैं किन्तु हम को आशा है कि राजा साहब के नैरोग्य होते ही उक्त लेख सोसाइटी में उपस्थित होकर यह विषय विद्वत् मंडली में छिड़ेगा । यह विषय अभी हमारा सौंपा हुआ एक महान पुरातत्त्ववेत्ता विद्वान के हाथ में है अतएव हम उन लेखों की प्रतियें तथा अपने निज विचारों को प्रकाश नहीं कर सकते परन्तु इतना तो निःसंदेह कह सकते हैं कि अभी तक हम उनको अकृत्रिम समझते हैं और ऐसा समझने को सतर्क सिद्ध भी कर सकते हैं । इसके साथ हमको यह कहने में कुछ भी लज्जा नहीं है कि यदि उक्त डाक्टर मित्र, हमारे विद्या-गुरु डाक्टर हार्नली साहब, मिस्टर ग्राउस साहब और मिस्टर ग्रियरसन साहब, जैसे पक्षपातरहित और सहसा सिद्धान्त न करनेवाले पुरातत्त्ववेत्ता विद्वान उनको अप्रमाणिक सिद्ध कर ग्रहण करेंगे तो हम भी उनही से सम्मत होंगे क्योंकि हमको किसी बात का वास्तव में दुराग्रह नहीं है वरन इसमें भी कुछ संदेह नहीं है कि जो कोई अन्य मनुष्य बिना किसी योग्य कारण के हमारे स्वदेश और उसकी विद्या पुस्तकों को दोष दे तो हम उस दशा में उनके एक बड़े कट्टर पक्षकार हैं ।

अंत में हमारा सब विद्वानों से यही सविनय निवेदन है कि वे इस महाकाव्य को उसकी भले प्रकार परीक्षा करके पढ़े और पढ़ावें और जो कहीं उसमें कुछ हमारा कहना तथा कोई अनुमानादि का करना अयोग्य प्रतीत हो तो हमको क्षमा करें । यही प्रार्थना हम विशेष कर

समाप्ति

के अपने मित्र महामहोपाध्याय कविराज श्रीश्यामलदासजी की सेवा में भी करते हैं क्योंकि उनके विचारों और अनुमानों का हमने विशेष करके एक क्लिष्ट भाषा में खंडन कर अपने स्वदेशाभिमान और उसकी हिन्दी विद्या की संरक्षा की है । इसके साथ यह भी वक्तव्य है कि जैसे हमने इस उपसंहारिणी टिप्पणी में इस महाकाव्य के पांच चार विषयों के विषय में अपने विचार प्रकाश किये हैं वैसेही अब के व्याकरणादि जैसे शेष विषयों के विषय में भी हम यथावकाश लिखेंगे । इत्यलम् ॥
